वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

संपादक

डॉ. पी. के. वार्ष्णेय

प्राचार्य

डॉ. प्रवेश कुमार

सहायक प्राध्यापक, अध्यापक-शिक्षा विभाग

राजकीय रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उ.प्र.)

Neel Kamal Prakashan

Shahdara, Delhi- 32

Published by :
NEEL KAMAL PRAKASHAN
1/11052-A, Subash Park, Shahdara, Delhi-110032
email : nkplife@gmail.com
Mob: 9411006565

© ***Editor-*** the concern author(s) will be responsible for views, data, text and the data analysis presented in the chapter.

ISBN : 978-93-93248-09-1

Price : **Rs. 600.00**

First Edition : **2022**

Printed by :
NEEL KAMAL PRAKASHAN.

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

प्राक्कथन

आज का समाज भौतिकवादी प्रगति की ओर जोर–शोर से अग्रसर है। मनुष्य ने भौतिक प्रगति तो निसंदेह की है, परंतु उसके जीवन में सुख और शांति का अभाव है। भौतिकता के कारण हमने अपनी संस्कृति, सभ्यता नैतिकता एवं मूल्यों को दरकिनार कर दिया है, जिससे भौतिक समृद्धि होते हुए भी उसमें अवसाद एवं अपराध जैसी समस्याओं में प्रतिदिन वृद्धि हो रही हैं। इन समस्याओं से कैसे निजात पाई जाय? जिससे हमारे जीवन में भौतिक सुख–समृद्धि के साथ–साथ शांति भी हो। हमारा मानना है कि मानव के सर्वागीण विकास के लिए भौतिक पक्ष के साथ–साथ आध्यात्मिक पक्ष का भी विकास अति–आवश्यक है। आज के युग में आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा हो रही है। जीवन में सुख एवं शांति प्राप्त करने का माध्यम जीवन में नैतिकता एवं मूल्यों के समावेश करने से हो सकता है। हमें यह समझना होगा कि वर्तमान वैश्विक परिस्थितियों में हमारे लिए मानवीय मूल्यों की क्या आवश्यकता एवं महत्व है। इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु एक छोटे से प्रयास के रूप में उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा संपोषित एवं राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर (उत्तर प्रदेश) द्वारा दिनांक 22–23 फरवरी, 2020 को "शिक्षा में मानवीय मूल्य एवं व्यावसायिक नैतिकताः आवश्यकता एवं महत्व" विषय पर आयोजित दो–दिवसीय राष्ट्रीय सेमिनार में प्राप्त शोध पत्रों/लेखों का संकलन सम्पादित पुस्तक "वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य" के रूप में सुधी पाठकों, विद्यार्थियों, शिक्षकों, अनुसंधानकर्ताओं एवं शिक्षाविदों के समक्ष प्रस्तुत है, जिससे कि वे आज के वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्यों को समझ कर अपने जीवन में अंगीकार कर सकें।

डॉ पी. के. वार्ष्णेय

डॉ प्रवेश कुमार

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य : ISBN: 978-93-93248-09-1

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

Contents

S.No.	Chapter Name & Writer	Page No.
1.	वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा एवं मानवीय मूल्य की प्रासंगिकता *डा0 आफताब जाकरा सिद्दीकी*	01 – 04
2.	वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यों पर अधारित शिक्षा की आवश्यकता *आराधना सिंह*	05 – 08
3.	मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण एवं निदान में शिक्षक की भूमिका का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन *डा0 अवनीश कुमार उपाध्याय*	09 – 16
4.	महर्षि अरविन्द के योग की वर्तमान मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता का निरुपण *भरत लाल बारी*	17 – 26
5.	मूल्य संचारण में अध्यापक शिक्षा की भूमिका *डॉ० भावना सिंह*	27 – 31
6.	ग्रामीण क्षेत्रों में उच्च शिक्षा की स्थिति और सामाजिक विकास में मीडिया की भूमिका (लखनऊ जिले के विशेष संदर्भ में) *बृजेन्द्र कुमार वर्मा, डॉ0 महेन्द्र कुमार पाढ़ी*	32 – 36
7.	योग वशिष्ठ में योग का स्वरूपः एक विमर्श *चंचल सूर्यवंशी, तौहिद अख्तर*	37 – 43
8.	भारतीय हिन्दी साहित्य में मानवीय गुण (भक्तिकाल के सन्दर्भ में) *हेमलता*	44 – 48
9.	पर्यावरण संरक्षण में भारतीय संस्कृति तथा मानवीय मूल्यों की भूमिका *डॉ0 हितेन्द्र कुमार सिंह*	49 – 52

10.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य *डॉ. कमल किशोर महरोत्रा, श्रद्धा सिंह*	53 – 62
11.	भारतीय संस्कृति एवं मानव मूल्य *खेमेन्द्र कुमार शर्मा*	63 – 73
12.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य *डॉ. कुलदीप चौधरी*	74 – 77
13.	आधुनिक शिक्षा और मूल्यों पर मीडिया का प्रभाव *माणिक रस्तोगी, संजय प्रसाद*	78 – 81
14.	भारतीय संविधान एवं मानवीय मूल्य *डा० मनमीत कौर*	82 – 88
15.	नारी षिक्षा के मापदण्ड *पूनम रानी*	89 – 90
16.	भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्य शिक्षा *डा0 प्रदीप कुमार, संतोष कुमार पाण्डेय*	91 – 95
17.	उच्च शिक्षा में मानवीय मूल्यो की दशा और दिशा : एक विश्लेषण *प्रवीन कुमार गुप्ता*	96 – 100
18.	शिक्षा के व्यावसायिक मूल्य *मदन मोहन, डॉ. प्रवेश कुमार*	101 – 104
19.	वर्तमान परिपेक्ष्य में शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों का महत्व *कु. प्रीति*	105 – 110
20.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य *प्रेमलता*	111 – 117
21.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य *पार्वती वर्मा*	118 – 124

22.	योग, आध्यात्म, स्वास्थ्य एवं माननीय मूल्य *डा0 रजनी रानी अग्रवाल*	125 – 129
23.	शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है *डॉ. राम किशोर सागर, डॉ. महेंद्र सिंह सागर*	130 – 133
24.	माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के समायोजन पर सैद्वान्तिक व आर्थिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन (सहारनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में) *डॉ० रतन सिंह*	134 – 138
25.	धर्म एवं मानवीय मूल्य *डॉ0 रेखा शर्मा*	139 – 143
26.	शिक्षक एवं व्यावसायिक नैतिकता *कु. समृद्धि सिंह*	144 – 150
27.	डिजीटल इंडिया एवं मानवीय मूल्य *डा0 शैलेन्द्र कुमार*	151 – 156
28.	शिक्षा तथा मानवीय मूल्य *सिम्मी गुप्ता, डॉ. प्रवीण कुमार तिवारी*	157 – 159
29.	पर्यावरण संरक्षण में मानवीय मूल्यों का योगदान *सोमेन्द्र सिंह, कामेश राणा*	160 – 164
30.	भारतीय संस्कृति में विद्यमान मानवीय मूल्यों की विवेचना *अंकित पाठक, सोमेन्द्र सिंह*	165 – 172
31.	धर्म और दर्शन के सन्दर्भ में मानवीय मूल्य *डॉ0 सुधीर कुमार*	173 – 176
32.	जीवन में मूल्यों का महत्व : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन *स्वाति सक्सेना*	177 – 179
33.	भारतीय इतिहास में नैतिकता एवं मानवीय मूल्य *मो0 तुफैल खाँ*	180 – 187

34.	भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्य *विक्की*	188 – 197
35.	हिन्दी साहित्य और मानवीय मूल्य *डॉ0 योजना कालिया*	198 – 207
36.	अध्यापक शिक्षा में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता *डॉ. अनीता चौहान*	208 – 210
37.	शिक्षा एवं मानवीय मूल्य *मो. शमीम*	211 – 213
38.	आध्यात्मिक शिक्षा में मानवीय मुल्य *अली असग़र खाँ*	214 – 215
39.	मानवीय मूल्यों की शिक्षा *डॉ. रेखा राणा, डॉ. गिरीश कुमार वत्स*	216 – 220
40.	मानवीय मूल्यों का विकास *डॉ. सुधीर कुमार पुण्डीर, दीपक कुमार शर्मा*	221 – 226
41.	वर्तमान परिपेक्ष में मानवीय मूल्यों का बदलता स्वरूप *डॉ. प्रवेश कुमार, डॉ. सुनीति लता*	227 – 239

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में शिक्षा एवं मानवीय मूल्य की प्रासंगिकता

डा0 आफताब जाकरा सिद्दीकी
प्रवक्ता, शिक्षा संकाय
सीतापुर शिक्षा संस्थान,
रस्यौरा–सीतापुर

किसी भी सभ्य समाज के लिए शिक्षा प्राण है तथा जीवन मूल्य उसकी आत्मा मूल्यों का सम्बन्ध जीवन के दृष्टिकोण से है। यदि मूल्य को जीवन कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। शिक्षा का मुख्य कार्य विकास के प्रमुख पहलुओं शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक और नैतिक विकास के बीच सामान्जस्य लाना है।

मूल्य का अर्थ

मूल्य को अंग्रेजी में Value कहते हैं। Value लैटिन भाषा के शब्द Valere वैलियर से बना है, वैलियर का अर्थ है, Ability, Utility, Importance तथा हिन्दी में अर्थ योग्यता, उपयोगिता व महत्व। मूल्य का अर्थ वह मान जिसके आधार पर हम किसी शक्ति, वस्तु या किसी सूक्ष्म सत्ता (भाव, विचार आदि) के गुण योग्यता व महत्व को आँकते हैं।

शिक्षा मूल्यों का विकास करने में सहायक है। समाज की उन्नति में सदस्यों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। समाज की प्रतिष्ठा बढ़ाने में सदस्य सतत् प्रयत्नशील रहते हैं। मूल्य उन्हें इस उत्तरदायित्व को निभाने में सहायता करते है। समाज की संस्कृति और संस्कार को निखारने में मूल्य उपयोगी सिद्ध होते हैं। सत्य, निष्ठा, परोपकार, कर्त्तव्य परायणता और सेवा भावना समाज को एकजुट रखने में सहायक है। विभिन्न दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं समाजशास्त्रियों ने मूल्य शब्द को परिभाषित किया है। शिक्षा के शब्दकोश में गुड ने 'मूल्य' की चारित्रिक विशेषता बताते हुए इसे मनोवैज्ञानिक और सामाजिक सौन्दर्य बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रक्रिया एवं परिवर्तन चलते रहते हैं। अतः मूल्य कभी अपने आदर्श रूप में स्थिर नहीं रह सकते है। वे सामाजिक कार्यों तथा गतिविधियों से विस्तृत होते हैं।

आमतौर से मूल्यों का वर्गीकरण तीन प्रकार से किया गया है–

1. दार्शनिक
2. मनोवैज्ञानिक
3. सामाजिक

स्प्रिंगर ने मूल्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है–

1. सैद्धान्तिक मूल्य
2. आर्थिक मूल्य
3. सामाजिक मूल्य
4. सौन्दर्यात्मक मूल्य
5. राजनीतिक मूल्य
6. धार्मिक मूल्य

मैनी (2005) के अनुसार–देश, काल, परिस्थिति के संदर्भ में जन–सामान्य मान्यताएं ही मूल्य बन जाती है। मूल्य अभिवृत्तियों एवं आदर्श हमारे व्यवहार को निर्देशित करते है।

मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय समाज में लोगों द्वारा जो व्यवहार किया जा रहा है उससे यह पता चलता है कि नैतिक मूल्य विलुप्त हो गये हैं। यही कारण है कि देश में अराजकता, भ्रष्टाचार, सम्प्रदायवाद, आतंकवाद जैसे विवादों को बढ़ावा देना।

वर्तमान शिक्षा का परिदृश्य

वर्तमान में शिक्षा का स्वरूप अत्याधुनिक है। विविध विषयों के विशिष्ट अध्ययन की परिपाटी प्रचलन में है। ये विविधि विषय प्रायः विज्ञान, चिकित्सा, तकनीकी आदि के होते हैं। इसके अतिरिक्त कला, कम्प्यूटर, विज्ञान, व्यवसाय तथा प्रबन्धन परक विषयों का अध्ययन महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के माध्यम से होता है। यद्यपि ये विषय समाज व राष्ट्र के लिए आवश्यक है तथा समाज व राष्ट्र के विकास में इनकी भूमिका अहम है। किन्तु इतने विविध विषय तथा नैपुयण्ता परक ज्ञान के पश्चात भी जिस चीज की कमी व्यक्ति तथा समाज में चिन्तकों के द्वारा अनुभति की जा रही है, वह है मानवीय मूल्य–सदभाव, प्रेम, सौहार्द्र, अहिंसा, निःस्वार्थ, परकता आदि में कमी।

राष्ट्रीय मूल्य–देशभक्ति की भावना राष्ट्रीय एकता की भावना, राष्ट्रीय अवदानों में गरिमन्विता का भाव, त्याग आदि के प्रति दृढ़ता में कमी।

अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य– मानवाधिकार, शान्ति इनको सिस्टम आदि के प्रति कमी महसूस की जा रही है। इन मूल्यों के प्रति उदासीनता के फलस्वरूप सामाजिक विघटन, स्वाथपरकता, हिंसा, घृणा राष्ट्र के प्रति असम्मान या उदासीनता का भाव जनित होता है। सांस्कृतिक मूल्यों में संस्कृति का क्षय, जनरेशन गेप, ओल्ड एजपीपुल्स प्रोब्लम्स परिवार का विघटन विवाह सम्बन्धों का टूटना, मानव को मशीन समझना जिसमें उपभोक्तावाद आदि की विषाद जनक स्थिति पैदा होती है।

इन स्थितियों के अत्यधिक बिगड़ने से सामाजिक क्लेश, व्यापक अशान्ति, असुरक्षा, अपराध, आतंकवाद जैसी समस्याए जन्म लेती है।

मूल्य शिक्षा का जीवन में महत्व

1. शिक्षा की सभी गतिविधियाँ अध्यापक के इर्द–गिर्द घूमती है। भारतीय परम्पराओं के अनुसार अध्यापक समाज में प्रतिष्ठित स्थान रखते है। इसलिए अध्यापक भी अपने व्यवहार से जन–सामान्य के जीवन में मूल्यों के सम्प्रेषण हेतु एक प्रेरक का कार्य करता है।
2. माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952–53)–ने भी शिक्षा के द्वारा विभिन्न मूल्यों की स्थापना पर बल दिया है।

कोठारी आयोग (1964–66)–मूल्य शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए शिक्षा आयोग ने मूल्यों के विकास में विद्यालय की भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखा है। ''विद्यालय का वातावरण अध्यापकों का व्यक्तित्व एवं व्यवहार तथा विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधाएं छात्रों को मूल्योन्मुख बनाने में विशेष भूमिका निभाती है। हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि विविध मूल्यों के प्रति जागृत विद्यालय, सम्पूर्ण पाठ्यक्रम एवं समस्त गतिविधियों को प्रभावित करें। मूल्यों के विकास के अभाव में मनुष्य चाहे जितना सुख–सुविधा के साधन जुटा ले, समृद्धि एवं वैभव अर्जित कर ले, समाज में सुख एवं शान्ति कार्य नहीं हो सकता है। यही कारण है कि आज भौतिक प्रगति के बावजूद देश को अराजकता की स्थिति में गुजरना पड़ रहा है। वर्तमान समय में समाज में व्यभिचार, कदाचार एवं भ्रष्टाचार बढ़ा है। इन सबसे ऐसा लगता है कि समाज में मूल्य तिरोहित होते जा रहे हैं।

अतः शिक्षा द्वारा यह प्रयास किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों में वांछित उच्चतम मूल्यों का विकास हो सके, किन्तु शिक्षा द्वारा ऐसा प्रतीत नहीं हो रहा है। यह स्थिति समाज व राष्ट्र के लिए शुभ नहीं। इसलिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इस बात पर चिन्ता प्रकट की गयी कि ''जीवन के लिए आवश्यक मूल्यों का ह्रास हो रहा है और मूल्यों पर से ही लोगों का विश्वास उठता जा रहा है। शिक्षाक्रम में ऐसे परिवर्तन की जरूरत है, जिससे सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास में शिक्षा सशक्त साधन बन सके।''

3. हाल ही मे नई दिल्ली स्थित एन0सी0ई0आर0टी0 ने वर्तमान संदर्भ में प्रासंगिक मूल्यों की सूची तैयार की है। इसका बदलाव हम प्राथमिक स्तर की पाठ्य–पुस्तकों मे भी देख सकते हैं। पाठ्यपुस्तकों में बदलाव के बाद इन चित्रों में गुणात्मक बदलाव देखने को मिलता है जैसे सफाई करते लड़के और खेलती हुई लड़कियाँ।
4. मूल्य आधारित शिक्षा किसी भी समाज एवं राष्ट्र को किसी भी प्रकार की बुराई, हिंसा, भ्रष्टाचार तथा उत्पीड़न के खिलाफ आधार प्रदान करती है।

5. वर्तमान जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मूल्य वे होते है जो सत्यम, शिवम एवं सुन्दरम से ओत–प्रोत होते हैं और व्यक्ति के जीवन में समाहित हो जाते है। हमारे जीवन को आन्नदमय, सुखदायी बनाने में मूल्यों का महत्व अतुलनीय है।
6. मूल्य आधारित शिक्षा किसी भी समाज एवं राष्ट्र को किसी भी प्रकार की बुराई, हिंसा, भ्रष्टाचार तथा उत्पीड़न के खिलाफ आधार प्रदान करता है।

संदर्भ

1. *सिद्दीकी, आफताब जाकरा (अगस्त, 2011)–परिपेक्ष्य प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत शिक्षकों–शिक्षिकाओं के मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन, वर्ष 18, अंक 2 अगस्त 2011, पृष्ठ सं0–91*
2. *www.bhojvirutaluniversity.com*
3. *www.socialresearchfoundation.com*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में मूल्यों पर अधारित शिक्षा की आवश्यकता

आराधना सिंह
सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
श्री वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय, गजरौला, उत्तर प्रदेश

मूल्य परक शिक्षा की अवधारणा प्राचीन है किन्तु वर्तमान में मूल्य शिक्षा के नाम पर जो क्रियायें प्रतिक्रियाएं देखने को मिल रही है उनसे लगता है की देश समाज और व्यक्ति असमंजस्य और डाँवाडोल की स्थिति में है। मूल्य विहीनता को समाप्त करने के लिए शिक्षार्थी को एक प्रयोगशाला के रूप में और शिक्षक को प्रयोगकर्ता के रूप में मानकर कार्य करना होगा। शिक्षा का महत्वपूर्ण घटक विद्यार्थी को विभिन्न प्रयोगों द्वारा मूल्यों के निर्माण का केन्द्र मान लिया जाये। इस शोध के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि, शिक्षा अनुशासन देना ही नहीं, आत्म विवेक देना भी है।

परिचय

शिक्षा मनुष्य के सम्यक् विकास के लिए उसके विभिन्न ज्ञान तंतुओ को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया है। इसके द्वारा लोगों में आत्मसात करने, ग्रहण करने, रचनात्मक कार्य करने, दूसरों की सहायता करने और राष्ट्रीय महत्व के कार्यक्रमों में पूर्ण सहयोग देने की भावना का विकास होता है। इसका उद्देश्य व्यक्ति को परिपक्व बनाना है। युग की गति और उसके नए–नए परिवर्तनों के आधार पर प्रत्येक युग में शिक्षा की परिभाषा और उद्देश्य के साथ ही उसका स्वरूप भी बदल जाता है। यह मानव इतिहास की सच्चाई है। मानव के विकास के लिए खुलते नित–नये आयाम शिक्षा और शिक्षाविदों के लिए चुनौती का कार्य करते है जिसके अनुरूप ही शिक्षा की नयी परिवर्तित–परिवर्धित रूप–रेखा की आवश्यकता होती है। शिक्षा की एक बहुत बड़ी भूमिका यह भी है कि वह अपनी संस्कृति, धर्म तथा अपने इतिहास को अक्षुण्ण बनाए रखें, जिससे की राष्ट्र का गौरवशाली अतीत भावी पीढ़ी के समक्ष द्योतित हो सके और युवा पीढ़ी अपने अतीत से कटकर न रह जाए।

अतः समस्त ज्ञान चाहे वह भौतिक हो, नैतिक हो अथवा आध्यात्मिक मनुष्य की आत्मा में है। बहुधा वह प्रकाशित न होकर ढका रहता है और जब आवरण धीरे–धीरे हट जाता है तब हम कहते है कि हम सीख रहे है जैसे–जैसे इस अनावरण की क्रिया बढ़ती जाती है हमारे ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। इस प्रकार शिक्षा का उद्देश्य नए सिरे से कुछ निर्माण करना नहीं अपितु मनुष्य में पहले से ही सुप्त शक्तियों का अनावरण और उसका विकास करना है।

मूल्य और नैतिक मूल्य का अर्थ

"मूल्य" को अमूर्त प्रत्यय कहा गया हैं, जो व्यक्ति या परिवार या समुदाय आदि के लिए लक्ष्य प्राप्ति के साधनों को निर्धारित करते हैं, मूल्यों को व्यक्ति धीरे – धीरे ग्रहण करता है और अंततोगत्वा, मूल्यों को अपने चरित्र और आचरण की निजी कसौटी बना लेता है।

मूल्य कई प्रकार के हो सकते हैं जिनमें कुछ मूल्य इस प्रकार हैं – नैतिक मूल्य, धार्मिक मूल्य, कलात्मक मूल्य, राजनैतिक मूल्य, आर्थिक मूल्य और सैद्धांतिक मूल्य, भिन्न–भिन्न मूल्य भिन्न–भिन्न व्यक्तियों, भिन्न–भिन्न मात्रा और आवृत्ति में विकसित होते हैं, इन सभी मूल्यों में नैतिक मूल्यों का विकास अधिक आवश्यक है।

नैतिक मूल्य" को सामाजिक नैतिक मूल्य भी कहते हैं, सामाजिक नैतिक मूल्य के अन्तर्गत अनेक मूल्य आते हैं, जिसमें उचित अनुचित की भावना, आज्ञा पालन, सत्य–असत्य का ज्ञान, ईमानदारी, दया, सत्यवादिता, भक्ति, निष्पक्षता, आत्म नियंत्रण, विश्वसनीयता और उत्तरदायित्व की भावना है, व्यक्ति के इन्हीं सामाजिक नैतिक मूल्यों के समूह को "चरित्र" कहते हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है।

नैतिक मूल्य परक शिक्षा की अनिवार्यता और महत्व

जीवन के समस्त गुणों, ऐश्वर्यों, समृद्धियों और वैभवों की आधारशिला चरित्र और नैतिक मूल्य है, वैदिक मन्त्रों में हमारे ऋषियों ने इसीलिए भगवान् से प्रार्थना की है कि–"असतो मा सद् गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृत गमय, ''अर्थात हे ईश्वर, मुझे असत्य से सत्य की ओर ले चलो, अंधकार से मुझे प्रकाश की ओर ले चलो।''

नैतिक मूल्य मनुष्य के आधार स्तम्भ हैं जो मानवता को जीवित रखा है और इनका व्यक्ति के जीवन में बड़ा महत्व हैं, इसलिए यहां मैं नैतिक मूल्यों पर बात करने से पहले मूल्य, नैतिक मूल्य और चरित्र तीनों का अर्थ समझाना आवश्यक समझती हूँ, इसका एक फायदा यह भी होगा कि आपको चरित्र और नैतिकता का संबंध मालूम पड़ जायेगा। मैनी 2005 के अनुसार देश काल परिस्थिति के संदर्भ जन सामान्य मान्यताएं ही मूल्य बना सकती है।

मूल्य के विकास में माता– पिता, अभिभावक एवं परिवार का उत्तरदायित्व

बच्चा अपने जन्म के समय न तो नैतिक होता है और न अनैतिक, बल्कि वह समाज के प्रति उदासीन होता है, आयु बढने के साथ–साथ वह सामाजिक प्रत्याशाओं के अनुसार व्यवहार करना सीखता है जो की एक मंद और लम्बी प्रक्रिया है, परन्तु बच्चे से यह आशा की जाती है कि वह स्कूल जाने से पहले थोड़ा–थोड़ा उचित अनुचित बातों को जान ले, समझ ले, और बाल्यावस्था की समाप्ति से पहले यह आशा की जाती है कि उसमें कुछ मूल्यों का इनता विकास हो जाए, कि वह स्वयं नैतिक चयन कर सके, जबकि किशोरावस्था के बालकों से यह उम्मीद होती है कि उसमें नैतिक मूल्यों के साथ अनुरूपता स्थापित करने का गुण विकसित हो जाए। नैतिक मूल्यों

की महत्ता को स्वीकार करते हुए व्यक्ति एवं समाज के स्तर को उत्कृष्टता के उस शिखर पर ले जाना, जिसमें सहयोग, सहकार, सामाजिक उत्तरदायित्व, श्रम प्रतिष्ठा, ईमानदारी, सहनशीलता, देशभक्ति तथा विश्वबंधुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावनाओं को प्रोत्साहन मिले, साथ ही साथ सत्यता के सिद्धांतों को, मानवीय जीवनमूल्यों को भी ढूंढ निकालना नैतिक शिक्षा का उद्देश्य है।

आजकल के माता–पिता यही सोचते है कि अमुक जगह, अमुक कॉलेज, अमुक विद्यालय या अमुक स्कूल में भेज देंगे तो हमारे बच्चे योग्य, चरित्रवान और संस्कारवान बन जाएँगे, पर जब तक हम बच्चों को स्कूल, कॉलेज में पढ़ने के लिए भेजते हैं, उस समय तक उसकी वह उम्र समाप्त हो जाती है, जिसमें बच्चे का निर्माण किया जाना संभव है।

विद्यालय का उत्तरदायित्व

उच्च शिक्षा के संदर्भ में गुणवत्ता की महत्ता का विश्लेषण करते हुए तत्कालीन उच्च शिक्षा विभाग के प्रमुख सचिव बसंत प्रताप सिंह ने कहा है– ''उच्च शिक्षा का संबंध जीवन में गुणात्मक मूल्यों के विस्तार से है जिससे सभ्यता के विकास क्रम में अर्जित मानवता के दीर्घकालिक अनुभवों को आत्मलब्धि की दिशा में समाजीकरण के साथ अग्रसारित किया जा सके। ऐसे अनुभवों के समुच्चय ही कालान्तर में मूल्य बनते हैं जिन्हें अपनाने की परम्परा ही संक्षेप में संस्कृति कहलाती है।

शिक्षार्थी के जीवन में नैतिक मूल्य परक उच्च शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि नैतिक मूल्यों वाली उच्च शिक्षा, लोगों को एक अवसर प्रदान करती है जिससे वे मानवता के सामने आज शोचनीय रूप से उपस्थित सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, नैतिक और आध्यात्मिक मसलों पर सोच–विचार कर सकें। अपने विशिष्ट ज्ञान और कौशल के प्रसार द्वारा उच्च शिक्षा राष्ट्रीय विकास में योगदान करती है। इस कारण हमारे अस्तित्व के लिए यह बहुत महत्वपूर्ण है। (राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986)

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा (2000) में विद्यालयी शिक्षा के सभी स्तरो पर मूल्यों की विकास की बात कही गयी है। इसके लिए प्रभावशाली एवं सच्चरित्र अध्यापकों का होना पहली प्राथमिकता है, आज तो सिर्फ थोड़े से घंटो के लिए या दो–चार घंटे के लिए बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते हैं, इन दो – चार घंटे के स्कूल में भी कोई नैतिक मूल्यों की सीख देने वाला पिरीयड होता नहीं, चारित्रिक शिक्षण होता नहीं, व्यक्तित्व का निर्माण करने की कोई बात होती नहीं और न इस प्रकार की कोई व्यवस्था ही वहाँ पर होती है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में शिक्षक को चाहिए कि सामाजिक परिवर्तन को देखते हुए उच्च शिक्षा में गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए, केवल अक्षर एवं पुस्तक ज्ञान को माध्यम न बनाकर, शिक्षित को केवल भौतिक उत्पादन–वितरण का साधन न बनाया जाए, अपितु नैतिक मूल्यों से अनुप्राणित

कर आत्मसंयम, इंद्रियनिग्रह, प्रलोभनोपेक्षा, तथा नैतिक मूल्यों का केंद्र बनाकर भारतीय समाज, अंतरराष्ट्रीय जगत की सुख–शान्ति और समृध्दि को माध्यम तथा साधन बनाया जाय। अतः घर और विद्यालय दोनों का कर्तव्य है कि नैतिक मूल्यों का विकास करे, विशेष रूप से बचपन में नैतिक मूल्यों का विकास होना ही चाहिए क्योंकि देश के भावी कर्णधार वे ही हैं। उन्हें ही देश का भार अपने कन्धों पर रखना है, यह भी एक कड़वी सच्चाई है कि केवल घर पर मिले संस्कारों के माध्यम से नैतिक शिक्षा संभव नहीं है। नैतिक मूल्यों के उत्थान में शिक्षकों की अहम् भूमिका होती है। बच्चों में नैतिक मूल्यों के बीज बचपन से ही बोने की आवश्यकता होती है।

सन्दर्भ

1. *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूप रेखा (2000), विद्यालयी शिक्षा के स्तरो एवं मूल्य विकास*
2. *प्राचीन, अर्वाचीन भारतीय शिक्षा पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन, श्री नन्दनन्दनानन्द सरस्वती, पृष्ठ–80*
3. *शिक्षा के भारतीय मनोवैज्ञानिक आधार, श्री लज्जाराम जी तोमर, पृष्ठ 236*
4. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986*
5. *उच्च शिक्षा में गुणवत्ता प्रबंधन पुस्तक से, बसंत प्रताप सिंह (प्रमुख सचिव) उच्च शिक्षा विभाग, पृष्ठ–5 मैनी डी (2005), मानव मूल्य– परम शब्दावली का विश्लेषण खण्ड (पंचम)*

मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण एवं निदान में शिक्षक की भूमिका का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ. अवनीश कुमार उपाध्याय
असि. प्रो. (वाणिज्य)
राधेहरि राजकीय स्नाताकोत्तर महाविद्यालय काशीपुर।

मनुष्य पृथ्वी पर रहने वाले अन्य प्राणियों के समान ही इस पृथ्वी का एक सदस्य है जो कि अनंत काल से अन्य जीव जन्तुओं के साथ सामनजस्य बनाकर रहता आ रहा है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी मात्र अपने शरीर तक ही सीमित रहते हैं अर्थात उनके लिए शरीर की सीमा का अतिक्रमण करना सम्भव नहीं होता। लेकिन मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो केवल चेतन जीवित सत्ता ही नहीं है बल्कि एक आत्म चेतन सत्ता भी है। मनुष्य की चेतना न केवल बर्हिगामी है, बल्कि वह अर्न्तमुखी भी है। मनुष्य में काम क्रोध, मोह, लोभ, माया, तृष्णा, घृणा, प्रेम भाक्ति, धैर्य, विवेक, आनन्द, शोक, मद, ईष्या, निन्दा, असूया, आत्म नियंत्रण, अनुशासन, निष्ठा, क्षमा, सहानुभूति, दृढता, स्थिरता, निर्भरता, करूणा, आदि अनेकों तत्वों का समावेश होता है। और इन्हीं सब गुणों के कारण मनुष्य को किसी भी अन्य जीव जन्तु से श्रेष्ठ माना गया है। मानवीय मूल्यों को किसी भी व्यक्ति के लिये अत्यधिक महत्व होता है और ऐसा इसलिए क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने व्यवहार स्वभाव के द्वारा समाज में रहने वाले समग्र व्यवहार का निर्धारण करता है। किसी भी व्यक्ति के अपने जीवन के निर्णय, जो केवल एक व्यक्ति विशेष को ही प्रभावित नहीं करते बल्कि हमारे परिवार हमारे संगठन हमारे समाज के साथ–साथ हमारे राष्ट्र को भी प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत लेख में मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारणों का समाज पर पड़ने वाले प्रभाव और उनके निदान का अध्ययन किया गया है।

प्रस्तावना

''मूल्य'' शब्द जिसे अंग्रेजी भाषा में वेल्यू कहा जाता है ''मूल'' धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ जड़ या स्रोत होता है। ज्ञान या इससे सम्बन्धित अन्य संदर्भों में जब हम केवल सतही दृष्टि तक सीमित न रहते हुये समस्या की तह, जड़ तक जाने का प्रयास करते हैं तो वह न केवल कठिन बल्कि प्रतिफल युक्त भी होता है। ''सत्ता'' के विपरीत किसी ''वस्तु'' का वहां तक पहुॅचने का प्रयास भले ही ज्ञानात्मक दृष्टि से शिक्षाप्रद हो लेकिन नैतिक वस्तुओं के जगत से जाना जाता है और इससे वस्तुजगत को समझने में सहायता भी प्राप्त हुई है। नीतिशास्त्र

जिसे अंग्रेजी में ''एथिक्स'' कहते हैं की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के एथिकास शब्द से हुई है जिसका अर्थ ''कालजयी परम्परा'' है यदि हम दूसरे शब्दों में कहें तो नीतिशास्त्र या एथिक्स उस परम्परा को जानना चाहता है जो देश काल की सीमाओं का अतिक्रमण करता है। संस्कृत भाषा का शब्द ''स्वधर्म'' आत्मा या सत्ता से जुड़ा है। लेकिन अंग्रेजी भाषा में वस्तु/सत्ता हैतवार की झलक देता है। मानो ''वस्तुओं का संसार मूल्य रहित है'' परन्तु जब हम संस्कृत भाषा की सहायता से इस समस्या का विश्लेषणात्मक अध्ययन करते हैं तो निष्कर्ष यही निकलता है कि यह दैत मिथ्या है क्योंकि वस्तु एवं सत्ता दोनों का मूल्य एक ही है।

परिभाषा

''मानवीय मूल्यों से अभिप्राय किसी व्यक्ति के भौतिक अथवा मानसिक अवस्था के उस गुण से है, जिसके द्वारा मनुष्य के किसी उद्देश्य अथवा लक्ष्य की पूर्ति होती है।''

राधाकमल मुकर्जी के अनुसार – ''मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाओं एवं लक्ष्य है जिनकी अन्तरीकरण सीखने या सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अधिमान तथा अभिलाषाऐं बन जाती हैं।''

महात्मा गॉधी के अनुसार – ''मानवीय मूल्य से तात्पर्य मनुष्य के चरित्रिक गुणों से है जिसके अनुसार किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव है।''

मैकाइवर एवं पेज के अनुसार – ''नैतिकता का तात्पर्य नियमों की उस व्यवस्था से है जिसके द्वारा व्यक्ति का अन्तः करण अच्छे और बुरे का बोध प्राप्त करता है।''

शोध के उद्देश्य

1. मानवीय मूल्यों से अवगत कराना।
2. मानवीय मूल्यों में ह्रास के कारणों से अवगत कराना।
3. मानवीय मूल्यों में ह्रास के रोकने के उपायों से अवगत कराना।

शोध प्रविधि :–

प्रस्तुत शोध पत्र के लिये मानवीय मूल्यों का अध्ययन करने हेतु प्राथमिक समंकों का प्रयोग किया गया है जिसके लिये 250 से अधिक लोगों जिसमें सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षक, पेशेवर व्यक्ति जैसे– वकील, मैनेजर, चाटर्ड एकाउण्टेन्ट, कम्पनी सेक्रेटरी, डॉक्टर, राजनेता आदि थे, से अनुसूचियों एवं प्रश्नावलियों के माध्यम से प्राथमिक समंक एकत्र किये गये हैं। उनके द्वारा भर कर ही गयी प्रश्नावलियों अनुसूचियों से प्राप्त ऑकड़ों का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है साथ ही पहले से प्राप्त कुछ निष्कर्षों को आधार मानते हुये द्वितीय

ऑकड़ों के आधार पर मानवीय मूल्यों का अध्ययन प्रस्तुत पत्र में किया गया है। अनुसूची के तीन भाग बनाये गये हैं जिसके प्रथम भाग में मानवीय मूल्यों की जानकारी, संरचना, द्वितीय भाग में मूल्य ह्रास के कारण एवं तृतीय भाग मूल्य निदान एवं निवारण के सुझाावों या विश्लेषण किया गया है। साहित्य पूर्वालोकन एवं ऑकड़ें द्वितीय संमकों से एकत्र किये गये हैं। कम्प्यूटर प्रोग्राम /एम0एस0एक्सेल की सहायता से ऑकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

तालिका संख्या – 01

मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण

क्र0सं0	मूल्य ह्रास के कारण	रैंक या श्रेणी
01	क्रोध	1
02	काम	2
03	परासुता पराडसूया	3
04	मोह	4
05	षोक	5
06	मद	6
07	ईर्ष्या	7
08	कुत्सा (निंदा)	8
09	मात्सर्य	9
10	लोभ	10

स्रोत : स्वतः सर्वेक्षण

उपरोक्त सारणी का अध्ययन करने से पता चलता है कि उत्तरदाताओं द्वारा मूल्य ह्रास के कारणों में से ''क्रोध'' को प्रथम वरीयता दी गयी है। मानवीय मूल्यों के ह्रास में क्रोध सबसे प्रमुख कारण है। क्रोध के द्वारा छोटी से छोटी बातों पर व्यक्ति को बार–बार गुस्सा आता है। गुस्सा आने से भाव बनते है और इन्हीं भावों के कारण व्यक्ति लडाई, झगडा, मारपीट करता है। जिससे मूल्य ह्रास होता है। मूल्य ह्रास का दूसरा सबसे बडा कारण ''काम' है। काम थोडा गूढ विषय है काम की उत्पत्ति संकल्प में है। जब हम ठान लेते हैं कि हमें तो यह करना ही है हमें तो यह पाना ही है तो वहीं पर काम का जन्म होता है जिसका अधिक उसका सेवन किया जाता है उतना ही वह बढ़ता जाता है और मूल्य ह्रास का कारण बनता है। तीसरे नम्बर पर परासुता को स्थान दिया गया है जिसमें क्रोध व लोभ के कारण परासुता प्रकट होती है। परासुता सम्पूर्ण प्राणियों के प्रति दया का भाव नष्ट कर देती हे इसमें व्यक्ति को सभी प्राणी अपने घोर शत्रु लगने

प्रतीत होते हैं जिस कारण मूल्य ह्रास होता है। चौथे नम्बर पर मोह को मूल्य ह्रास का प्रमुख कारण माना गया है जिसमें मनुष्य सबकुछ जानते हुये भी अनीतिपूर्ण कार्यों में सहयोग देता है। किसी व्यक्ति या वस्तु से अतिशय अनुराग के कारण व्यक्ति धर्म का मार्ग छोड़कर अधर्म का मार्ग पकडता है। शोक के कारण मनुष्य व्यर्थ ही अपने नैतिक मूल्यों को करने में हीला–हवाली करता है। परन्तु यदि मनुष्य यह समझ ले कि शोक निरर्थक है तो कुछ हद तक इसके बुरे प्रभावों से बचा जा सकता हैं मद मानवीय मूल्यों के ह्रके कारणों में से एक मुख्य कारण है अपने उत्तम कुल, उत्कृष्ट ज्ञान, पद तथा ऐश्वर्य का अभिमान होने से व्यक्ति में नैतिक मूल्यों की कमी हो जाती है। ईर्ष्या को उत्तरदाताओं द्वारा सातवां क्रमांक दिया गया है। मनुष्य मन में कामना होने से तथा दूसरे प्राणियों की हॅसी खुशी देखने से ईर्ष्या उत्पन्न होती है मन में जब काम उठता है भोग विलास की कामना जागती है तो निश्चित ही मूल्य, ह्रास का कारण माना गया है जब व्यक्ति अपना ठीक से आकलन नहीं कर पाता है तो वह दोषपूर्ण एवं अप्रमाणिक बचनों को सुनकर भ्रम में पड़ जाता है और जब व्यक्ति को भ्रम होता है तो वह निंदा करने लग जाता है। नौवे नम्बर को उत्तरदाताओं द्वारा मात्सर्य को रखा गया है अर्थात जब मनुष्य द्वारा सत्य का त्याग और दुष्टों का साथ दिया जाता है तो मात्सर्य दोष की उत्पत्ति होती है और अनायास ही मूल्य ह्रास होता है। उत्तरदाताओं द्वारा 10 वे स्थान पर लोभ को मूल्य घृणा का कारण माना है प्राणियों का भोगों के प्रति जो लोभ देखा जाता ह वह अज्ञान के कारण है। अज्ञान में सभी प्रकार के लोभों की उत्पत्ति होती है। अगर मुझे ये मिल जाये अगर मैं वो बन जाऊॅ तो मेरे सभी दुखों का अन्त हो जायेगा और मैं बहुत सुखी हो जाऊॅगा आदि। उपरोक्त सारणी का विश्लेषण करने से पता चलता है कि मानवीय मूल्यों में ह्रास के लिये उपरोक्त दिये गये कारक किस प्रकार से कारण है और मूल्यों को किस प्रकार से कम करते हैं।

मानवीय मूल्यों के निदान एवं निवारण में शिक्षक की भूमिका

जिस प्रकार आज के समय में मानवीय मूल्यों में दिन प्रतिदिन कमी होती जा रही है और उन कमियों के कारकों को ऊपर क्रमबद्ध तरीके से मानवीय मूल्यों की कमियों को दूर करके उनमें सुधार किया जा सकता है और यह सुधार एक शिक्षक के माध्यम से किसी भी मनुष्य के सम्पूर्ण विकास में योगदान दे सकते हैं। एक शिक्षक को यदि किसी देश समाज का निर्माता कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि शिक्षक ही वह धुरी है जो किसी समाज, देश में रहने वाले व्यक्तियों में चरित्रिक निर्माण कर उनमें मानवीय मूल्यों, गुणों की नींव का निर्माण करता है। मानवीय मूल्यों में निदान एवं निवारण में एक शिक्षक की भूमिका को निम्न तालिका की सहायता से क्रमबद्ध किया जा सकता है।

सारणी संख्या –02

मानवीय मूल्य के निदान एवं निवारण में शिक्षक की भूमिका

क्र0स0	मानवीय मूल्य के निदान एवं निवारण में शिक्षक की भूमिका	श्रेणी
01	नैतिकता को बनाने में।	1
02	चरित्रिक निर्माण करने में।	2
03	विवेक एवं ज्ञान के निर्माण करने में।	3
04	आध्यात्मिक क्षेत्र के निर्माण में योगदान।	4
05	सामाजिक निर्माण में योगदान।	5
06	आत्म नियंत्रण के निर्माण में योगदान।	6
07	सांस्कृतिक निर्माण में योगदान।	7
08	अनुभव चिंतन, मनन, तनाव निवारण में योगदान।	8
09	कौशल विकास, तकनीकी विकास में योगदान।	9
10	शिष्टाचार, योगाभ्यास, खेलकूद आदि द्वारा मूल्य निर्माण।	10

स्रोत : स्वतः सर्वेक्षण

किसी देश के राष्ट्र निर्माण में शिक्षक एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। व्यक्ति अपने बाल काल से लेकर युवावस्था तक शिक्षक से शिक्षा ग्रहण करता है, इसलिए एक शिक्षक का अपने शिष्यों से घनिष्ट सम्बन्ध रहता है। इसलिये एक शिक्षक का व्यक्तित्व, मानव को या शिष्य को किसी न किसी रूप में प्रभावित करता है। क्योंकि एक शिक्षक स्वयं समाज के लिये आदर्श होता है अतः उसके द्वारा उसका अनुसरण करके मानवीय मूल्यों को बढ़ाया जा सकता है। उपरोक्त सारणी द्वारा पता चलता है कि उत्तरदाताओं द्वारा नैतिकता को मानवीय मूल्यों के निवारण हेतु प्रथम कारक माना गया है। एक शिक्षक मानव में नैतिक गुणों का विकास करने में योगदान देता है। वह उसमें सदाचार, प्रेम भावना, सहायताप्रद, सच्चाई, नियमों का पालन करने, दूसरों की सहायता करने, समाज के विकास में योगदान देने जैसी मुख्य बातों का विकास करने में सहायता प्रदान करता है। एक शिक्षक का द्वितीय कार्य मानव में चारित्रिक गुणों का विकास करना है, जब तक मनुष्य में चरित्र का निर्माण नहीं होगा उससे किसी भी कार्य में ईमानदारी से भाग लेकर कार्य कराना सम्भव नहीं होगा। कहा भी गया है कि यदि धन खो जाये तो कोई दुःख नहीं है, यदि स्वास्थ्य खो जाये, तो कुछ हानि समझनी चाहिये और यदि चरित्र खो जाये तो सब कुछ नष्ट समझना चाहिए। तीसरे पायदान पर विवेक, ज्ञान को स्थान दिया गया है यदि मनुष्य प्रत्येक कार्य को सही गलत समझकर, इसके दूरगामी परिणाम मनुष्य, समाज, देश पर क्या पडेंगे, तो निश्चित ही मानवीय मूल्यों के विकास में योगदान होगा। ज्ञान के द्वारा ही कठिन से कठिन समस्या को हल किया जा सकता है। एक शिक्षक अपनी शिक्षा से किसी भी मनुष्य को आध्यात्मिक क्षेत्र में लगा सकता है अर्थात जब मनुष्य अपनी भौतिक आवश्यकताओं को पूरा कर लेता है तो उसके बाद वह एक कुशल शिक्षक के सानिध्य में रहकर आध्यात्म की ओर अग्रसर हो

सकता है। एक शिक्षक द्वारा किसी भी व्यक्ति (शिष्य) में सामाजिक मूल्यों का विकास करने में महत्ती भूमिका निभायी जा सकती है। एक व्यक्ति के अपना विकास करने के साथ–2 समाज के विकास के प्रति भी कुछ उत्तरदायित्व होते हैं। अतः एक शिक्षक समाज में रहने वाले व्यक्तियों में सामाजिक मूल्य को पैदा करने में योगदान देता है। आत्म नियंत्रण वह अवस्था है जिसमें व्यक्ति का अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण हो जाता है अतः जब कोई मनुष्य लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, चोरी आदि कुरीतियों को अपने ऊपर हावी नही होने देता और कोइ भी अनुचित काम नहीं करता है तो वह आत्म नियंत्रण की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। संस्कृति प्रत्येक मनुष्य के जीवन से जुड़ी हुई है यहॉ पर किसी भी प्रकार का कोई भी आभूषण नहीं है जिसे मनुष्य प्रयोग कर सके। सस्कृति तो वह गुण है जो हमें मनुष्य बनाती है। सस्कृति के बिना तो मानव जीवन का इस धरा पर रहना ही सम्भव नहीं होगा। संस्कृति, परम्पराओं से, विश्वासों से, जीवन की शैली से, आध्यात्मिक पक्ष से, भौतिक पक्ष से, निरन्तर जुड़ी हुई है। मानव ही संस्कृति का निर्माता है और साथ ही संस्कृति मानव को बनाती है। ऐसे में एक शिक्षक द्वारा मानवीय मूल्यों का विकास किया जाना स्वभाविक सी बात है। आठवें स्थान पर अनुभव चिंतन मनन एवं तनाव के निवारण करने में एक शिक्षक के योगदान को बताया गया है। एक शिक्षक अपने अनुभव से समाज में रहने वाले व्यक्तियों में उनकी जिज्ञासाओं को शांत करके उन्हें तर्क–वितर्क के जंजाल से निकालकर तनाव मुक्ति का सूत्र पकड़ाकर चहुँमुखी विकास करने में अपना योगदान देता है। नौवें स्थान पर एक शिक्षक द्वारा मानव को कौशल विकास एवं तकनीकी विकास के क्षेत्र में पारंगत कर उनकी कुशलता का भरपूर फायदा उठाने के लिए प्रेरित किया जाता है। मानव नई–2 तकनीकियॉ सीखकर रोजगार के साधनों को अपनाकर अपना व अपने समाज व देश के विकास में योगदान करता है। और सबसे अन्तिम बिन्दु (हमारी तालिका न0 2 के अनुसार) शिष्टाचार, योगाभ्यास, खेलकूद है, जिसके द्वारा एक शिक्षक समाज में रहने वाले व्यक्तियों में शालीनता शिष्टाचार, प्रेम का भाव पैदा करने में अपना योगदान देता है। वह मनुष्य को बुद्वि से ही नहीं बल्कि शारीरिक रूप से भी हस्ट–पुष्ट बनाने में योगदान देता है। वह उन्हें नित्य ही योगाभ्यास करने के लिये प्रेरित करता है ताकि पूरे दिन शरीर में सही उर्जा का संचार हो सके। शाम के समय खेलकूद के लिये प्रेरित करता है ताकि शरीर मजबूत बना रहे, रोग प्रतिरोधक शक्ति बनी रहे। और अपने परिवार समाज के लिये एक रक्षक की तरह अपना योगदान दे सके। अतः उपरोक्त सारणी का अध्ययन करने के पश्चात यही कहा जा सकता है कि एक शिक्षक किसी भी समाज में रहने वाले लोगों में मानवीय मूल्य के निर्माण करने में अपनी भूमिका निभाता है और शिक्षक की सहभागिता के द्वारा मानवीय मूल्यों के निदान में सहायता भी प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

प्राचीन काल से लेकर वर्तमान कालक्रम तक मानव के विकास की अवस्थाओं में अनेकों परिवर्तन आये हैं और इन्हीं कालक्रमों के परिवर्तनों के कारण समय–समय पर मानव में विभिन्न मूल्यों (गुणों) की उपस्थिति एवं अनुपस्थिति पायी गयी जाती है। मानव इस सृष्टि की अद्भुत

रचना है जो ईश्वर ने बनायी है इसलिए असमें सामाजिकता, नैतिकता, राजनैतिकता, मद–लोभ, ईर्ष्या, घृणा, प्रेम शक्ति, सामर्थ्य, ज्ञान, विवेक शील अच्छे बुरे सभी गुणों का समावेश है। एक समय विशेष पर जब किसी एक पक्ष की अधिकता हो जाती है तो व्यक्ति उसी के अनुरूप अपना आचरण, व्यवहार करने लग जाता है। नैतिक मूल्यों के द्वारा मानव अपने व्यवहार तथा कार्यों को नियंत्रित करता है। नैतिक मूल्यों का किसी भी समाज के उन्नति तथा पतन में एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। प्रस्तुत शोध पत्र में मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारणों को एक सूचीबद्ध सारणी के माध्यम से रेंक के आधार पर वर्णन किया गया है जो कि समाज में रहने वाले विभिन्न व्यक्तियों से उनके दिये गये निष्कर्षों उत्तरों के आधार पर निकाले गये हैं। जो कि किसी भी समाज विशेष में रहने वाले व्यक्तियों पर सटीक बैठते हैं क्योंकि आज के भागम–भाग समय में इन कारकों की अधिकता पायी जाती है। परन्तु इस शोधपत्र के माध्यम से मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारणों का निवारण भी किया जा सकता है और जिसमें एक शिक्षक की महत्वी भूमिका होती है। सारणी संख्या 02 के माध्यम से यह बताने की कोशिश की गयी है कि किस प्रकार से एक शिक्षक समाज में रहने वाले व्यक्तियों का नैतिक, चारित्रिक, मानसिक, सामाजिक, निर्माण कर उनमें मूल्यों को फिर से जागृत कर सकता है तथा उनका सर्वागीण विकास कर सकता है। गुरूदेव रविन्द्रनाथ ठाकुर ने भारतीय कालतीत उच्च श्रेष्ठ मूल्यों को जन साधारण के जीवन में प्रस्थापित करने के उद्देश्य से ही ''शांति निकेतन'' जैसी शिक्षाण संस्था की स्थापना की और इसके लिये उन्होंने प्रतिभाशाली तथा आदर्शवादी व्यक्तियों की मदद ली और स्वयं उन्हें उचित कार्य करने के लिये प्रेरित किया। निष्कर्ष रूप में यही कहा जा सकता है कि मानवीय मूल्य के ह्रास के कारणों को एक शिक्षक द्वारा अनी दृढ इच्छा, नेतृत्व की क्षमता, सामाजिक उत्थान के लिये कुछ कर गुजरने की चाहत के माध्यम से कम करके मानव का सर्वागीण विकास करने में अपना योगदान दिया जाता रहा है।

सन्दर्भ

1. *Adelaide Declaration (1999) National schooling goals for the twenty-first Century. http://www.curriculum.edu.au/mceetya/nationalgoals/natgoals.htm*
2. *Bergmark, U. (2007). Ethical learning through meetings with others. The International Journal of Learning, 14, 105-112.*
3. *Central Board of Secondary Education (2003), Value Education,A Handbook for Teachers. New Delhi, CBSE*
4. *DEST (2003). Values education study. Melbourne: Curriculum Corporation.*
5. *DEST (2005). National framework for values education inAustralian schools. Canberra: Department of Education, ScienceAnd Training*
6. *Habermas, J. (1990). Moral consciousnessAnd communicativeAction. (transl. C. Lenhardt & S. Nicholson) Cambridge, MASS: Massachusetts Institute of Technology Press.*

7. *Press. Hirinyana, M: Indian Conception of Values, Mysore, Kavalya Publishers, 1975*
8. *Huling-Austin, J.A systhesis of research on teacher induction programsAnd practices; paper presented to theAnnual Meeting of theAmerican Educational ResearchAssociation, New Orleans LA,April 5– 9, 1988*
9. *Kumar Pradeep, Raman Charla.,(2013) Human Values & Professional Ethics, Paramount Publishing House, Hyderabad.*
10. *Lovat, T. (2005). The National Framework for Value Education: Implications for Research on Quality Teaching, conference heldAt the University ofNewcastle, NSW,Australia.March, 2005.*
11. *NCERT:The ConceptAnd Practice of Equality of Educational Opportunity in India, New Delhi,*
12. *NCERT, 1970 Pandey, M.M. (2004): Department of education R.I.E. (NCERT),AJMER*
13. *Norman, R.,(1998) the Moral Philosophy-An Introduction to Ethics, Oxford University Press, Oxford.*
14. *TripathiA.N.,(2008) Human Values, NewAge International(P) Ltd, New Delhi, 2008.*
15. *Wa1ford, G. (2001). Doing Qualitative Educational Research:A personal guide to the Research Process. London:Continuum. 25-30.*
16. *Walsch, N. (2004). Tomorrow's God- Our Greatest Spiriitual Challenge. London: HodderAnd Stoughton Ltd.*
17. *www.sssieducare.org/valueeducation*
18. *मानवीय मूल्य एवं विचार – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय*
19. *डा0 महावीर प्रसाद गुप्ता, शिक्षा के दार्शनिक एवम् सामाजिक आधार, मार्डन पब्लीशर्स जालन्धर*
20. *शिक्षा और मानव विकास – उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

महर्षि अरविन्द के योग की वर्तमान मानवीय मूल्यों की प्रासंगिकता का निरुपण

भरत लाल बारी
शोध छात्र (योग विभाग)
महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय चित्रकूट सतना (म0प्र0)

प्रस्तावना

वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों के विकास में योग को महत्वपूर्ण एवं सशक्त माध्यम माना जाता है। क्योंकि भारत एक विविध धर्मों वाला देश होने के कारण मानवीय मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है। मानवीय मूल्यों में सत्य, धर्म, शांति, प्रेम, अहिंसा आदि का मानव–जीवन में समावेश होने से जीवन शांतिपूर्ण एवं स्थायित्व और मानव जीवन सुखमय व आनंद से परिपूर्ण रहता है।

भारत में सदियों से ऋषि मुनियों द्वारा योग व प्राणायाम का अभ्यास किया जाता है। यह संस्कार भारत की ही देन हैं। भारत में प्रत्येक व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में कार्य प्रारंभ करने से पहले प्रार्थना व घर तथा परिवारो में प्रातः तथा सांयकाल को प्रार्थना की जाती है।

लेकिन आज के इस नये दौर में नवीन पीढ़ी ने पाश्चात्य मूल्यों को अपना लिया है और पश्चिमी देशों का प्रभाव बढ़ने के कारण व्यक्तिगत ''द्वंद एवं भ्रम फैल रहा है कि अब यही हमारी संस्कृति है जिससे नवीन एवं पुरानी पीढ़ी के बीच अन्तराल उत्पन्न होने लगा है। इस समस्या का मूल कारण है मानवीय मूल्यों का ह्यस लेकिन नवीन पीढ़ी को भारतीय मानवीय मूल्यों से अवगत कराना है तो उन्हे योग तथा उसकी क्रियाएं शरीर तथा मन को अनुशासित कर जीवन के चरमोद्देश्य आनंद की प्राप्ति में सहायक सिद्ध होती हैं। आत्मा में निहित विशेषताओं की निधियों को खोज निकालना योग से ही संभव होता है। एकांत, मौन व ध्यान मनुष्य की मानसिकता पर गहरा सकारात्मक प्रभाव छोड़ते हैं। यही कारण है कि आधुनिक चिकित्सक भी 'योग' अभ्यास करने का निर्देश देते हैं। महर्षि अरविन्द द्वारा प्रतिपादित योग पद्धति के द्वारा नैतिक–प्रसाधन पर बल दिया जाता है। अपनी संपूर्णता में योग मानव के व्यक्तिगत कल्याण के साथ–साथ समष्टिगत कल्याण भी सिद्ध करता है।

महर्षि अरविन्द घोष द्वारा योग की परिभाषा

योग का अर्थ है भगवान के साथ एकत्व। चाहे वह एकत्व विश्वातीत हो या विश्वगत या व्यक्तिगत हो ये सब तीनों एक ही है। योग एक ऐसी चेतना मे प्रवेश करना है जिसमें मनुष्य तुच्छ

अहं व्यक्तिगत मन प्राण और शरीर से अब सीमित नही रहता बल्कि परम आत्मा के साथ विश्वगत चेतना के साथ युक्त होता है जिसमें वह अपनी निजी अन्तरात्मा के विषय में अपनी आतंरिक सत्ता के विषय में और जीवन के यथार्थ सत्य के विषय में सचेतन रहता है।

योग चेतना में चले जाने पर मनुष्य केवल वस्तुओं का ही ज्ञान प्राप्त नही कर लेता वरन् उसके साथ–साथ शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। और केवल शक्तियों का ही नही वरन् शक्तियों के पीछे विद्यमान चेतना समेत मन पुरूष का भी ज्ञान प्राप्त कर लेता है वह इन सभी के बारे में ज्ञान केवल अपने ही अन्दर नहीं, अपितु सारे विश्व जगत् के अन्दर भी प्राप्त कर लेता है। प्रकृति की क्रियाओं के दो प्रयोजन हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि वे सदा ही मानव–क्रिया के महत्तर रुपों में हस्तक्षेप करते रहते हैं। ये रुप या तो हमारे साधारण कार्य क्षेत्रों से सम्बन्धित हो सकते हैं या उन आसाधारण क्षेत्रों और उपलब्धियों की खोज कर रहे होते हैं जो हमें उच्च और दिव्य प्रतीत होती हैं। ऐसा प्रत्येक रुप एक ऐसी समन्वित जटिलता या समग्रता की ओर उन्मुख होता है जो पुनः विशेष प्रयत्न और प्रवृत्ति की विविध धाराओं में विभक्त तो हो जाती है, पर फिर एक अधिक विशाल और अधिक शक्तिशाली समन्वय में जुड़ भी जाती है। दूसरी बात यह है कि किसी चीज का रुपों में विकास एक प्रभावशाली अभिव्यक्ति का अनिवार्य नियम है; पर फिर भी वह समस्त सत्य और व्यवहार अत्यधिक कठोर ढंग से निर्मित होता है, यदि अपना पूरा गुण नहीं तो कम–से–कम उसका एक बड़ा भाग तो खो ही देता है। इसे लगातार आत्मा कि नूतन धाराओं से जीवन–शक्ति मिलती रहनी चाहिए जो मृत या मृतप्राय साधन में जीवन का संचार करती रहें तथा उसमें परिवर्तन लाती रहें; केवल तभी उसे नव–जीवन प्राप्त हो सकता है। सदा ही पुनर्जन्म लेते रहना भौतिक अमरत्व की शर्त है। हम एक ऐसे युग में निवास कर रहे हैं जो भावी सृष्टि की प्रसव–वेदना से व्याकुल है। इस युग में विचार और कर्म–संबंधी वे समस्त रुप जिनके अन्दर उपयोगिता की या स्थिरता के किसी गुप्त गुण की सबल शक्ति मौजूद है एक सर्वोच्च परीक्षा में से गुजर रहे हैं तथा उन्हें पुनः जन्म लेने का अवसर प्रदान किया जा रहा है। वर्तमान जगत् 'मीड़िया' के विशालकाय कड़ाह का दृश्य उपस्थित कर रहा है जिसमें सब कुछ डालकर उसके टुकडे–टुकड़े कर दिये गये हैं, उन टुकडों पर प्रयोग किये जा रहे हैं तथा उन्हे एकत्रित और पुनः एकत्रित किया जा रहा है, जिससे या तो वे नष्ट होकर नये रुपों के लिए बिखरे हुए उपादान जुटाएं या फिर नव–जीवन प्राप्त कर के पुनः प्रकट हो जाएं अथवा यदि वे अभी और जीवित रहना चाहते हैं तो रुपांतरित हो जाएं।

भारतीय योग अपने सार–तत्व में 'प्रकृति' की कुछ महान् शक्तियों की एक विशेष क्रिया या रचना है; यह स्वयं विशिष्ट एवं विभाजित है और विविध प्रकार से निर्मित है। अतएव, यह अपने बीज–रुप में मनुष्य–जाति के भावी जीवन के इन सक्रिय तत्त्वों में से एक है। यह अनादि युगों का शिशु है तथा हमारे इस आधुनिक समय में अपनी जीवन–शक्ति और सत्य के बल पर जीवित है। अब यह उन गुप्त संस्थाओं और संन्यासियों की गुफाओं में से बाहर निकल रहा है

जिनमें इसने आश्रय लिया था। यह आजकल की जीवित मानवीय शक्तियों और उपयोगिताओं के भावी संघात में अपना स्थान खोज रहा है। किन्तु इसे पहले अपने–आपको पाना है, प्रकृति के जिस सामान्य सत्य और सतत् उद्देश्य का यह प्रतिनिधित्व करता है उसमें इसे अपने अस्तित्व के गहनतम कारण को ऊपरी तल पर लाना है तथा इस नये आत्म–ज्ञान और आत्म–परिचय के द्वारा अपने पुनः प्राप्त और अधिक विशाल समन्वय को ढूंढ़ना है। अपनी पुनर्व्यवस्था प्राप्त कर लेने के बाद ही यह जाति के पुनर्व्यवस्थित जीवन में अधिक सरलता से तथा अधिक शक्तिशाली रूप में प्रवेश पा सकेगा। इसकी क्रियाएँ दावा करती हैं, कि वे जाति के इस जीवन को अन्तरतम गुप्त कक्ष तक, अपने अस्तित्व और व्यक्तित्व की उच्चतम चोटी तक ले जाएँगी। अगर हम जीवन और योग दोनो को यथार्थ दृष्टिकोण से देखें तो संपूर्ण जीवन ही चेतन या अवचेतन रुप में योग है। कारण, इस शब्द से हमारा मतलब सत्ता में प्रसुप्त क्षमताओं की अभिव्यक्ति के द्वारा आत्म–परिपूर्णता के लिए किया गया विधिबद्ध प्रयत्न और मानव–व्यक्ति का उस विश्वव्यापी और परात्पर सत्ता के साथ मिलन है जिसे हम मनुष्य और विश्व में अंशतः अभिव्यक्त होता हुआ देखते हैं। किन्तु जब हम जीवन को उसके बाह्य रुपों के पीछे जाकर देखते हैं तो वह प्रकृति का एक विशाल योग दिखायी देता है। उन रुपों के द्वारा प्रकृति अपनी शक्यताओं की सदा–वृद्धिशील अभिव्यक्ति में अपनी पूर्णता प्राप्त करने की तथा अपनी दिव्य वास्तविक सत्ता के साथ एक होने की चेष्टा कर रही है। मनुष्य उसका एक विचारशील प्राणी है, अतएव उसमें वह पहली बार क्रिया के उन स्व–चेतन साधनों और इच्छाशक्ति से युक्त प्रणालियों की रचना करती है जिनकी सहायता से यह महान् उद्देश्य अधिक द्रुत और शक्तिशाली वेग से पूरा हो सकेगा।

आधारभूत मानवीय तत्व

- सत्य,
- धर्म,
- शांति,
- प्रेम,
- अहिंसा

सत्य

सत्य किसी तथ्य की सत्यता किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा या आकांक्षा पर निर्भर नहीं करती। सत्यता का अस्तित्व इच्छाओं, हितों एवं विचारों से स्वतंत्र होता है। यह सच है कि कोई भी झूठा व्यक्ति बल्कि अधिकांश झूठे लोग स्वयं को झूठा कहलवाना पसंद नहीं करते। इस बात को प्रमाणित करता है कि सत्य एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है तथा यह मानव मन में अन्तर्निहित होता है। सत्य से बौद्धिक संतुष्टि मिलती है। केवल सत्य के अस्तित्व का ही नहीं, बल्कि सत्य के ज्ञान का भी साध्यमूल होता है। यह सर्वविदित है कि सत्य एक साध्यमूल है।

सत्य का प्रतिफल

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।।2/36।।

जब योगी सत्य का पालन करने में पूर्णतया परिपक्व हो जाता है, उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं रहती, उस समय वह योग, कर्तव्यपालन, रुप क्रियाओं के फल का आश्रय बन जाता है। जो कर्म किसी ने नहीं किया है, उसका भी फल उसे प्रदान कर देने की शक्ति उस योगी में आ जाती है, अर्थात् जिसको जो वरदान, शाप या आर्शीवाद देता है, वह सत्य हो जाता है।

धर्मः

यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः।

धर्म वह अनुशासित जीवन क्रम है, जिसमें लौकिक उन्नति (अविद्या) तथा आध्यात्मिक परमगति (विद्या) दोनों की प्राप्ति होती है। धर्म का शाब्दिक अर्थ है जो धारण करने योग्य है, वही धर्म है। पृथ्वी समस्त प्राणियों को धारण किए हुए है। जैसे हम किसी नियम को, व्रत को धारण करते हैं इत्यादि। इसका मतलब धर्म का अर्थ है कि जो सबको धारण किये हुए है।

धारयति इति धर्मः!

अर्थात्– जो सबको संभाले हुए है

धारण करने योग्यः–

सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, क्षमा आदि।

मनु के अनूसार धर्म के लक्षणः–

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं षौचमिन्द्रियनिग्रहः।

धीर्विद्या सत्यमक्रोधो, दषकं धर्मलक्षणम्।।

धृति (धैर्य), क्षमा (दूसरों के द्वारा किये गये अपराध को माफ कर देना, क्षमाशील होना), दम (अपनी वासनाओं पर नियन्त्रण करना), अस्तेय (चोरी न करना), शौच (आंतरिक और बाह्य शुचिता), इन्द्रिय निग्रहः (इन्द्रियों को वश में रखना), धी (बुद्धिमत्ता का प्रयोग), विद्या (अधिक–से–अधिक ज्ञान की पिपासा), सत्य (मन, वचन और कर्म से सत्य का पालन) और अक्रोध (क्रोध न करना); येदस धर्म के लक्षण हैं।

शांति

शांति का अर्थ है समरसता अर्थात् द्वेष और संघर्ष का अभाव। यह एक संतुलित परन्तु गत्यात्मक मानसिक स्थिति है। मानवीय मूल्यों– एक प्रकार्यात्मक संबंध होता है। अतः व्यक्ति अथवा समाज के नियत्रंण या अनुमोदन से समस्त मानवीय अभिप्रेरणाएँ मूल्यों में रुपान्तरित हो जाती है। इनमें से सभी भावात्मक मानवीय मूल्यों के सम्मिलन से ही शांति की स्थापना संभव हो पाती है चाहे वह व्यक्तिगत जीवन में हो या फिर समाज या विश्व के स्तर पर। सत्य, न्याय और

प्रेम, तथा भाईचारा शांति की स्थापना के लिए आवश्यक शर्ते है जिनके अभाव में हितों का संघर्ष शुरु होता है तथा शांति खतरे में पड़ जाती है। जबकि शांति को उपद्रव, हिंसा, युद्ध तथा दुराचार के अभाव के रुप में भी समझा जा सकता है परन्तु इसके मूर्त रुप को समझना मुश्किल नहीं, क्योंकि व्यक्ति इसे एक–दूसरे के प्रति आदर, मित्रभाव, सहिष्णुता और शांति के रुप में महसूस करता है। मन की शांति भले ही एक व्यक्तिगत अनुभव हो, परन्तु समाज के सन्दर्भ में शांति की स्थापना सकारात्मक कार्यो से ही संभव है। ये कार्य हिंसक या विध्वंसात्मक नहीं बल्कि रचनात्मक एवं सहिष्णुतापूर्ण होते हैं।

प्रेम

प्रेम शब्द का व्यापक अर्थ है। यहाँ 'प्रेम' से अभिप्राय है स्नेह रखना, ध्यान रखना तथा किसी की सुध लेना। मानव मूल्यों में यह बेहद मौलिक है जो दूसरों के प्रति आदर तथा सेवा भावना को व्यक्त करता है। प्रेम को व्यक्ति सामान्य तौर पर 'व्यक्तिगत' अर्थों में लेता जिसमें काम विषयक भावना निहित होती है। परन्तु मानव मूल्य के अर्थ में प्रेम का सार एक पवित्र भावना को परिलक्षित करता है। यहाँ 'प्रेम' का अर्थ निःस्वार्थ प्रेम है जो दूसरों के प्रति तथा पूरे विश्व के प्रति समर्पित किया जा सकता है।

अहिंसा

मानवीय मूल्यों में अहिंसा का महत्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा के बिना सर्वोच्च सत्य की सिद्धि असम्भव है। अहिंसा का अर्थ है हिंसा न करना अर्थात् यह एक मानवीय प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्ति प्राणियों तथा उनके परिवेश को हर प्रकार की हानि से सुरक्षित रखने की चेष्टा करता है। स्वार्थ और द्वेष को त्यागकर क्रोध पर विजय प्राप्त करना तथा किसी को भी किसी प्रकार का दुःख या कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। मूल्यात्मक अवधारणा होने के साथ–साथ अहिंसा एक व्यापक अवधारणा भी है। इस अर्थ में पर्यावरण तथा परिस्थितिक तंत्र का शोषण तथा प्रदूषण आदि से रक्षा करना भी अहिंसा के अर्न्तगत आता है। वस्तुतः इस कार्य से अहिंसा की भावना को बल मिलता है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो हमें अनैतिक कार्य करने तथा प्रकृति में असंतुलन पैदा करने जैसे कार्यो से रोकता है। अतः अहिंसा के आधार पर ही आदर्श पर ही समाज का संगठन किया जा सकता है।

अहिंसा का फल

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।।2/35।।

जब योगी का अहिंसाभाव पूर्णतया दृढ़ स्थिर हो जाता है तब उसके निकटवर्ती हिंसक जीव भी वैरभाव से रहित हो जाते हैं। इतिहास–ग्रन्थों में जहाँ मुनियों के आश्रमों की शोभा वर्णन आता है, वहाँ वनचर जीवों में स्वाभाविक वैर का अभाव दिखलाया गया है, यह उन ऋषियों के अहिंसाभाव की प्रतिष्ठा का द्योतक है।

मानवीय मूल्यों में सकारात्मक परिवर्तन हेतु यौगिक साधन

महर्षि अरविन्द द्वारा निम्न प्रकार के योगिक साधनाओं का वर्णन किया गया है। जो इस प्रकार है

- समग्र योग
- आत्मिकता की प्रक्रिया
- आध्यत्मिकता की प्रक्रिया
- अतिमानसिकता की प्रक्रिया

समग्र योग

सभी प्रमुख यौगिक प्रणालियों में मनुष्य के जटिल और पूर्ण रुप पर क्रिया की जाती है तथा उसकी उच्चतम सम्भावनाओं को प्रकाश में लाया जाता है। इन प्रणालियों के ऐसे स्वरुप को देखते हुए यह पता लगेगा कि इन सब के समन्वय को यदि विशाल रुप में विचार और प्रयोग में लाया जाय तो इसका परिणाम समग्र योग हो सकता है। किन्तु सब अपनी प्रवृत्तियों में इतनी विभिन्न हैं तथा अपने रुपों में इतनी अधिक विशिष्ट और जटिल हैं और साथ ही इनके विचारों और पद्धतियों के परस्पर–विरोधी को इतने लम्बे समय तक पुष्टि मिलती रही है कि इन्हें यथार्थ रुप से संयुक्त करने की विधि का पता नही चलता। बिना विचार और विवेक के एक संघात में इनको एकत्र कर देने का अर्थ समग्र योग नहीं, बल्कि एक 'गड़बड़झाला' होगा। हमारे मानव–जीवन के इस छोटे से काल में इनका बारी–बारी से अभ्यास करना सहज नहीं है, विशेषतया जबकि हमारी शक्तियां भी सीमित हैं, और इस बोझिल प्रक्रिया में कितना परिश्रम व्यर्थ जायगा। इसकी तो बात ही क्या। वस्तुतः कभी–कभी तो हठयोग और राजयोग का बारी–बारी से अभ्यास किया जाता है। अभी हाल में श्रीरामकृष्ण परमहंस के जीवन में इस बात का एक विशेष दृष्टान्त देखने में आया हैः उनमें एक बहुत बड़ी आध्यात्मिक शक्ति मौजूद थी, जिसने पहले सीधे ही भगवान् की प्राप्ति की, मानो स्वर्ग के राज्य को बलपूर्वक हस्तगत कर लिया और बाद में जिसने हर एक यौगिक प्रणाली का प्रयोग करके द्रुतगति से उसका सार निकाल लिया। उसका उद्देश्य सदा पूरे विषय के अन्तस्तल तक अर्थात् प्रेम की शक्ति के द्वारा, विभिन्न प्रकार के अनुभवों में अन्तर्निहित आध्यात्मिकता के विस्तार तथा एक सहज ज्ञान की स्वाभाविक क्रीड़ा के द्वारा भगवान् की अनुभूति और प्राप्ति तक पहुंचना होता था। पर ऐसे उदाहरण को व्यापक रुप नहीं दिया जा सकता। उसका उद्देश्य भी विशेष और अस्थायी ही था।

उसका कार्य एक महान् आत्मा की विशाल और अन्तिम अनुभूति में उस सत्य को सिद्ध करना था जो आजकल मनुष्यजाति के लिये अत्यधिक आवश्यक है तथा जिसे पाने के लिये चिरकाल से विरोधी मतों और सम्प्रदायों में विभाजित संसार कठोर प्रयास कर रहा है। वह सत्य

यह है कि सभी सम्प्रदाय एक ही समग्र सत्य के रुप और खण्ड हैं और सभी अनुशासन–प्रणालियाँ अपने विभिन्न तरीकों से एक ही सर्वोच्च अनुभव की प्राप्ति के लिये श्रम कर रही हैं। भगवान् को जानना, वही बन जाना तथा उन्हें पाना ही एक आवश्यक वस्तु है; बाकी सब बातें या तो इसके अन्दर आ जाती हैं या इसका परिणाम होती हैं। इसी अकेले 'शुभ' की ओर हमें बढ़ना है और यदि इसकी प्राप्ति हो गयी तो बाकी सब जिसे भागवत् इच्छा–शक्ति हमारे लिये चुनेगी अर्थात् सब आवश्यक रुप और अभिव्यक्तियां पीछे अपने–आप प्राप्त हो जाएंगी।

आत्मिकता प्रकिया

इस समय जब कि हम लोगों में से बहुतों ने भारतवर्ष के प्राचीन वैदिक योग को श्रद्धा और विश्वास की दृष्टि से देखना तक छोड़ दिया है, और बहुत ही थोड़े लोग ऐसे हैं जो उस योग का वास्तविक नित्य साधन करते हों, श्रीअरविन्द उसी योग का उद्धार कर उसकी पुनः स्थापना कर रहे हैं। संसार तो आज मन–बुद्धि के चलाये चलता है और मन–बुद्धि के चलाये चलने वाले ऐसे विद्वान् बुद्धिमानों में यह सामर्थ्य नहीं है कि आत्मतत्व की गुह्य में पहुँचकर प्रत्यक्ष ब्रह्मसंस्पर्श कर सके। संसार के जो बड़े–से–बड़े तत्त्वज्ञ है वे इतने से ही संतुष्ट है कि ईश्वर की बौद्धिक भक्ति करें, एक ऐसा सर्वाधार आत्मतत्त्व का भान करें कि उससे इन्द्रियों का पूर्ण संयम हो और अपार अतीन्द्रिय महासुख की उपलब्धि हो। यह बात तो बड़े जोर के साथ कही गयी है कि एक ऐसी स्वतः सिद्ध अन्तर्ज्ञान है जिससे मनुष्य को सत्य का साक्षात्कार होता है। परन्तु इस सम्बन्ध में बड़े–बड़े मान्य विद्वान् भी बहुत गहराई में नहीं जा सके है। कदाचित् इतने से ही उनका कार्य समाप्त होता हो कि एक ऐसी विचार–धारा उत्पन्न और प्रवाहित करें जिसके अन्त में यह स्वीकार करना पड़े कि सत्य जो कुछ है उसके मर्मस्थान तक पहुॅचना बुद्धि या विचार का काम नही है, वहां तो स्वतः सिद्ध अन्तर्ज्ञान का ही आश्रय लेना पड़ता है। प्लेटो, प्लाटिनस, स्पिनोजा, ब्राड़ले आदि पाश्चात्य तत्त्वज्ञों ने अपने तत्त्व ज्ञान को इसी सिद्धान्त में आकर समाप्त किया है। भारतवर्ष में शंकर और रामानुज ने अपने परिज्ञान को आगे बढ़ाया पर अन्त इसी बात में किया कि सत्य के वास्तविक स्वरुप की उपलब्धि बौद्धिक या रसबोधक स्वतः सिद्ध अन्तर्ज्ञान से ही हो सकता है।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (1/2 पातजंलयोगदर्शन)

भारतवर्ष में योग चित्तशुद्धि और चित्तवृत्ति–निरोध का उपाय माना गया है, इसी से आगे ज्ञान प्रकाश होता है। भारतवर्ष में तत्त्वज्ञान कभी बुद्धि से परिसीमित नही हुआ, बल्कि उत्तमोत्तम सिद्धियों के लिये सूक्ष्माति–सूक्ष्म स्वतः सिद्ध ज्ञानवृत्तियों का ही आश्रय लिया गया है। अर्थात् आत्मविकास और आत्मसंयम के साधन की कला के तौर पर ही योगतत्त्व ज्ञान से सम्बन्ध रहा है। सम्यक् ज्ञान, सम्यक् आचरण पर निर्भर करता है। बौद्धाचार्यों ने इसके तीन पाद माने हैं– सदाचरण, ध्यान और ज्ञान, सच्चे आचार–विचार और व्यवहार से प्राप्त होता है। जीवन और

ज्ञान का परस्पर जैसा अविच्छन्न सम्बन्ध है उसे समझने में हमलोगों को गलती नही करनी चाहिये। सामान्यतः योग के विषय में यह धारणा है कि योग सदाचार की एक कला है जिससे चित्तवृत्ति–निरोध होता है और छिपी हुई सूक्ष्म सिद्धियाँ खुल जाती है।

आध्यात्मिकता की प्रकिया

आजकल आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में अनेकों–अनेक भ्रान्त धारणाएँ धारण कर ली है। इसका कारण तो यह है कि आधुनिक मनोभाव पाश्चात्य शिक्षा–दीक्षा के द्वारा गठित हुआ है। पाश्चात्य देशों में आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध में जैसी विचित्र धारणाएँ हैं, उन्हीं सबने हमारे शिक्षित समाज में भी अपना घर बना लिया है। दूसरी ओर, हमारे देश में जिन लोगो ने पाश्चात्य शिक्षा नही पायी है जिन पर उस शिक्षा का प्रभाव नहीं पड़ा। उन लोगो ने भी अधिकांश में धर्म सम्बन्धी जितने गतानुगतिक बाहरी आचार–व्यवहार है, उन्हीं को आध्यात्मिक जीवन का मूल तत्त्व मान लिया है। भारत में आध्यात्मिक जीवन के नाम पर प्रचलित घोर तामसिकता के विरुद्ध स्वामी विवेकानन्द जी ने जो आजीवन संग्राम किया, हमारे देश के शिक्षित समाज में उसका बहुत आदर हुआ है। परन्तु स्वामी जी की आध्यात्मिकता किस बात में है उनकी जीवन–सम्बन्धी निगूढ़ शिक्षा क्या है, यह बात आज दिन भी लोंगो की ठीक–ठीक समझ में नही आयी। इस विषय में तनिक भी सन्देह नहीं कि सेवाश्रम स्थापित करके तमोग्रस्त भारत में वह एक नये युग्की सूचना कर गये। पर संसार में सेवाश्रमों की क्या कमी है? इस कार्य में भारत आज भी जड़वादी पाश्चात्य देशों से बहुत ही पिछड़ा हुआ है, यद्यपि एक समय में बौद्ध–संघो के द्वारा भारत ने ही संसार को सेवाधर्म की शिक्षा दी थी। आजकल जितने ईसाई–मिशन संसार में सेवाकार्य कर रहे हैं वे उसी प्राचीन बौद्ध मिशन की प्रतिछाया है। दरिद्रनारायण की सेवा, पीड़ितों की शुश्रूशा, देश का कल्याणसाधन, संसार का कल्याणसाधन ये सब बड़े महान् कार्य है; इन सबके द्वारा हमारे शरीर और मन की शक्ति विकसित होती है, हृदय विशाल होता है, हम संकीर्ण स्वार्थपरता से ऊपर उठकर साम्य और मैत्री का भाव प्राप्त करते है।

परन्तु आध्यात्मिक जीवन इतना सा ही नही है; ये सब बातें तो उपकरणमात्र हैं, जिनके द्वारा मनुष्य अध्यात्म–जीवन के लिये एक हद तक आगे बढ़ सकता है। आध्यात्मिक जीवन की मूल बात तो हमारी देह, प्राण, मन, बुद्धि के परे जो आत्मा है उसमे है। जिस आत्मा के द्वारा हम भगवान् के साथ एक हैं, उसी आत्मा को जानना, उसी आत्मा की शक्ति और ज्योति के द्वारा देह, प्राण, मन को ऐसे शुद्ध और रुपान्तरित करना कि सब भगवत्–ज्ञान, भगवत्–शक्ति, भगवत्–आनन्द से परिपूर्ण हो उठें, यही आध्यात्मिक जीवन की मूल बात है।

अतिमानसिकता की प्रकिया

योग का लक्ष्य यह है कि मानव–सत्ता को साधारण मन की चेतना से आत्मा की चेतना में उठा ले जाया जाये। साधारण मन की चेतना प्राणिक और भौतिक प्रकृति के नियन्त्रण के अधीन

है, जन्म, मृत्यु और काल के द्वारा तथा मुक्त मन–प्राण–शरीर की आवश्यकताओं एवं कामनाओं के द्वारा पूर्णतया आबद्ध है। उधर आत्मा की चेतना अपनी सत्ता में मुक्त है और मन–प्राण–शरीर–रुपी अवस्थाओं को आत्मा के ऐसे स्वीकृत या स्वयंनिर्वाचित निर्धारणों के रुप में प्रयुक्त करती है जो उसे (आत्मा को) एक मूर्त रुप प्रदान करते हैं। इनका प्रयोग वह मुक्त आत्मज्ञान, सत्ता के मुक्त संकल्प एवं सामर्थ्य तथा मुक्त आनन्द के साथ करती है। साधारण मर्त्य मन जिसमें हम निवास करते हैं हमारी दिव्य एवं अमर सत्ता की अध्यात्म–चेतना जो योग के उच्चतम परिणाम के रुप में प्रकट होती है। इन दोनों में मूल भेद यही है। यह एक प्रकार का आमूल रुपान्तर है, यह उस परिवर्तन जितना ही महान् है कि उससे भी अधिक महान् है जिसे, हमारी समझ में, विकासात्मक प्रकृति प्राण–प्रधान पशु से पूर्णतः मानसीकृत मानव–चेतना की ओर अपने संक्रमण में साधित कर चुकी है। पशु में सचेतन प्राणमय मन है, पर उसमें किसी उच्चतर वस्तु के जो भी आरम्भिक संकेत हैं वे बुद्धि की प्राथमिक झांकी या स्थूल इंगितमात्र हैं। पर मनुष्य में बुद्धि मानसिक बोधशक्ति, संकल्प, भावावेग, सौन्दर्यवृत्ति और तर्कबुद्धि का उज्ज्वल रुप बन जाती है। मन की चोटियों तक ऊँचे उठकर और उसके गहराइयों के द्वारा गंभीर बनकर मनुष्य अपने अन्दर स्थित किसी महान् एवं दिव्य सत्ता को जान जाता है जिसकी ओर कि यह सब कुछ गति कर रहा है। वह सत्ता एक ऐसी वस्तु है जो कि वह बन सकता है, पर अभी तक बना नहीं है। वह अपने मन की शक्तियों को, अपनी ज्ञानशक्ति को तथा संकल्प, भावावेग एवं सौन्दर्यबोध की शक्ति को इसी वस्तु की ओर लगाता है, ताकि वह इसे ढूंढ़ सके, इसका जितना कुछ स्वरुप हो सकता है उस सारे को हृदयंगम करके पूर्ण रुप से जान सके, स्वयं यही बन सके और इसके महत्तर चैतन्य, आनन्द एवं अस्तित्व में तथा इसकी सर्वोच्च अभिव्यक्ति की शक्ति में पूर्ण रुप से अपना अस्तित्व धारण कर सके। परन्तु अपने सामान्य मन में वह इस उच्चतर अवस्था का जितना कुछ अंश प्राप्त करता है वह उसके अन्दर स्थित आत्मतत्त्व की श्री–शोभा, ज्योति, महिमा और भगवत्ता का एक संकेत, प्राथमिक झांकी एवं स्थूल इंगितमात्र है। इसके पूर्व कि वह इस महत्तर वस्तु को, जो कि वह बन सकता है, अपने समक्ष एक सर्वथा वास्तविक, नित्य–अटल एवं सदा–उपस्थित वस्तु के रुप में अनुभव कर सके और जो वस्तु आज उसके लिये अधिक–से–अधिक एक प्रज्ज्वल अभीप्सा मात्र है उसमें पूर्ण रुप से निवास कर सके, उससे यह मांग की जाती है कि वह अपनी सत्ता के सभी अंगो को आध्यात्मिक चेतना के सांचो और यन्त्रों में पूर्णतया रुपान्तरित कर दे।

उदुत्तम मुमुग्धि नो विपाशमध्यम चत अवधामनि जावसे। (ऋग्वेद 3/1/15)

शिर के उदर के पैरों के पाश को काट दो ताकि म्हारा जीवन मुक्त हो जाय।

ऋग्वेद का ऋषि शिर से मानसिक बन्धन को, उदर से प्राणिक बन्धन को और पैरों से शारीरिक बन्धन को तोड़ देने की प्रार्थना कर रहा है, ताकि समूचा जीवन बन्धनविहीन परमसत्ता में संयुक्त हो जाय।

मानवीय मूल्यों में योग का महत्व

समान्यतः यह कहा जाता है कि मूल्यों को सिखाया नहीं जा सकता बल्कि उन्हे आत्मसात किया जाता हैं मूल्य वास्तव में आचरण होते हैं मूल्यों को आचार–विचार में ढ़ालने की प्रक्रिया परिवार तथा माता–पिता से प्रारंभ होती है और बालक के समाजीकरण परिवार के सांस्कृतिक मूल्य आदि के द्वारा एक बालक संस्कारवान या संस्कारविहीन बनता हैं। मूल्यों के निर्धारिक धर्म तथा संस्कृति हैं।

अतः इस संस्कृति को संस्कारवान बनाने हेतु योग एक ऐसा संस्कार है जो मनुष्यों के विचारों में शुद्धता एवं सत्य, धर्म, शांति, प्रेम, अहिंसा जैसे विचारों को जन्म देता है जो मनुष्य के मानवीय मूल्यों की रक्षा करने में सहायक सिद्ध होते है। मूल्यों की प्रकृति का विवरण जो कि इस प्रकार है

- योग द्वारा समाज एवं संस्कृति की पहचान होती है
- योग व्यक्ति के आचरण को निर्देषित करता है।
- योग व्यक्ति, समाज राष्ट्र तथा सभी अपने मूल्यों का अनुरक्षण करता है।
- योग परिवार एवं समाज मूल्यों के केन्द्र बिन्दु हैं।

संदर्भ

1. *घोष–श्री अरविन्द, योग–समन्वय, प्रकाशक– श्री अरविन्द प्रकाशन विभाग, पांडीचेरी – ISBN 81. 7058183.4 पुनर्मुद्रितः 2003*
2. *सक्सेना (डॉ0 प्रवेश)– भारतीय दर्शनों में क्या है?, प्रकाशक–पुस्तक महल, 6686, खारी बावली, दिल्ली– 110006, I.S.B.N. 81.223.0832.5 मई, 2003, पृष्ठ संख्या–99)*
3. *(महर्षि पतजंलिकृत), योग–दर्शन, प्रकाशक– गीताप्रेस, गोरखपुर–273005*
4. *(सिंह),डॉ0 शिव प्रसाद, उत्तर योगी श्री अरविन्द जीवन और दर्शन, प्रकाशक–लोकभारती प्रकाशन 15 ए महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद–1, प्रथम संस्करण 1972*
5. *घोष (श्रीअरविन्द), श्रीअरविन्द और उनका योग, प्रकाशक–मदनगोपाल गाढ़ोदिया, मुद्रक घनश्याम जालान, गीताप्रेस गोरखपुर प्रथम संस्करण अप्रैल,1936*

मूल्य संचारण में अध्यापक शिक्षा की भूमिका

डॉ. भावना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
शहीद मंगल पाण्डेय राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ

मूल्यपरक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जिससे हमारे नैतिक सामाजिक सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक मूल्य समाहित हों। इसमें विभिन्न विषयों को मूल्यपरक बनाकर उसके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रो के व्यक्तित्व मे समाहित करने पर बल दिया जाता है जिससे उनका सन्तुलित एवं सर्वतोन्मुखी विकास हो सके। Valus शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के Valere शब्द से मानी जाती है जो किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता को व्यक्त करता है भावात्मक दृष्टि से मानव के गुण को भी अभिव्यक्त करता है।

प्रोफेसर अर्बन ने अपनी पुस्तक 'फण्डामेण्डल ऑफ ऐथिक्स' मे लिखा है कि ''मूल्य वह है जो मानव इन्छा की तृप्ति करे, जो व्यक्ति तथा उसकी जाति के संरक्षाण में सहायक हो।'' इस प्रकार मूल्य सत्य है जिसके लिए व्यक्ति जीता है और आवश्यकता पड़ने पर वह संघर्ष करने, दुख सहने तथा मृत्यु को भी स्वीकार करने के लिए तत्पर रहता है ''मूल्य ऐसी आचरण संहिता या सद्गुण है, जिसमें व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन पद्धति का निर्माण करता है। तथा अपने व्यक्तिव का विकास करता है। इससें मनुष्य की धारणएँ, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था आदि समाहित है। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते है तो दूसरी ओर उसकी संसकृति एवं परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते है।

वैयक्तिक सन्दर्भ में मूल्यों का सम्बन्ध हमारी भावनाओं एवं संवेगों, पसन्द एवं नापसन्द से होता है ई. एस. ब्राइटमेन के अनुसार ''प्रारम्भिक अर्थ में मूल्य से अभिप्राय है जो व्यक्ति वास्तव में पसन्द करता है, स्वीकृत करता है तथा उसका आनन्द उठाता है। इस दृष्टि से यदि हम देखें तो मूल्य हमारी इच्छाओं व भावनाओं को सन्तुष्ट करने का माध्यम है इनका सम्बन्ध तर्क से नही होता। डिक्शनरी ऑफ एजूकेशन गुड (Good) के अनुसार ''मूल्य एक ऐसी विशेषता है जिसे मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नैतिक या सौन्दर्यात्मक विचारों के परिप्रेक्ष्य में उत्कृष्ट एवं महत्वपूर्ण समझा जाता है, तथा ये उस व्यक्ति में अन्तर्निहित रहते है। जो उसके विश्वास के अनुसार सुरक्षा व नैतिक सहायता प्रदान करते है।

समाजशास्त्रीय विचारधारा मूल्यों को सामाजिक विचारों, मान्यताओं, परम्पराओं व विश्वासों पर आधारित मानते हैं। वास्तव में यदि देखा जाये तो मूल्य वह है जो सभी बातों का निर्धारण

करते हैं। वास्तव में यह मूल्य ही है जो इस जगत को अर्थ प्रदान करते हैं। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति, घटना क्रिया को अर्थ प्रदान करते हैं। प्राचीन काल से ही मूल्य शिक्षा परक शिक्षा संचारण अध्यापकों द्वारा किया गया है। भारतीय ऋषि अथवा मनीषियों ने मूल्यों की व्याख्या 'मानव कल्याण' की कामना से की हैं।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिददुःख भाग्यवेत। सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।।

अर्थात सबके सुख की कामना भारतीय जीवन का आदर्श है। मुस्लिम व अग्रेंजो के शासनकाल के पूर्व भारतवर्ष की शिक्षा व्यवस्था सांस्कृतिक मूल्यों पर आधारित थी परन्तु मुस्लिम शासनकाल में शिक्षा का स्वरूप बदल गया व शिक्षा मुस्लिम संस्कृति व इस्लाम धर्म के प्रचार का एक माध्यम बन गई। तत्पश्चात अंग्रजों ने शिक्षा को अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया और इनका उद्देश्य भी अपनी संस्कृति व भाषा का प्रचार करना था। उसी समय भारतीय विचारकों के मन मस्तिक में एक समस्या ने जन्म लिया कि कहीं आने वाले वर्षों में भारतीय मूल्य व संस्कृति अपना अस्तित्व न खो दें इसी कारण 1937 में महात्मा गाँधी ने 'इण्डियन एजुकेशन कान्फ्रेन्स' बुलाई और शिक्षा के माध्यम से मानवीय मूल्यों को पुनः स्थापित करने पर बल दिया।

स्वतंत्रता के उपरान्त विभिन्न आयोगों ने 'मूल्य परक शिक्षा' के प्रति ध्यान आकर्षित किया है। भारतीय संविधान में भारतीय मूल्यों की चर्चा की गई है। संविधान में धर्म निरपेक्ष भारत की कल्पना भी की गई है परन्तु भारतीय संविधान में कुछ प्रजातान्त्रिक मूल्य बताये गये है। और इनका विकास करना आवश्यक बताया गया है।

डॉ. राधाकृष्णन आयोग (1948–49) ने पाठ्यक्रम में संशोधन के माध्यम से मूल्य शिक्षा देने का सुझाव दिया जिसमें– सभी शिक्षण संस्थाओं का प्रारम्भ प्रार्थना सभाओं द्वारा हो जिसमें छात्र दो मिनट का मौन रखे। स्नातक वर्ष के प्रथम वर्ष, द्वितीय वर्ष व तृतीय वर्ष में छात्रों को क्रमशः भारत के विभिन्न धर्मों के प्रमुख नेताओं विश्व के विभिन्न धर्मो के नेताओं व साहित्य तथा धार्मिक समस्याओं व दर्शन का ज्ञान छात्रों को कराया जाये। ये सुझाव अप्रत्यक्ष रूप से मूल्य शिक्षा देने पर बल देते हैं। इसके पश्चात् डॉ. श्री प्रकाश (1959) की अध्यक्षाता में एक समिति का गठन हुआ जिसे धार्मिक नैतिक शिक्षा समिति कहा गया। इन्होंने छात्रों में उचित आचरण की शिक्षा हेतु सुझाव दिये, शिक्षा के प्रत्येक कार्यक्रम में परिवार को उचित महत्व दिया जाये व उसके दोषों का उन्मूलन किया जाये। विश्वविद्यालय का प्रारम्भ ईश्वर विनय से किया जाये। प्राथमिक स्तर से विश्वविद्यालय स्तर तक पाठ्यक्रम में कुछ ऐसे ग्रन्थ रखे जायें जो छात्रों को धार्मिक मूल्यों का ज्ञान दें। शिक्षा द्वारा अच्छे आचरण की बातों पर प्रबलता दी जाये व इसी आधार पर छात्रों का मूल्यांकन हों। समाज सेवा पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का अभिन्न अंग हो। छात्रों में वाद–विवाद, स्वतन्त्र चिन्तन एवं आलोचनात्मक चिन्तन के गुण का विकास किया जाये। विश्वविद्यालय में विभिन्न धर्मों के उत्सवों का सामूहिक आयोजन हो जिसके द्वारा छात्रों में वांछनीय नैतिक व आध्यात्मिक मूल्य विकसित हो सकें।

तत्पश्चात् कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) ने इस बात पर बल दिया कि शिक्षा के द्वारा छात्रों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास किया जाना चाहिए और छात्रों को इस योग्य बनाना चाहिए कि वह नैतिक व अध्यात्मिक मूल्यों के प्रति प्रशंसात्मक दृष्टिकोण रख सकें। अयोग ने यह भी कहा कि आज के युवकों में सामाजिक व नैतिक मूल्यों के प्रति जो अवहेलनात्मक दृष्टिकोंण है उसके कारण सामाजिक व नैतिक संघर्ष उत्पन्न हो रहे हैं। इसी के कारण हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम शिक्षा व्यवस्था को मूल्य परख बनाने हेतु सुझाव दिये। केन्द्र व राज्य सरकार के अधीन सभी विद्यालयों में नैतिक सामाजिक व अध्यात्मिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा की जाये व निजी संस्थाओं से भी इसका अनुपालन करने की अपेक्षा की जाए। समय तालिका में इन मूल्यों से सम्बन्धित शिक्षा के कुछ कालांश निर्धारित किये जायें जो किसी विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा न लिये जायें, वरन् विद्यालय के सामान्य अध्यापक इस उत्तरदायित्व का निर्वाह करें। विश्वविद्यालय स्तर पर धर्म शिक्षा से सम्बन्धित जो विभाग है वह छात्रों व अध्यापकों की दृष्टि से विशिष्ट साहित्य तैयार करें जिनके द्वारा इन मूल्यों का सकारात्मक विकास हो सके। सभी धर्मों के छात्रों के लिए ऐसी पाठ्य–पुस्तकों की व्यवस्था की जाये जो विभिन्न धर्मों के अध्यात्मिक व नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक ज्ञान करा सकें।

मूल्य निर्धारित शिक्षा के सम्बन्ध में एक वर्किंग ग्रुप (1980) ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह वर्किंग ग्रुप शिक्षा मंत्रालय द्वारा श्री कीरत जोशी की अध्यक्षता में नियुक्त हुआ था। इसके अनुसार मूल्य निर्धारित शिक्षा को अनिवार्य रूप से ऐसी शिक्षा समझना चाहिए जो शोभनीय तथा आत्म उन्नति की ओर होगी। यह न केवल मूल्यों के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को सूचना प्रदान करेंगी वरन् उनकी हस्ती विकसित करने की ओर भी होगी तथा संकीर्णता, स्वार्थता तथा अधकचरे विचारों एवं अभिवृत्तियों से ऊपर उठायेगी। रिपोर्ट के अनुसार सीखने की प्रक्रिया का अपने आप में बहुत बड़ा प्रभाव बालकों के मूल्य निरूपण पर पड़ता है। विद्यालय की सभी क्रियाओं, पाठ्यक्रम निर्माण, शिक्षण विधियों एवं मूल्यांकन इत्यादि की इस प्रकार से संरचना होनी चाहिए कि वह स्वतः वांछित मूल्यों के विकास की ओर ले जाये। ऐसे साहित्य के सृजन की आवश्यकता है जो विशेष रूप से शिक्षा में मूल्य निरूपण के लिए हो। मूल्य शिक्षा के कार्यक्रम में एकीकरणकृत उपागम को अपनाना चाहिए। माध्यमिक विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों दोनों में आधारभूत पाठ्यक्रम होने चाहिए जिनका उद्देश्य बालकों को भारतवर्ष इसके निवासी तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का ज्ञान कराना होना चाहिए। विशिष्ट विद्यालय, मूल्य निर्धारित शिक्षा के लिए स्थापित किये जाने चाहिए। प्रत्येक राज्य में कम से कम एक ऐसा विद्यालय होना चाहिए जो कि नर्सरी स्तर से पोस्ट ग्रेजुएट स्तर तक मूल्य निर्धारित शिक्षा प्रदान करें। राज्य स्तर पर विशेष शिक्षक उन्मुख कार्यक्रमों का शिक्षकों को प्रभावशाली मूल्यों के विकास की विधियों को सिखाने के वास्ते बनाकर शिक्षकों को प्रशिक्षित करना चाहिए। एक राष्ट्रीय अनुशासन समिति होनी चाहिए जिसमें ऐसे व्यक्ति हों जो अपने स्वयं की प्रतिष्ठा के

कारण नैतिक प्रभुत्व रखते हो तथा जो मूल्य शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों के विकास का पथ प्रदर्शन कर सके।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में भी मूल्य शिक्षा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये गये। यह विचार थे–

पैरा 8.4– मौलिक मूल्यों के क्षरण के सम्बन्ध में बढ़ती हुई चिन्ता ने तथा समाज में बढ़ती हुई निर्दयता ने पाठ्यक्रम के पुनसंगठन की आवश्यकता को हमारे ध्यान का केन्द्र बना दिया है ताकि शिक्षा एक शक्तिशाली, सामाजिक तथा नैतिक मूल्यों के पोषण का यन्त्र बन सकें।

पैरा 8.5– हमारे बहुरूपी सांस्कृतिक समाज में शिक्षा को सार्वभौमिक तथा शाश्वत मूल्यों को पोषित करना चाहिए। इसकी दिशा एकता तथा अपने देशवासियों के समन्वय की होनी चाहिए। इस मूल्य शिक्षा को रूढ़िवादिता, धार्मिक कट्टरता, हिंसा, अन्धविश्वास तथा भाग्यवादिता को समाप्त करने में सहायता करनी चाहिए।

पैरा 8.6– इस प्रकार के द्वन्द्वात्मक भूमिका के अतिरिक्त मूल्य शिक्षा का एक बड़ा सकारात्मक पक्ष भी है जो हमारी परम्परा, राष्ट्रीय उद्देश्यों एवं सर्वमान्य प्रत्यक्षीकरणों पर केन्द्रित है। मूल्य शिक्षा को प्राथमिक रूप से इस पक्ष पर बल देना चाहिए।

आचार्य राममूर्ति समिति ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति का पुनरावलोकन करते हुए कहा कि ''विश्व व्यापी स्तर पर बुनियादी नैतिक मूल्यों का पतन दृष्टिगोचर हो रहा है'' यह दृश्य भारतीय संदर्भ में और अधिक मार्मिक तथा चिंताजनक है क्योंकि हम एक महान सभ्यता और उच्च सांस्कृतिक धरोहर के उत्ताराधिकारी रहे हैं। मूल्य क्षरण व नैतिक पतन का प्रभाव शैक्षिक परिवेश पर सबसे अधिक पड़ा है अतः शैक्षिक संस्थाओं का यह विशिष्ट दायित्व है, कि वे इस परिस्थिति से अपने बुद्विमतापूर्ण प्रयासों के द्वारा निपटने की चेष्टा करें। शैक्षिक संस्थाओं को 'मूल्य परक शिक्षा' के प्रावधान में अपनी अहं भूमिका निभानी चाहिए। 'मूल्य' समस्त शैक्षिक प्रक्रिया व विद्यालयी वातावरण का अविच्छिन्न अंग होना चाहिए''

अतः आज हम गर्व के साथ यह कह सकते हैं कि भारतवर्ष में यातायात संचार व चिकित्सा तथा अन्य क्षेत्रों में सन्तोषजनक उपलब्धियाँ की हैं परन्तु इसके साथ ही दूसरी ओर जब हम अपनी संस्कृति व मूल्यों पर विचार करते हैं तो हमें बहुत ही शर्म का अनुभव होता है चूंकि मूल्यों की दृष्टि से हमारा दिन–प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। आज हमारे सामने बहुत विषम परिस्थितियाँ हैं। एक तो यह कि हमें यह पता ही नहीं कि हमारे भारतीय मूल्य क्या है? और इस कारण हम मूल्य अनभिज्ञ होकर व्यवहार करते जा रहे हैं। दूसरे हमें भारतीय मूल्यों का ज्ञान तो है परन्तु हम उनके प्रति आस्था नहीं रखते और मूल्यविहीन व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं। तीसरे हमें मूल्यों का ज्ञान है और उस पर चलना पिछड़ेपन का प्रतीक समझते है और आधुनिकता की

दौड़ में हम इतने तीव्र गति से चलना चाहते है कि हमारे मूल्य उस दौड़ में कहीं लुप्त हो जाते है। मूल्य परख व्यवहार न करने के लिए हमें आत्मग्लानि तो अवश्य होती है परन्तु आधुनिक बनने की ललक के आगे हम घुटने टेक देते है। यह तीनों ही वह परिस्थितियाँ है जिन्हें हम मूल्य अन्तर्द्वन्द की संज्ञा दे सकते हैं। इस कारण आज हमारे लिए बहुत ही आवश्यक है कि हम मूल्य शिक्षा के द्वारा छात्रों को सही मूल्यों का ज्ञान करायें।

आज शैक्षिक परिवेश में चारों ओर से 'मूल्य परक शिक्षा' की मांग आ रही है। कारण हमारे समाज में मूल्यों की अवधारणा में बदलाव और मूल्यों का क्षरण है। यह 'वीरभोग्या वसुंधरा' आंतरिक कलह, दुव्यर्वस्था, साम्प्रदायिक भेदभाव, जातिवाद, आर्थिक विषमता आदि संकीर्णता की अग्नि में जल रही है। यह भारत भूमि राम, कृष्ण, भीष्म पितामह, बुद्ध, महावीर, विवेकानन्द और गाँधी की जन्मदात्री है जो आज संघर्ष आपाधापी, आधुनिकीकरण, अभाव, लोकतांत्रिक राजनैतिक मूल्यों का क्षरण, अशान्ति, शोषण और भय से ग्रस्त है, कारण समाज का औद्योगिकरण विज्ञान और तकनीकी का अभूतपूर्व विकास है जिससे भावात्मक विकास के बीच कोई तालमेल नहीं रह गया है। आज की नई पीढ़ी पाश्चात्य संस्कृति के कुप्रभाव से ग्रस्त हैं, भारतीय जीवन मूल्य ध्वस्त हो रहे हैं। वर्तमान परिस्थितियों के संदर्भ में मूल्यों की रचना नहीं हुई है। ऐसी परिस्थिति में 'मूल्य परक शिक्षा' की अनिवार्यता अपरिहार्य हैं इस कार्य को अध्यापक ही उत्तम रूप से सम्पन्न करा सकता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि अध्यापकों को शिक्षा में मूल्य संरक्षण एवं संचारण हेतु उनके प्रशिक्षण काल में ही प्रशिक्षित किया जाये। इसके लिये अध्यापक शिक्षा में मूल्य सन्दर्भित शिक्षा पाठ्यक्रम एवं मूल्यों को छात्रों में विकसित करने हेतु प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। जिससे वे शैक्षिक एवं विकासात्मक दायित्वों को ग्रहण एवं वहन करने में सक्षम हो सकें तथा उनमें तकनीकी कुशलता, वैज्ञानिक चेतना, संसाधन सम्पन्नता, के साथ मानव बोध का समन्वयात्मक विकास कना सम्भव हो सके। शिक्षण में इस उद्यम हेतु सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक एवं समस्त चारित्रिक मर्यादाओं के साथ ही राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मूल्यों को विकसित करने के लिए सफल प्रयास करना, शिक्षण प्रशिक्षण का लक्ष्य रखा जाये।

सन्दर्भ

1. *डागर, बी0 सी0 (2009) ''शिक्षा तथा मानव मूल्य'' हरियाणा सहित्य आकादमी, चण्डीगढ़।*
2. *वेन्केटेह, एन0 (2008) ''वैल्यु एजुकेशन'' ए0 पी0 एच0 पब्लिशिंग कारपोरेशन, नई दिल्ली।*
3. *भट्टाचार्य जी0 सी0 (2015) ''अध्यापक शिक्षा'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा–2।*
4. *सक्सेना सरोज (2012) ''शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय आधार'' साहित्य प्रकाशन, आगरा।*
5. *जर्नल ऑल एजुकेश्नल स्टडीज (2015), (3), एसोसियेशन फार एजुकेशनल स्टडीज।*
6. *तिवारी, कमला कान्त (2005) '' इम्रजींग चेलेन्ज इन एजुकेशन'' चुंग पब्लिकेशन इलाहाबाद।*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

शिक्षा में मानवीय मूल्य एवं व्यावसायिक नैतिकता : आवश्यकता एवं महत्व

बृजेन्द्र कुमार वर्मा[1], डॉ0 महेन्द्र कुमार पाढ़ी[2]

[1]शोधार्थी, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ0प्र0।
[2]सीनियर असिस्टेंट प्रोफेसर, जनसंचार एवं पत्रकारिता विभाग
बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ, उ0प्र0।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत में ग्रामीण विकास को महत्व दिया जाता रहा है। जब भारत को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, तब भारत की स्थिति अच्छी नहीं थी। आजादी के समय देश विभिन्न क्षेत्रों में बंटा हुआ था, जिसमें एकीकरण में सरदार पटेल और डॉ0 अंबेडकर की महत्वपूर्ण भूमिका रही। सरकार का पहला कदम कृषि को मजबूत करना था। यह उस समय का सबसे बड़ा क्षेत्र था, जिससे आर्थिक मजबूती पाई जा सकती थी, इसीलिए एक गरीब देश की उन्नति ग्रामीण विकास में छिपी हुई थी। गांधी जी ने भी गांवों को मजबूत करने का संदेश दिया था और देश का विकास गांव के विकास में छिपे होने की बात कही थी। इसीलिए जब पंचवर्षीय योजनाओं पर विचार किया गया और पहली पंचवर्षीय योजना लागू हुई, उसी समय से ग्रामीण क्षेत्र को महत्व दिया जाने लगा। आज 21वीं सदी में भी देश में सबसे बड़ा क्षेत्र कृषि बना हुआ है, यह बात अलग है कि अब कृषि क्षेत्र से सर्वाधिक आगम प्राप्त नहीं होता। डॉ0 भीमराव अंबेडकर ने देश के आर्थिक विकास में अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था, देश की बहुल्य संख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है, ऐसे में यदि देश का विकास करना है तो पहले गांवों की स्थिति सुदृढ़ करनी होगी।

गांवों में संसाधनों की उपलब्धता

आजादी से आज तक विभिन्न सरकारों का ध्यान गांवों के विकास में लगा हुआ है। इसमें हमने कई उद्देश्यों में सफलता प्राप्त की लेकिन अभी भी कई उद्देश्य ऐसे हैं, जिसमें हम सफलता नहीं पा सके हैं। अभी भी देश के कई गांवों में बिजली नहीं पहुंच सकी है। अभी भी 24 घंटे बिजली की उपलब्धता नहीं है। सैकड़ों गांवों में पक्की सड़कें नहीं बनी। यदि ग्रामीण विकास की बात की जाए तो अभी भी मूलभूत सुविधाएं गांवों में नहीं हैं, जिसकी वजह से ग्रामीण निवासी रोजगार अवसरों के लिए शहरों की तरफ पलायन कर जाते हैं। विभिन्न अध्ययनों में बताया गया कि लोग आय के लिए गांवों से पलायन क्यों कर जाते हैं, विभिन्न कारणों में प्रमुख कारण रोजगार ही होता है। इसके अलावा अच्छी शिक्षा, जीवन की प्राथमिक आवश्यकताएं भी इस संबंध में

महत्व रखती हैं। ऐसे में विभिन्न केन्द्र सरकारों के अलावा राज्य सरकारों का ध्यान भी इस पलायन को रोकने की कोशिश है, लेकिन आज भी पलायान जारी है। हालांकि इस दर में कमी आई, विभिन्न सरकारें प्रयासरत रही और यह प्रयास में लगी भी हैं ताकि गांवों–आपसी क्षेत्रों में ही अवसरों को जन्म दिया जा सके। आज देखें तो विभिन्न प्रयासों से हजारों किलोमीटर की सड़कें बनायी जा चुकी हैं, जो गांवों को शहरों से जोड़ती हैं। ग्रामीण अपनी वस्तुओं की बिक्री हेतु शहरों में आसानी से जा सकते हैं। पहले के मुकाबले शहरों से जुड़ाव बढ़ा है और यह प्रक्रिया लगातार जारी है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शैक्षिक संस्थानों की स्थिति

ग्रामीण क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की भारी कमी है। और जो विश्वविद्यालय संचालित भी हैं वे निजी विश्वविद्यालय हैं। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रीय विश्वविद्यालय एवं राज्य विश्वविद्यालयों की आवश्यकता है। उत्तर प्रदेश राज्य में बाबासाहेब भीमराव अंबेडकर केन्द्रीय विश्वविद्यालय लखनऊ, काशी हिन्दू केन्द्रीय विश्वविद्यालय वाराणसी, अलीगढ़ मुस्लिम केन्द्रीय विश्वविद्यालय अलीगढ़, इलाहाबाद केन्द्रीय विश्वविद्यालय इलाहाबाद ये सभी केन्द्रीय विश्वविद्यालय हैं, जो शहरों में हैं न कि किसी ग्रामीण क्षेत्र में। इसी प्रकार लखनऊ विश्वविद्यालय, कानपुर विश्वविद्यालय, मेरठ विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, जौनपुर विश्वविद्यालय, फैजाबाद विश्वविद्यालय आदि शहर में हैं। ग्रामीण विकास के लिए शैक्षिक रूप से आवश्यकता है कि केन्द्रीय, राज्य स्तर की विश्वविद्यालय खोलें जाएं। इससे ग्रामीण छात्रों को शहरों में नहीं जाना पड़ेगा। अभी भी माना जाता है कि अच्छी शिक्षा प्राप्त करनी है तो शहरों में जाना ही पड़ता है, इस मिथक को तभी तोड़ा जा सकता है जब उच्च शिक्षा संस्थानों का निर्माण शहरों के बजाए गांवों में हों। ग्रामीणों में अच्छे संस्थानों के अभाव में हमें देखने को मिलता है कि बच्चे असमय अपना नाम कटवा लेते हैं और पढ़ाई जारी नहीं कर पाते। कई परिवार अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा प्रदान करने में असमर्थ हैं। डी0पी0 नायर ने अपनी पुस्तक ''एजूकेशन फोर रूरल डवलपमेंट'' में बताया है कि गांवों के स्कूलों में प्राथमिक से उच्च प्राथमिक में आते–आते कई बच्चे पढ़ाई छोड़ देते हैं। उन्होंने पुस्तक के माध्यम से बताया कि क्षेत्रीय पर्यावरण और विभिन्न परिस्थितियों का शिक्षा पर गहरा प्रभाव होता है। लेखक तुषार सिन्हा ने अपनी पुस्तक ''एजूकेशन फोर रूरल डवलपमेंट'' में बताया कि स्कूलों की व्यवस्था कैसी है और वहां पर छात्रों का माहौल कैसा हो। उन्होंने पुस्तक के माध्यम से ग्रामीण शिक्षा में विभिन्न क्षेत्रों का परिचय कराया और विश्लेषण किया।

उच्च शिक्षा के अलावा प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक शिक्षा की स्थिति भी चिंतनीय है। बच्चों के लिए गुणवत्ता पूर्ण शैक्षिक संस्थान गांवों में न के बराबर है। गांवों में पुस्तकालयों की कमी है और जहां ग्रामीण पुस्तकालय हैं, वहां पर व्यवस्था अच्छी नहीं है। ऐसे में ग्रामीण विकास के लिए समर्पित सरकारों को इन व्यवस्थाओं को अच्छा करना पड़ेगा, इससे हम ग्रामीण विकास

की उच्च स्तर को पा सकते हैं। हालांकि विभिन्न सरकारों ने कानूनी नियमों को नरम किया है, इससे निजी संस्थानों को खुलने का अवसर मिला है। इससे गांवों में प्राथमिक, उच्च एवं उच्चतर शिक्षा संस्थान खुलने लगे हैं, लेकिन यहां अच्छे शिक्षकों की कमी है। इससे हम इस परिणाम पर पहुंच सकते हैं, कि प्रयास सफल तो हो रहे हैं, लेकिन अभी भी अपेक्षित सफलता मिलना बाकी है। ग्रामीण विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। डॉ0 अंबेडकर ने भी शिक्षा को महत्व देते हुए दलित–पिछड़ों को शिक्षित होने का नारा दिया।

शिक्षा में मीडिया की भूमिका

मीडिया ने हमेशा की तरह ग्रामीणो की आवाज को ऊंचा किया है। लेकिन ये मीडिया संस्थान भी शहरों में स्थापित हैं। बड़े मीडिया संस्थानों के प्रमुख कार्यालय शहरों में ही हैं। ऐसे में गांवों की तरफ पूरी कवरेज नहीं हो पाती। इसी प्रकार गांवों की कई खबरों को भी जगह देना संभव नहीं हो पाता। सामुदायिक रेडियों के आने के बाद एक बात जरूर हुई है, इससे सबसे अधिक लाभ मिलेगा तो वह गांव ही होंगे। क्योंकि शहरों में संचालित निजी व्यावसायिक रेडियो के सामने सामुदायिक रेडियो अपने आप को स्थापित नहीं कर सकते क्योंकि दोनों का उद्देश्य अलग–अलग है। सामुदायिक रेडियो आर्थिक लाभ के लिए संचालित नहीं किया जा सकता। सामुदायिक रेडियो की विचारधारा का निर्माण ही इसी बात पर हुआ है कि उन लोगों के लिए रेडिया चलाया जाए जिन्हें जागरूक करना है, शिक्षित करना है, मनोरंजन एवं विभिन्न सूचनाएं देनी है। सामुदायिक रेडियो विशेष उद्देश्य को लेकन संचालित किया जाता है, जिसमें आर्थिक लाभ नहीं लिया जा सकता। सामुदायिक रेडियो ने अभी तक अपनी सामान्य भूमिका निभाई है। लेकिन जो प्रसार प्रिंट मीडिया और इलैक्ट्रॉनिक मीडिया का है, वह स्थान सामुदायिक रेडियो नहीं ले पाया है। इसके बहुत सारे कारण और सीमाएं हैं, जिसमें सबसे प्रमुख कारण आर्थिक स्थिति है। इलैक्ट्रॉनिक मीडिया में अभी भी गांवों का कवरेज कम है। हालांकि प्रिंट मीडिया में कुछ कवरेज होता रहता है। ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाला सर्वाधिक कवरेज कृषि संबंधी ही होता है। जबकि ग्रामीण क्षेत्र में कृषि एक हिस्सा मात्र है। इसके अलावा जीवनयापन से संबंधित जैसे, स्वास्थ्य, शिक्षा, रोजगार, संसाधन आदि से भी संबंधित खबरों को जगह मिलनी चाहिए जो कि अभी भी बहुत ही कम मिल पा रहा है।

ग्रामीण विकास में तकनीक

भारतीय परिप्रेक्ष्य में 21वीं सदी तकनीकी की सदी कहलाती है। भारत में जितना बदलाव तकनीकी ने किया है उतना किसी अन्य व्यवस्था ने नहीं किया। आज इंटरनेट से आप अपनी सामान्य जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं। मनोरंजन से लेकर खरीदारी, बैंकिंग, स्वास्थ्य सेवाएं, दवाईयां, अध्ययन, पुस्तकालय आदि भी इंटरनेट की मदद से पा सकते हैं। कम्प्यूटर और मोबाइल फोन ने दुनिया को हमारी मुट्ठी में ला दिया है। हजारों मोबाइल ऐप ऐसे है जो हमारी सामान्य जीवन शैली की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए संचालित हो रहे हैं। ऐसे में ग्रामीण क्षेत्र कैसे पीछे रह सकता है। अभी भी उच्च और उन्नत तकनीकी शहरों में ही

उपलब्ध है। फिर भी तकनीकी का कुछ हिस्सा देर से ही सही लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में भी पहुंच रहा है। अधिकतर तकनीकी का हिस्सा हमें कृषि क्षेत्र में दिखाई देता है। इसके अलावा ग्रामीण परिवेश में लोगों द्वारा जीवन यापन किए जाने में भी तकनीकी की उपस्थिति हो रही है। उदाहरण के तौर पर टेलीविजन की उपलब्धता और मोबाइल फोन, दूध डेयरी, डिजीटल होते अनाज मंडी, सब्सिडी आदि का सीधा बैंक खाते में भुगतान आदि। सभी में तकनीकी की महत्वपूर्ण उपस्थिति है। ग्रामीण क्षेत्र में तकनीकी में आ रहे तेजी से बदलाव सर्वाधिक कृषि क्षेत्र में देखने को मिल रहा है। क्योंकि ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा की स्थिति भी पहले के अपेक्षा अच्छी हुई है और तकनीकी उपकरणों की विभिन्न कीमतें मध्यम किसानों की क्रयशक्ति के अंतर्गत आ रहे हैं। ऐसे में किसान इन्हें लोन अथवा पूर्ण कीमतें चुका के खरीद लेते हैं। उन्नत तकनीकी से परिपूर्ण कृषि उपकरणों के उपयोग से किसानों का न केवल समय बचता है अपितु कम खर्चा भी होता है। ऐसे में समय की बचत होने से वे अन्य कार्यों में लग कुछ आय का सृजन भी कर लेते हैं। इस प्रकार हम कृषि में तकनीकी के प्रवेश का विश्लेषण करें तो हम आसानी से समझ सकते हैं कि कृषि में तकनीकी ने न केवल किसानों को लाभ दिया है अपितु फसल पैदावार में भी उन्नति हुई है।

ग्रामीण परिवारों का सामाजिक विकास

ग्रामीण परिवारों का जीवन शहरी जीवन से बहुत अलग होता है। शहर के मुकाबले यहां रोजगार की संभावनाएं कम होती है। संसाधनों का अभाव होने के कारण लोगों को अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए शहर पर निर्भर होना पड़ता है। आजादी के बाद से ही भारत सरकार एवं राज्य सरकारों ने विभिन्न प्रयासों से यह कोशिश की ग्रामीण परिवारों में कौशल में वृद्धि की जाए जिससे उन्हें रोजगार में परेशानी न हो एवं परिवार की आत्मनिर्भरता बढ़ सके। अध्ययनों में पाया गया है कि ग्रामीण परिवार आज भी रोजगार के लिए शहरों पर निर्भर हैं। गांवों में सीमित साधनों की वजह से रोजगार भी सीमित हो जाते हैं। इस वजह से ग्रामीणों को रोजगार के लिए शहरों की ओर जाना पड़ता है। उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में जैसे–जैसे सड़कों का निर्माण एवं बिजली की उपलब्धता बढ़ रही है वैसे रोजगार में भी परिवर्तन आ रहा है। उत्तर प्रदेश की विभिन्न सरकारों की यही कोशिश रही कि ग्रामीण क्षेत्र का पलायन रोका जा सके एवं ग्रामीण क्षेत्र में ही रोजगार का सृजन किया जा सके इसके लिए विभिन्न योजनाएं भी चलाई गई। अभी भी अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी है। कई विश्लेषणों में पाया गया है कि सरकारी आंकड़ों में एवं वास्तविक आंकड़ों में परिवर्तन होता है।

ग्रामीण कौशल

भारत में ग्रामीण क्षेत्र रहवासियों के परिप्रेक्ष्य में सबसे बड़ा क्षेत्र है। भारत की बड़ी आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करने के बावजूद संसाधनों की प्रचूर मात्रा शहरों में ही दिखाई देती है। ग्रामीण क्षेत्र का अपना परिचय और अस्तित्व है। ऐसे में यहां उपलब्ध साधनों में ही जीवन यापन किया जा रहा है। भारत के स्वतंत्रता प्राप्ति से आज तक लगातार ग्रामीण विकास के लिए प्रयास

जारी है। बहुत कुछ लक्ष्य को पा लिया गया है फिर भी अभी और लक्ष्य हैं, जिन्हें पाना बाकी है। अभी भी विश्वविद्यालयों की उलब्धता शहरों में अधिक है। ग्रामीण विकास के लिए शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रयास हो रहा है, लेकिन अपेक्षित सफलता नहीं मिल सकी है। शिक्षा ग्रामीण क्षेत्र में बड़ा परिवर्तन कर सकती है, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी अर्द्ध सरकारी विश्वविद्यालयों एवं अन्य उत्तम शैक्षिक संस्थानों की आवश्यकता है। ग्रामीण निवासियों के लिए कौशल वृद्धि के लिए कैम्प लगाए जाते हैं, जोकि कुछ समय के लिए होते हैं, यह लाभप्रद तो है, लेकिन सिर्फ अल्पकाल के लिए। दीर्घकाल के लिए कैम्प कारगर सिद्ध नहीं हो सकते। उसके लिए कौशल शिक्षा की बारम्बारता आवश्यक है। कौशल तकनीकी भी उतनी ही जरूरी है, जिनती ग्रामीण के लिए कौशल शिक्षा। इसके लिए उत्तम एवं अनुभवी प्रशिक्षकों की आवश्कता होगी। सरकार हर कोशिश ग्रामीण कौशल को बढ़ाने में लगी हुई है।

उपसंहार

ग्रामीण क्षेत्र भारत की पहचान है। सर्वाधिक आबादी इसी क्षेत्र में है। सर्वाधिक सांस्कृतिक विभिन्नता इसी क्षेत्र में है। सर्वाधिक जाति–जनजतियों इसी क्षेत्र में निवास करती हैं। सर्वाधिक आकर्षण भारत सरकार का इसी क्षेत्र में हैं। सर्वाधिक संभावनाएं भी इसी क्षेत्र से जुड़ी हैं। यहां तक की शहरों की महत्वपूर्ण आवश्यकताएं भी ग्रामीण क्षेत्र से ही पूरी होती हैं, जैसे अनाज, सब्जियां, फल, दूध, आटा, चावल एवं अन्य खाद्य पदार्थ आदि। आज शहरों को श्रमिक भी गांव ही प्रदान कर रहा है। मानव शक्ति एवं श्रमिक वर्ग के मामले में भी ग्रामीण क्षेत्र सबसे आगे है। ऐसे में हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण भारत ही असली भारत है, लेकिन अभी भी बहुत कुछ अधूरा है, जो कि ग्रामीण क्षेत्र के पास होना चाहिए। शिक्षा के मामले में अभी भी ग्रामीण क्षेत्र पीछे है। अच्छे विश्वविद्यालय ग्रामीण क्षेत्र की तस्वीर बदल सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्र एवं शहरी क्षेत्र की अपनी–अपनी परिभाषाएं हैं, लेकिन यदि ग्रामीण क्षेत्र की शिक्षा की स्थिति को अच्छा कर दिया जाए तो ग्रामीण क्षेत्र की परिभाषा ही बदली जा सकती है। ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले हजारों छात्रों को अच्छी शिक्षा के लिए शहरों की ओर जाना पड़ता है। यहां सरकारी विश्वविद्यालय नहीं हैं, कॉलेज नहीं हैं, सरकारी प्रशिक्षण संस्थान नहीं हैं। ऐसे में जो बच्चे पढ़ना चाहते हैं, लेकिन माता–पिता शहर नहीं भेज सकते अथवा शहर का खर्चा नहीं उठा सकते उन बच्चों की पढ़ाई छूट जाती है। इसलिए ग्रामीण क्षेत्र पीछे रह जाता है। एक अध्ययन के विश्लेषण के अनुसार गांव में पढ़कर रोजगार पाने की प्रतिशतता शहर में पढ़कर नौकरी पाने की प्रतिशतता से कम है। अर्थात जितनी नौकरियां शहर में पढ़ने वाले छात्रों को मिल रही हैं उतनी गांव में पढ़ने वाले बच्चों को नहीं मिल पाती। ऐसे और भी अध्ययन हैं, जिनसे पता चलता है कि किस प्रकार से ग्रामीण क्षेत्र में प्रतिभाएं रोजगार पाने में असमर्थ हो जाती हैं।

योग वशिष्ठ में योग का स्वरूपः एक विमर्श

चंचल सूर्यवंशी[1], तौहिद अख्तर[2]

[1]सहायक प्राध्यापक, शारीरिक शिक्षा विभाग,

[2]सहायक प्राध्यापक, शारीरिक शिक्षा विभाग,

तीर्थकंर महावीर विश्वविद्यालय, मूरादाबाद, उ.प्र.।

महर्षि वशिष्ठ जो कि भगवान श्री राम के गुरु थे स उनके द्वारा भगवान श्रीराम को योग की शिक्षा प्रदान की गई। महर्षि वशिष्ठ के द्वारा रचित ग्रंथ योग वशिष्ठ है, जिसमें उन्होंने योग के विभिन्न स्वरूप के बारे में जानकारी प्रदान की है। योग के विभिन्न स्वरूप– चित्त, चित्तवृत्ति, चित्तप्रसादन के उपाय, यम–स्वरूप, नियम–स्वरूप, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि मोक्ष आदि का विस्तृत वर्णन किया है।

महर्षि वशिष्ठ ने सांख्य, बुद्धि, ज्ञान योग और प्राण से रोकने का नाम योग बताते हुए संसार सागर से पार होने की युक्ति का नाम योग बताया है। इसमें महर्षि वशिष्ठ ने अपने शिष्य भगवान श्रीराम को धर्मात्मा के लक्षण, राग द्वेष से मुक्त होने के उपाय, संतोष को प्राप्त करने का उपाय, ओंकार के तीनों शब्दों का महत्व अदि विषयों के साथ–साथ योगांगों का भी उपदेश दिया। इसके साथ–साथ मोक्ष को प्राप्त करने के लिए जीवनमुक्ति और विदेहमुक्ति दो प्रकार की मुक्ति बताकर साथ में ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के लिए किन–किन चीजों को त्यागने की आवश्यकता पड़ती है के बारे में बताया गया है। योग वशिष्ठ में कहा गया है कि उस आत्मतत्व को जान लेना ही परम सुख है। आत्मा को जानने के लिए व्यक्ति को किन–किन रास्तों से होकर गुजरना पड़ता है, उसका वर्णन योग वशिष्ठ में किया गया है।

प्रस्तावना

योग वशिष्ठ योग का एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें योग के स्वरूप के विषय में वर्णन हुआ है जिसके अंतर्गत चित्तवृत्ति, यम–स्वरूप, नियम–स्वरूप, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, समाधि, मोक्ष आदि का वर्णन किया गया है। योग वशिष्ठ के निर्वाण–प्रकरण में मुनि वशिष्ठ के द्वारा श्री राम को योगविषयक विस्तारपूर्वक ज्ञान दिया है। इसमें योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि संसार सागर के पार होने की युक्ति का नाम योग है, योग के दो प्रकार का उल्लेख किया गया हैं –

1. सांख्य बुद्धि ज्ञान योग
2. प्राण को रोकने का नाम योग

ऐसा वर्णन मिलता है कि इन दोनों प्रकार के योग के द्वारा दुःख रूप संसार से तरा जा सकता है। शिव भगवान शिव ने दोनों प्रकार के योग का फल एक ही बताया है। यह योग की दोनों प्रकार की युक्तियां योग जिज्ञासु पर निर्भर है परंतु योग के अभ्यास की अत्यंत आवश्यकता है। बिना अभ्यास के कुछ प्राप्त नहीं होता। यद्यपि "योग" शास्त्र में योग शब्द से उपयुक्त दोनों ही प्रकार के अर्थ कहे गए हैं तथापि इस ''योग" शब्द की प्राण निरोध के अर्थ में ही प्रयुक्तता अधिक प्रसिद्ध है।

चित् निरूपण

चित् निरूपण के विषय में योग वशिष्ठ में विस्तारपूर्वक चर्चा मिलती है, योग वशिष्ठ ने मन को चित् की संज्ञा दी गई है। वशिष्ठ जी श्रीराम को उपदेश देते हूए कहते हैं कि हे राम यह मन भावना मात्र है और भावना का अर्थ है विचार, परंतु विचार क्रिया का रूप है तथा विचार की क्रिया से संपूर्ण फल प्राप्त होते हैं। यह मन स्वयं भी संकल्प शक्ति से युक्त है। इस लोक में जैसे गुणी का गुण से हीन होना संभव नहीं है, उसी प्रकार मन का कल्पनात्मक क्रिया शक्ति से रहित होना असंभव है। मन जिसका अनुसंधान करता है, उसी का संपूर्ण कर्मेंद्रीय वृतियॉ संपादन करती है इसलिए मन को कर्म कहा गया है। मन, बुद्धि, अहंकार, चित्, कर्म, कल्पना, स्मृति, वासना, अविद्या, प्रयत्न, इंद्रिय, प्रकृति, माया आदि सभी मन की ही संज्ञा है।

संसार का कारण मन की कल्पना ही है। चित् तथा चैत्य का संयोग होने पर यह संसार भ्रम होता है। मन के स्वरूप के बारे में बताते हुए योग वशिष्ठ में कहा गया है कि यह मन न तो जड़ है और न चेतन ही है। जड़ और चेतन की गांठ को मन कहते हैं और संकल्प विकल्प की कल्पना ही मन है यह संसार उसी मन से पैदा हुआ है। यह जड़ चेतन दोनों में चलायमान है। यह कभी जड़ की तरफ और कभी चेतन की तरफ चला जाता है। इस मन को कई संज्ञा से विभूषित किया जाता है मन, बुद्धि, चित्, अहंकार, और जीव इत्यादि मन की संज्ञा है। जैसे कोई नट सवांग रचना से अनेक संज्ञा पाता है, ठीक उसी प्रकार मन संकल्प से अनेक संज्ञा प्राप्त करता है। यह संपूर्ण विस्तृत जगत मन से ही व्याप्त है। मन से तो केवल परमात्मा ही शेष रहते हैं। मन के नाश होने पर सर्वाश्रयदायक परब्रह्म परमेश्वर ही शेष रहता है और उसी के प्रमाद के कारण मन इस जगत की रचना करता है। मन ही क्रिया है, मन के द्वारा ही शरीर बनता है और मरता है, मन के नष्ट होने पर कर्म आदि का संपूर्ण भ्रम नाश हो जाता है। जिस पुरुष ने मन पर विजय प्राप्त कर लिया है, वह जन्म मरण के बंधन से रहित हो जाता है, मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

चित् प्रसादन

योग वशिष्ठ के उपशम प्रकरण के 13वें सर्ग में शांति के उपाय का वर्णन करते हुए कहा है कि जैसे पूर्व काल में वेद अनुसार अन्य महापुरुषों एवं राजा जनक आदि ने जो आचरण किया

है, वैसा ही आचरण करके आप भी मोक्ष पद को प्राप्त करें। बुद्धिमान पुरुष स्वयं ही परम पद को प्राप्त होते हैं, जब तक आत्मा प्रसन्न नहीं होती तब तक इंद्रियों को दमन करके अपना काम करते रहना चाहिए। जब तक आत्मा रूपी परमात्मा और ईश्वर प्रसन्न हो जाएगा, तो फिर अपने आप ही प्रकाश दिखेगा। इसलिए हे राम! राजा जनक आदि ने जिस–जिस तरह आचरण किए हैं उसी प्रकार आप भी ब्रह्म लक्ष्मी होकर आत्म पद में स्थित हो और इस संसार में विचरण करना चाहिए। इससे दुःख नहीं होगा। ऋषि वशिष्ठ कहते है कि हे राम! यह मन अति चंचल है। इसको शांत करने के लिए अपने में यह समझे कि न मैं हूं और न कोई है, अनिष्ट पदार्थ भी कुछ नहीं है, इस प्रकार विचार से यह मन शांत हो जाएगा।

जो राग द्वेश से मुक्त है, मिट्टी के ढेले, पत्थर और स्वर्ण को एक समान समझता है तथा संसार की वासनाओं का त्याग कर चुका है, ऐसा योगी मुक्त कहलाता है। उनकी सभी क्रियाओं में सम्भव होता है, तथा वह सुख–दुःख में भी समान भाव रखता है। जो निष्ट और अनिष्ट की भावना का त्याग करके प्राप्त हुए कार्य को कर्तव्य समझकर ही कार्य में प्रवृत्त होता है, उसका कभी भी पतन नहीं होता। यह जगत चेतन मात्र ही है। इस प्रकार के निश्चय वाला मन जब लोगों का चिंतन त्याग देता है, तब वह शांति को प्राप्त हो जाता है।

यम–नियम निरूपण

योग वशिष्ठ में योग साधना करने वाले साधकों को निर्वाण प्राप्ति के लिए यम–नियमों का अभ्यास आवश्यक बताया है। वशिष्ठ जी कहते हैं कि जो अपने पूर्वजों के उपदेश को ध्यान में रखकर उन पर शुभ आचरण करते हैं, वह धर्मात्मा कहलाता है और पाप मार्ग से बचता है। धर्मात्मा भी दो प्रकार के होते हैं एक प्रवृत्ति वाला, दूसरा निवृत्ति वाला। प्रवृत्ति मार्ग वह है जिसमें शास्त्रेक्त करने योग्य शुभ कर्म करें और दान पुण्य सदाचरण करके अपने कृत्य कर्म का फल चाहे, निवृत्ति मार्ग वह है जिसमें संसार के सभी सुखों को मिथ्या समझे, अपने अंतःकरण को स्वभाव से ही स्वच्छ रखें, अपने पवित्र विचार करके स्वाध्याय द्वारा सत्य शास्त्रों का अध्ययन कर अपनी बुद्धि को तीव्र करें और अपनी दृष्टि समान रखें। योग वशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में आगे कहा है कि जिज्ञासु योग साधक को चाहिए कि अपने ज्ञान की वृद्धि के लिए तीर्थ स्थानों में स्नान, दान तथा सत्यशास्त्रों पर विचार करता हुआ सत्संग भी करें। उसका खान–पान तथा लेना–देना सभी कुछ विचार युक्त होना चाहिए। साथ ही क्रोध रहित होकर शुभ आचरण करें और पवित्र मार्ग पर चलें। क्रमशः सभी इंद्रिय विषयों का त्याग करें और अपनी संपूर्ण इच्छाओं को दबा कर केवल दया नाम की इच्छा को अपनावे अर्थात सब पर दया भाव रखता हुआ संतोष को प्राप्त होवे। ऐसा व्यक्ति लोभ, मोह तथा दंभ आदि में सर्वथा अलग रहता है। समस्त भोगों को त्याग कर देने के कारण उसका हृदय प्रतिक्षण शुभ गुणों से युक्त रहता है। वह फूलों की सैया को सुखदाई नहीं समझता, इसके अतिरिक्त वन एवं पर्वत की कंदरा का निवास ही श्रेष्ठ समझता है। इस प्रकार कुआं, बावड़ी, सरोवर एवं नदियों में स्नान तथा भूमि या पत्थर पर शयन करता

हुआ, निरंतर अपने वैराग्य में अभिवृद्धि करता जाता है और फिर धारणा व ध्यान द्वारा चित्त में स्थिरता लाकर, आत्म चितन करता हुआ, समस्त सांसारिक भूलोकों से पूर्णतया विरक्त हो जाता है।

प्राणायाम निरूपण

योग वशिष्ठ में प्राणायाम का भी उल्लेख किया गया है प्राण के संबंध में कहा गया है कि यह प्राण हृदय प्रदेश में स्थित रहता है। अपान वायु में भी निरंतर स्पंद शक्ति तथा सद्गति करता है। यह अपान वायु नाभि प्रदेश में स्थित रहता है, किसी भी प्रकार के यंत्र के बिना प्राणों की हृदय कमल में होने वाली जो स्वभाविक बर्हिमुखता है, विद्वान लोग उसे 'रेचक' कहते हैं। अंगुल पर्यंत बाहय प्रदेश की ओर नीचे गए प्राणों को लौटाकर भीतर प्रवेश करते समय जो शरीर के अंगों के साथ स्पर्श होता है उसे' पूरक' कहते हैं। अपान वायु के शांत हो जाने पर तब वह हृदय में प्राण वायु का अभ्युदय नहीं होता, तब वह वायु की कुंभकावस्था रहती है, जिसका योगी लोग अनुभव करते हैं। इसी को 'अभ्यांतर कुंभक' कहते हैं। बाऐं नासिका के अग्रभाग से लेकर बराबर सामने 12 अंगुल पर्यंत आकाश में जो अपान वायु की निरंतर स्थिति है, उसे विद्वान लोग बाहय कुंभक कहते हैं।

प्राणायाम के फल के बारे में उल्लेख करते हुए योग वशिष्ठ के निर्वाण प्रकरण में कहा गया है कि प्राण और अपान के स्वभावभूत यह जो बाहर अभ्यंतर कुंभकादि प्राणायाम है, उनका भली–भांति तत्व रहस्य जानकर निरंतर उपासना करने वाला पुरुष पुनः इस संसार में उत्पन्न नहीं होता। अपान के रेचक और प्राण के पूरक के बाद जब अपान स्थित होता है तो प्राण का कुंभक होता है। उस कुंभक में स्थित होने पर प्राणी तीनों तापों से मुक्त हो जाता है क्योंकि वह अवस्था आत्म तत्व की होती है। उस कुंभक की अवस्था में जो साक्षी भूत सत्ता है वही वास्तव में आत्म तत्व है। उसमें स्थित होने से प्राण की स्थिरता वाली देश, काल आदि की अवस्था में स्थिर हुआ मन का मनत्वभाव नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार प्राणायाम का अभ्यास करने वाले पुरुष का मन विषयाकार वृत्तियों के होने पर भी बाह्य विषयों में रमण नहीं करता। जो शुद्ध और बुद्धि वाले महात्मा इस प्राण विषयक दृष्टि का अवलंबन करके स्थित है, उन्होंने प्राणमय पूर्ण ब्रहम परमात्मा को प्राप्त कर लिया है और वे ही समस्त खेदो से रहित है।

प्रत्याहार प्रकरण

महर्षि पतंजलि के अनुसार मन के रुक जाने पर नेत्र आदि इंद्रियों का अपने–अपने विषयों के साथ संबंध नहीं रहता अर्थात इंद्रियॉ शांत होकर अपना कार्य बंद कर देती है, इस स्थिति का नाम प्रत्याहार है। योग वशिष्ठ में प्रत्याहार के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा है कि इस जगत में कभी भी चपलता से रहित मन नहीं रहता। जैसे उष्णता अग्नि का धर्म है वैसे ही

चंचलता मन का। चेत तत्व में जो यह चंचल क्रिया शक्ति विद्यमान है, उसी को मानसी शक्ति कहते है। इस प्रकार जो मन चंचलता से रहित है, वही मरा हुआ कहलाता है। वही तप है और वही मोक्ष कहलाता है। मन के विनाश मात्र से संपूर्ण दुखों की शांति हो जाती है और मन के संकल्प मात्र से परम सुख की प्राप्ति होती है।

यहां मन की चपलता अविद्या से उत्पन्न होने के कारण अविद्या कही जाती है। उसका विचार के द्वारा नाश कर देना चाहिए। विषय चिंतन का त्याग कर देने से अविद्या और उस चित् सत्ता का अंतः करण में लय हो जाता है और ऐसा होने से मोक्ष सुख की प्राप्ति होती है। जिसने मन रूपी पाश को अपने मन के द्वारा ही काटकर आत्मा का उद्धार नहीं कर लिया, उसे दूसरा कोई बंधन नहीं छोड़ सकता। विद्वान पुरुष को चाहिए कि जो वासना (जिसका दूसरा नाम मन है) उदित होती है, उसका परित्याग करें– उसे मिथ्या समझकर छोड़ दे। इसमें अविद्या का क्षय हो जाता है। भावना की भावना न करना ही वासना का क्षय है, इसी को मन का नाश एवं अविद्या का नाश भी कहते हैं। इस प्रकार से निश्चय मन वाला जब भोगों का चिंतन त्याग देता है तब वह शांति को प्राप्त हो जाता है।

ध्यान निरूपण

धारणा वाले स्थान पर एक वस्तु के ज्ञान का प्रवाह बना रहना ध्यान कहलाता है। योग वशिष्ट में ध्यान के विषय में वर्णित करते हुए उपशम प्रकरण में कहा है कि प्राणायाम द्वारा अपने मन को नियंत्रण कर नेत्रों को बंद करके ध्यान का अभ्यास करना चाहिए। इसमें ओंमकार का ध्यान बतलाया है। ओमंकार में अकार, उकार और मकार 3 शब्द है जो क्रमशः अकार से ब्रह्मा, उकार से विष्णु, मकार से शिव का घोतक है तथा जो अर्ध मात्रा है वह तुरिया है। इस प्रकार अकार से ब्रह्म का स्मरण करें, उकार से विष्णु का स्मरण करें तथा मकार से शिव का ध्यान करते हुए तुरियापद को प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यही ध्यान का स्वरूप है।

समाधि निरूपण

समाधि के स्वरूप के विषय पर वशिष्ठ जी श्री राम से कहते हैं कि अब समाधि का लक्षण सुनो। यह जो गुणों का समूह गुणात्मक तत्व है, उसे अनात्मक तो मानकर अपने आप को केवल इनका साक्षी भूत चेतन जानो और जिसका मन स्वभाव सत्ता में लगकर शीतल जल के समान हो गया है उसको ही समाधिस्थ जानना चाहिए। इसी का नाम समाधि है। जो मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा आदि गुणों में स्थित होकर आत्मा के दर्शन से शांत मन हुआ है, उसको समाधि कहते हैं। हे राम! जिसको ऐसा निश्चय हो गया है कि मैं शुद्ध चिदानंद स्वरूप हूं और दृश्यों से मेरा कोई संबंध नहीं, उसके लिए घर और बाहर एक समान है, फिर वह चाहे कहीं रहे। अंतःकरण का शांत होना ही महान तपों का फल है। जिसने ऊपर से तो इंद्रियों का हनन कर लिया है मगर मन से संसार के पदार्थों की चिंता करता रहता है, उसकी समाधि व्यर्थ है। उसका

तो समाधि में बैठना ऐसा है जैसे कोई उन्मत्त होकर नृत्य करें। देखने में तो व्यवहार करें, मगर मन वासना से अलग हो तो उसको बुद्धिमान पुरुष समाधि के समान मानते हैं। वास्तव में वही स्वस्थ आत्मा कहलाने का अधिकारी है और उसी को समाधि कहते हैं। जिसके हृदय में संसार के राग द्वेश समाप्त हो गया और जिसने शांति प्राप्त कर ली, उसको सदिव्य समाधिस्थ जानना चाहिए।

संपूर्ण भाव, पदार्थों में आत्मा को अतीत जानना समाहित चित् कहलाता है। समाहित चित् वाला व्यक्ति चाहे कितने ही जन समूह में क्यों न रहे, मगर उसका किसी से कोई संबंध नहीं रहता, क्योंकि उसका चित् हमेशा अंतर्मुख रहता है। सोते–बैठते, खाते–पीते, चलते–फिरते जगत को आकाश रूप मानता है। ऐसे प्राणी को अंतर्मुखी कहलाते हैं क्योंकि उसका हृदय शीतल होने के कारण उसको संपूर्ण जगत शीतल ही भासता है। वह जब तक जीता है तब तक शीतल ही रहता है।

मोक्ष (मुक्ति निरूपण)

मोक्ष का वर्णन करते हुए वशिष्ठ जी, श्रीराम से कहते हैं कि दो प्रकार की मुक्ति होती है। जीवन मुक्ति और विदेहमुक्ति। जिस अनासक्त बुद्धि वाले पुरुष की दृढ़ संकल्प कर्मों के गहन त्याग में अपनी कोई इच्छा नहीं रहती, अर्थात जिसकी इच्छा का सर्वथा अभाव हो जाता है, ऐसे पुरुष की स्थिति को जीवनमुक्त अवस्था अथवा सदेहमुक्ति कहते है। देह का विनाश होने पर पुनर्जन्म से रहित हई वही जीवन मुक्ति विदेह मुक्ति कही जाती है। जिन्हें विदेह मुक्ति हो गई है वे फिर जन्म धारण करके दृश्यता को नहीं प्राप्त होते, ठीक उसी तरह, जैसे भुना हुआ बीज जमता नहीं है। मोक्ष की प्राप्ति ज्ञान से होती है, कर्म से नहीं। वशिष्ठ जी कहते हैं कि– हे रघुनंदन! परब्रह्म परमात्मा देवताओं के भी देवता है। उसके ज्ञान से एक परम सिद्धि (मोक्ष) की प्राप्ति होती है। क्लेश युक्त सकाम कर्मों से नहीं, संसार बंधन की निवृति या मोक्ष की प्राप्ति के लिए ज्ञान ही साधन है।

सकाम कर्म का इसमें कोई उपयोग नही क्योंकि मृगतृष्णा में होने वाले जल के भ्रम का निवारण करने के लिए ज्ञान का उपयोग ही होता है तथा इसी भ्रम से ज्ञान की निवृत्ति होती है कर्म से नही। स्वभाविक साधन ही मोह का नाशक होता है, जिससे जीव के दुःख का निवारण होता है तथा जीवनमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करता है। आत्मा को सत तथा संसार को असत जानकर आत्मतत्व का ही अधिष्ठान करे वह ही शुद्ध परमानंद रूप है। योग वशिष्ठ में कहा गया है कि उस आत्मतत्व को जान लेना ही परम सुख है।

संदर्भ

1. *सातवलेकर, श्रीपाद दामोदर, श्रीमद्भागवत गीता, 1961 भारत मुद्रणालय स्वाध्याय मंडल, सूरत*
2. *शर्मा, पंडित रतिराम, योग वशिष्ठ, भाषा (प्रथम खंड), 1961 देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली*

3. *शर्मा, पंडित रतिराम, योग वशिष्ठ, भाषा (द्वितीय खंड), 1962 देहाती पुस्तक भंडार, दिल्ली*
4. *द्विवेदी, पंडित ठाकुर प्रसाद, योगवशिष्ठ महारामायण, 2001 चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली*
5. *दशोरा, श्री नंदलाल, योग वशिष्ठ महारामायण, 2002 रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार*
6. *एको योगस्तथा ज्ञानं संसारोत्तरेणक्रमें। निर्वाण प्रकरण सर्ग 18/7*
7. *नर्वाण प्रकरण सर्ग 18/7*
8. *उपशम प्रकरण सर्ग 96/1*
9. *सम प्रकरण सर्ग 96/13–14*
10. *मन इत्युव्यते शमन जडनं चिन्मयम्। उपशम प्रकरण सर्ग 96/41*
11. *प्रसन्ने सर्वगेदे वेदे वेशे परमात्मानि।*
12. *स्वयं मालोकिते सर्वाः क्षीयंते दुःखदृष्टयः।। उपशम प्रकरण सर्ग13/4*
13. *अवस्तित्वंमिदं वस्तुयस्य ललितंमनः। उपशम प्रकरण सर्ग 13/24*
14. *प्राणापानसमानाधैस्ततः सहृदयानिलः।। निर्वाण प्रकरण 24/25*
15. *स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः। 2/54*
16. *उत्पत्ति प्रकरण 112/9*
17. *तत्र प्रत्यैकतानता ध्यानम्।। पा.यो.सू. 3/2*
18. *इमं गुणसमाहारमनात्मत्वेन पश्यतः। अंतः शीतलतायासौसमाधिरिति कथ्यते।। उपशम प्रकरण 56/7*
19. *दशोरा, श्री नंदलाल, योग वशिष्ठ महारामायण, रणधीर प्रकाशन, हरिद्वार, पृ. 143*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

भारतीय हिन्दी साहित्य में मानवीय गुण (भक्तिकाल के सन्दर्भ में)

हेमलता
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिन्दी)
वीरांगना रानी अवन्तीबाई लोधी राजकीय महिला महाविद्यालय, बरेली (उत्तर प्रदेश)

भक्तिकाल के कालजयी स्वरों ने विश्व साहित्य में अपना विशेष स्थान बनाया है। मध्यकालीन सामंती समाज के भक्त कवियों ने मानवीय–मूल्यों के धरातल पर अपने स्वरों को पहचान दी। युगीन कवियों ने राजाश्रय को नकारते हुए मध्यकालीन सामाजिक यथार्थ के विभिन्न मानवीय पहलुओं को उजागर किया।

भक्ति आन्दोलन का आरम्भ दक्षिण भारत से माना जाता है। दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन का एक सूत्र महाराष्ट्र के भक्ति आन्दोलन से जुड़ा। तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी में संत ज्ञानेश्वर, नामदेव आदि भक्तों ने इस आन्दोलन के माध्यम से महाराष्ट्र में एक जातीय एवं साम्प्रदायिक एकता को मजबूत किया। 17वीं शताब्दी तक आते–आते यह आन्दोलन महाराष्ट्रीय जनजीवन की एक शक्ति बन गया। इस युग में तुकाराम और रामदास महत्वपूर्ण कवियों में शुमार रहे। बंगाल में चण्डीदास से लेकर चैतन्य महाप्रभु तक सभी भक्तों ने मनुष्य मात्र की समानता पर ज़ोर दिया और साथ ही वैष्णव भक्ति आन्दोलन को दृढ़ किया। मनुष्य मात्र की समानता पर विशेष बल देते हुए इन्होंने कहा –

"शुनह मानुष भा
शबार उपरे मानुष शत्तो
ताहर उपरे नाई" – चण्डीदास

चण्डीदास ने धर्म और जाति धर्म के बन्धन का विरोध किया। हिन्दू तथा मुसलमानों की निम्न कही जाने वाली जातियों के लोग चैतन्य के शिष्य थे। रूज, सनातन, हरिदास आदि मुसलमान थे, जो चैतन्य के प्रधान शिष्यों में गिने जाते थे। वैष्णव भावना का नया उन्मेष रामानंद, वल्लभाचार्य, चैतन्य महाप्रभु तथा मराठी संतों में देखा जा सकता है। रामानंद की दृष्टि उदार थी, इसलिए उन्होंने अपने शिष्यों में जुलाहों, चर्मकारों, नाइयों, जाटों आदि सामान्य जातियों के लोगों को शामिल किया। वैष्णव भावना का मूल आधार सामाजिक समरसता और एकता ही रही है। भक्ति काव्य जीवन मूल्यों का प्रतिनिधि है, जिसे विभिन्न रूपों में कवियों ने उकेरा। कभी देव कथा के माध्यम से, कभी निवेदन भाव से। अवतारों की संघर्ष गाथा उनके व्यक्तित्व को नई आभा

देती है। उनका कर्म और निरन्तर संघर्ष ही उन्हें समाज में स्वीकृति प्रदान करता है। अवतार का वह मानव रूप, जो जीवन जगत में संचरित होता है – "नाना करम करे विधि नाना"। इस प्रकार अवतार चरित्र देवतत्व के साथ–साथ समाज में अपना विशेष स्थान बनाते हैं। मलिक मोहम्मद जायसी अपनी कृति 'पदमावती' में नायिका को 'सिंहलद्वीप की नारी' के रूप में काव्यनायिका बना देते हैं। वह 'पारसमणि' कहकर, उसे ब्रह्मस्वरूपा मानकर भी, उसके सौन्दर्य का वर्णन करते हैं –

"का सिंगार ओहि बरनौं राजा। ओहिक सिंगार ओही पै छाजा।"

तुलसी ने राम का सौंदर्य उकेरते हुए उन्हें बार–बार 'कामदेव' कहा और सीता के अनिंद्य सौंदर्य के विषय में कुछ भी कह सकने में स्वयं को असमर्थ माना –

"सुंदरता कहु सुंदर करई। छविगृहे दीपसिखा जनु बरई।।

सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरों विदेह कुमारी।।"

कवियों ने अवतारों को लोकभूमि पर प्रस्तुत किया, उनके गुणों के द्वारा सौंदर्य का बखान किया। कवित्व की इसी विशेषता के माध्यम से देवचरित्र के गुण और कर्म सामने लाए गए हैं, और जनमानस की चेतना में वे चरित्र लौकिक स्वरूप धारण कर लेते हैं। लौकिक क्षेत्र में आने के बाद वैयक्तिक सीमाएं टूट जाती हैं और मूल्यसम्पन्न चरित्र समाज में स्वीकृत हो जाते हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने राम के सौंदर्य में शील, शक्ति, सौंदर्य का संयोजन देखा, उन्होंने राम के सौंदर्य में 'शील' को सराहा। राम का यह शील उच्चतर मानव मूल्यों से निर्मित है, जिसे कर्म से चरितार्थ किया गया। भक्तिकालीन कवियों ने 'राम–कृष्ण' के चरित्रों के मानव गुण दर्शाए, यह बताया कि उनका मूल गुण सामाजिक कर्म में है, जिसका लक्ष्य अन्याय–अत्याचार का विरोध करना है, और इसी तरह उच्चतम मूल्यों की स्थापना कर डाली। राम और कृष्ण के चरित्र इन काव्यों में इन्हीं कर्मों के माध्यम से स्वयं को समाज में प्रमाणित करते हैं। तुलसी की कृति 'रामचरितमानस' में भगवान राम निःसंकोच भाव से स्वीकारते हैं कि युद्ध वानर सेना के सहारे जीता गया –

"तुम्ह अति कीन्ह मोरि सेवकाई। मुख पर केहि विधि करो बड़ाई।

ताते मोहि तुम्ह अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे।

अनुज राज संपति बैदहि। देह गेह परिवार सनेही।।

सब मम प्रिय नहिं तुम्हहि समाना। मृशा न कहउँ मोर यह बाना।।" – उत्तरकांड

भक्ति काव्य ने भारतीय समाज में अलख जगाने का भी कार्य किया। कवियों ने कभी आत्म निवेदन, संबोधन, उपदेश या प्रयोजन आदि द्वारा 'जनजागृति' का कार्य किया। कबीर ने फटकारा–ललकारा, पर प्रेमपूर्वक कहा –

"जोलाहा बीनहु हो हरिनामा। जाके सुर, नर–मुनि धरे ध्याना।।"

इन कवियों के आत्मसंबोधन में भी वैयक्तिकता नहीं है, बल्कि उनके विनय–प्रार्थना समर्पण भाव आदि में भी सम्पूर्ण समाज सम्मिलित है।

तुलसी की 'विनयपत्रिका' में व्यक्तिगत निवेदन न होकर उस समग्र काल की चिंता है। तुलसी के विनय पद इसी सन्दर्भ में हैं –

"मैं तोहि अब जान्यों संसार।

बाँधि न सकहिं मोहि हरि के बल, प्रकर कपट–आगार।"

एक बार यदि समाज में जागृति आ जाए, तो सब ठीक हो जाएगा –

"अब लौं नसानी, अब न नसैहों। राम कृपा भव निसा सिरानी, जागे फिरि न डसैहों।"

मध्यकालीन काव्य को नया आयाम वैष्णव भावना के 'मानवधर्म' ने दिया। इस भावना ने कर्मकांडी पुरोहितवाद का निरन्तर निषेध किया। यहां जाति–सम्प्रदाय की सीमाएं टूटती हैं –

"जाति–पांति पूछे नहिं कोई, हरि को भजै, सो हरि का होई।"

इसके अलावा कबीर कठोर शब्दों में भी पूछते हैं –

"जे तूं बाभन बाभनी का जाया।

तौ आन बाट होई कहै न आया।"

तुलसीदास भी वर्ण–व्यवस्था से क्षुब्ध होकर लिखते हैं –

"धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलाहा कहौ कोउ,

काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोउ,

तुलसी सरनाम गुलाम है रामु को, जाको रूचै सौ कहै कछु ओऊ,

मांगि के खाइबो, मसीत के सोइबो, लइबो को एक, न दइबे को दोऊ।।"

कबीर ने लिखा –

"वैष्णव की छपरी भली, ना साकत बड़ गांव।"

करुणा, दया, क्षमा के मानवीय भाव वैष्णव–भावना को सही वैचारिक आधार देते हैं, जिसमें सम्पूर्ण जगत आ जाता है। 15वीं सदी के वैष्णव भक्त कवि नरसी मेहता ने कहा –

"वैष्णव जण ते तेंणे कहिए जे पीर पराई जाणें रे।"

उन्होंने सर्वधर्म समन्वय का भी प्रयत्न किया, मध्यकालीन भारतीय भक्तिकाव्य की तरह। अहिंसा का मुख्य आधार दया, करुणा, मैत्री, विश्वबंधुत्व आदि हैं। वैष्णव भावना का सच्चा अर्थ है, मनुष्य की केन्द्रीयता और निरन्तर उच्चतर मानव मूल्यों की खोज।

मध्यकालीन भक्त कवियों ने सामाजिक यथार्थ का चित्र भी उकेरा, उन्होंने ग्रामों के किसानों की आई थक स्थिति का भी वर्णन किया है। बार–बार उन्हें अकाल का सामना करना पड़ता था। अकाल और भूख की पीड़ा का मार्मिक चित्रण तुलसीदास ने किया है –

"कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरे।"

तुलसी ग्रामीण चेतना के कवि हैं। उनका साहित्य तत्कालीन ग्रामीण समाज की दशा का दस्तावेज़ है –

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि
बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीद्यमान सोच बस
कहै एक एकन सों 'कहाँ जाई का करी'।।"

दरिद्रता का दुःख तुलसी की निम्नलिखित पंक्तियों में देखा जा सकता है –

"नहिं द्ररिद्र सम दुख जग माहीं।"

रैदास ने जनसामान्य को निश्छल भाव से भक्ति की ओर उन्मुख करने का कार्य किया –

"अब कैसे छूटे राम, नाम रट लागी।
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी, जाकी अंग–अंग बास समानी।
प्रभुजी तुम धन बन हम मोरा, जैसे चितवन चन्द चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती, जाकी जोति बरै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा, जैसे सोने मिलत सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा, ऐसी भक्ति करै रैदासा।।"

संतों की कविता में लोक जीवन के प्रति भी गहरा अनुराग है –

"नाचु रे मन मेरो नट होइ।
ग्यानं कै ढोल बजाइ रैनि दिन सबद सुनै सब को ।
राहु केतु अरु नवग्रह नाचैं जमपुर आनंद हो ।
छापा तिलक लगाई बांस चढ़ि होइ रहु जग तैं न्यारा।
प्रेम मगन होइ नाचु सभा मैं रीझे सिरजन हारा।"

भक्ति आंदोलन के विषय में 'नई कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध' पुस्तक में गजानन माधव मुक्तिबोध लिखते हैं – "भक्ति आंदोलन का जन साधारण पर जितना व्यापक प्रभाव हुआ, उतना किसी अन्य आंदोलन में नहीं हुआ। पहली बार शूद्रों ने अपने संत पैदा किए।

कबीर, रैदास, सेना, पीपा आदि महापुरुषों ने ईश्वर के नाम पर जातिवाद के विरुद्ध आवाज बुलन्द की। समाज के न्यस्त स्वार्थवादी वर्ग के विरुद्ध नया विचारवाद अवश्यम्भावी था, वह हुआ।''

भक्तिकालीन कवियों ने निम्न जाति के लोगों में आत्मसम्मान की भावना जगाने का कार्य किया –

"जाके कुटुम्ब ढोर ढोवंत फिरहिं अजहुँ बानारसी आसपास।

आचार सहित विप्र करहिं डंड उति तिन तनै रविदास दासानुदासा।।"

सारांश रूप में कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति और धर्म का मूल आधार है लोक कल्याण। भक्तिकाल की विभिन्न काव्यधाराओं का मूल आधार भी जनसामान्य का कल्याण रहा है। कवियों ने देव के साथ विष्णु के अवतार श्री राम, श्री कृष्ण एवं गौतम बुद्ध आदि द्वारा समाज में उच्चतम आदर्श प्रस्तुत किए हैं। वह कथाओं द्वारा लौकिक क्षेत्र में प्रवेश कर समाज में समानता का भाव प्रस्तुत करते हैं। इस दौरान कवि आत्मसंबोधन, निवेदन अथवा क्रोधित होकर भी जनसामान्य में अलख जगाने का कार्य भी करता है। इस प्रकार धर्म व संस्कृति के साथ–साथ काव्य भी 'बहुजन हिताय' का आदर्श प्रस्तुत करता है।

"ईशावास्यमिदं सर्व यत्ऋत्कचजगत्यां जगत्।

तेन त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः कस्यस्विद्धनं"

संदर्भ

1. *हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल*
2. *त्रिवेणी : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल*
3. *भक्ति काव्य का समाजशास्त्र : प्रेमशंकर*
4. *लोकवादी तुलसीदास : विश्वनाथ त्रिपाठी*
5. *संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह दिनकर*
6. *मध्यकालीन बोध का स्वरूप : हजारी प्रसाद द्विवेदी*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

पर्यावरण संरक्षण में भारतीय संस्कृति तथा मानवीय मूल्यों की भूमिका

डॉ. हितेन्द्र कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान
राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

पूरी दुनियां में हवाएं अपना रूख बदल रही हैं, मौसमों की चाल ने ऐसी कयामत बरपाई है कि समूची मानव जाति हैरान है। पृथ्वी पर रहने वाले जीव–जन्तुओं से लेकर मानव भी इस बात से परेशान है कि आखिर तेज गर्मी तथा सर्दी से कैसे बचा जाये। दुनिया के कई देशों में बाढ़ आ रही हैं, तो कहीं सूखा पड़ रहा है, तो कहीं जंगलों में आग लगी रही है, मानों पृथ्वी पर मौसमी आपातकाल लग गया है और उससे बचने का कोई रास्ता दिखाई नहीं दे रहा है। यह सब मानव जाति की भौतिक विकास तथा विलासतापूर्ण जीवन के पीछे अन्धी दौड़ का परिणाम है। भौतिक तथा विलासितापूर्ण जीवन जीने के लिए कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है, इसका अन्दाजा भी नहीं है मानव जाति को। आज दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जो पर्यावरण संकट का सामना न कर रहा हो। पिछले कई वर्षों से आबादी बढ़ने के साथ–साथ पृथ्वी के संसाधनों के अत्यधिक दोहन, जंगलों के लगातार कटान, ग्लेशियरों के तेजी से पिघलने, जंगलों में आग तथा मौसम के पैटर्न में लगातार बदलाव से क्लाइमेंट इमरजेंसी जैसे हालात उत्पन्न हो गये हैं और अगर जल्द ही पर्यावरण संरक्षण की कोई ठोस योजना नहीं बनाई गई तो आने वाले दिनों में मानव जाति का क्या हश्र होगा, कोई नहीं जानता।

पर्यावरण दो शब्दों ''परि' तथा ''आवरण'' से मिलकर बना है, 'परि' का अर्थ है हमारे आस–पास अर्थात जो हमारे चारों ओर है और आवरण का अर्थ है, जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। पर्यावरण उन सभी भौतिक, रसायनिक एवं जैविक कारकों की कुल इकाई है जो किसी जीवधारी अथवा पारितंत्रीय आबादी को प्रभावित करते हैं तथा उनके रूप, जीवन और जीविता को तय करते हैं। पर्यावरण में दो घटक होते हैं – जैविक संघटक तथा अजैविक संघटक, पर्यावरण के जैविक संघटकों में सजीव तत्व जैसे सूक्ष्म जीवाणु से लेकर कीड़े–मकौड़े, सभी जीव–जन्तु और पेड़–पौधे आदि शामिल हैं, जबकि अजैविक संघटकों में निर्जीव तत्व जैसे– चट्टानें, नदी, मिट्टी, सूर्य का प्रकाश, तापमान, हवा, जल, वायुआदि शामिल हैं। सामान्यता पर्यावरण हमारे जीवन को प्रभावित करने वाले जैविक और अजैविक तत्वों, प्रक्रियाओं और घटनाओं से मिलकर बनी इकाई है यह हमारे चारों ओर व्याप्त है और हमारे जीवन की प्रत्येक घटना पर्यावरण द्वारा प्रभावित होती है। मानव जाति द्वारा भौतिक एवं विलासतापूर्ण जीवन जीने

के लिए प्रायोजित गतिविधियाँ किसी न किसी प्रकार से पर्यावरण को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती हैं तथा पर्यावरण को प्रदूषित करती है।

प्रदूषण हमारी हवा, मृदा एवं जल के भौतिक, रसायनिक अथवा जैविक लक्षणों में होने वाले अवांछनीय परिवर्तन को कहते हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव समाज और अन्य जीवधारियों के लिए हानिकारक होते हैं तथा जो पदार्थ पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं उन्हें प्रदूषक कहते हैं। प्रदूषण निम्न प्रकार के होते हैं – वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, जल प्रदूषण, मृदा (भूमि) प्रदूषण, आदि। जैसे–जैसे मानव सभ्यता का विकास हो रहा है, पर्यावरण में प्रदूषण की मात्रा बढ़ती जा रही है। प्रदूषण बढ़ाने में मानव जाति के क्रियाकलाप एवं उनकी विलासतापूर्ण जीवनशैली काफी हद तक जिम्मेदार है। सभ्यता के विकास के साथ–साथ मनुष्य ने कई नये अविष्कार किये हैं जिससे औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। जनसंख्या वृद्धि के कारण मनुष्य दिन–प्रतिदिन वनों की कटाई करके खेती एवं घर के लिए जमीन पर लगातार कब्जे कर रहा हैं खाद्यान्नों की उपज बढ़ाने के लिए रसायनिक खादों एवं हानिकारक कीटनाशकों का लगातार प्रयोग कर रहा है जिसके कारण न केवल भूमि बल्कि जल प्रदूषण भी लगातार बहुत तेजी से बढ़ता जा रहा है। यातायात के विभिन्न साधनों जैसे मोटर साइकिल, कार, जीप, बस, ट्रक, रेल, वायुयान के प्रयोग के कारण ध्वनि एवं वायु प्रदूषण तेजी से हो रहा है। सही मायनों में देखा जाये तो प्रदूषण वृद्धि का मुख्य कारण मानव जाति की अवांछित गतिविधियॉ है, जो प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुन्ध दोहन करते हुए इस पृथ्वी को कूड़े–कचरे का ढेर बना रही है। कूड़ा–कचरा इधर–उधर फेंकने से जल, वायु और भूमि लगातार प्रदूषित हो रही है, जो सम्पूर्ण मानव जाति, जीव–जन्तु आदि के लिए अत्यन्त हानिकारक है। उपरोक्त विभिन्न बढ़ते प्रदूषणों के कारण मानव–जाति के स्वास्थ्य को खतरा पैदा हो गया है। आदमी खुली एवं स्वच्छ हवा में सांस लेने तक को तरस गया है। गंदे एवं प्रदूषित जल के कारण कई बीमारियां फसलों में चली जाती हैं जो मनुष्य के शरीर में पहुँचकर घातक बीमारियॉ पैदा करती है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण न समय पर वर्षा होती है, न ही सर्दी–गर्मी का चक्र ठीक तरह से चलता है। सूखा, कभी बाढ़, ओला आदि प्राकृतिक आपदाओं का मुख्य कारण तेजी से बढ़ता प्रदूषण है।

पर्यावरण प्रदूषण तथा उनसे होने वाले हानिकारक प्रभावों को कम से कम करने के लिए पर्यावरण संरक्षाण की अत्याधिक आवश्यकता है। पर्यावरण संरक्षाण के द्वारा ही मानव जाति का उत्थान सम्भव हो सकेगा। कोई भी व्यक्ति जरा सी इच्छाशक्ति तथा थोड़े से प्रयास से पर्यावरण को सुरक्षा तथा संरक्षाण दे सकता है। पर्यावरण संरक्षाण का अर्थ है कि अपने चारों ओर के वातावरण को संरक्षित करें तथा उसे जीवन जीने के लिए अनुकूल बनायें। पर्यावरण तथा प्राणी एक दूसरे पर आश्रित है। यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षाण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है जितना मानव जाति का ज्ञात इतिहास है। भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षाण को बहुत महत्व दिया गया है। भारत में मानव जीवन को हमेशा मूर्त या अमूर्त रूप में

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष, पशु आदि से जोड़कर देखा गया है। भारतीय संस्कृति के अवलोकन से पता चलता है कि पर्यावरण संरक्षण का भाव पुरातनकाल से ही मौजूद था, पर उसका स्वरूप भिन्न था। उस काल में कोई राष्ट्रीय वन नीति या पर्यावरण पर काम करने वाली संस्थायें नहीं थीं। पर्यावरण संरक्षण हमारे नियमित कार्यों से जुड़ा हुआ था। भारतीय दर्शन यह मानता है कि शरीर की रचना पर्यावरण के घटकों – पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश से मिलकर हुई है। समुद्र मंथन में वृक्ष जाति के प्रतिनिधि के रूप में कल्पवृक्ष का निकलना, देवताओं द्वारा उसे अपने संरक्षण में लेना, श्री कृष्ण की गोवर्धन पर्वत की पूजा की शुरूआत आदि पर्यावरण संरक्षण के ही उदाहरण हैं। सिन्धु सभ्यता की मोहरों पर पशुओं एवं वृक्षों का अंकन, सम्राटों द्वारा अपने राज चिन्ह के रूप में वृक्षों तथा पशुओं को स्थान देना, मार्गों में वृक्ष लगवाना, कुएँ खुदवाना, आदि भारतीय संस्कृति में पर्यावरण संरक्षण के प्रति प्रेम को दर्शाता है। वैदिक ऋषि आदि भी यही मानते थे कि पृथ्वी, जल, औषधि एवं वनस्पतियाँ हमारे लिये बहुत उपयोगी हैं, यह सभी उपयोगी तभी हो सकते हैं जब हम इनका हर प्रकार से संरक्षण करें, जिसकी प्रासंगिकता आज के समय में बहुत ज्यादा बढ़ गयी है। भारतीय संस्कृति में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के तौर पर मान्यता है। भारत में पेड़–पौधों, नदी–पर्वत, गृह–नक्षत्र, अग्नि–वायु आदि प्रकृति के विभिन्न रूपों के साथ मानवीय रिश्ते जोड़े गये हैं। पेड़ की तुलना संतान से की गई है तो नदी को माँ स्वरूप माना गया है। प्राचीनकाल से ही भारत में प्रकृति के साथ संतुलन करके चलने का अति महत्वपूर्ण संस्कार हैं। पर्यावरण संरक्षण के प्रति भारतीय संस्कृति तथा मानवीय मूल्यों की प्रसांगिकता भारत में प्राचीनकाल से ही रही है। इसके अतिरिक्त भारत में पर्यावरण संरक्षण हेतु कई आंदोलन चलाये गये हैं जैसे – विश्नोई आन्दोलन, चिपको आन्दोलन, अप्पिको आन्दोलन, साइलेंट घाटी आन्दोलन, नर्मदा बचाओ आंदोलन, टिहरी बांध विरोधी आन्दोलन आदि तथा इन आन्दोलनों के द्वारा पर्यावरणविदों– सुन्दर लाल बहुगुणा, चण्डी प्रसाद भट्ट, पांडूरंग हेगड़े, मेधा पाटेकर, अनिल जोशी आदि ने भारतीय समाज में पर्यावरण संरक्षण के प्रति मानवीय मूल्यों को विकसित कर जागरूकता का काफी काम किया है तथा समाज को समझाया कि पर्यावरण की सुरक्षा से बढ़कर आज कोई पूजा नहीं है। प्रकृति का सम्मान ईश्वर के प्रति सच्ची श्रृद्धा होगी तथा हम सभी को मिलकर हवा, पानी, जंगल एवं जमीन को प्रदूषित होने से बचाना चाहिए जिससे आने वाली भावी पीढ़ियों को स्वच्छ जल, हवा, पानी, जमीन उपलब्ध हो सके।

पर्यावरण और जीवन का आपस में अनोखा सम्बन्ध है, लेकिन कुछ लोगों का यह मानना है कि केवल सरकार व देश की बड़ी नामी कम्पनियों को ही पर्यावरण संरक्षण के लिए काम करना चाहिए लेकिन यह सत्य नहीं है, वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति निम्न उपायों को अपना कर पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है –

1. अपने आस–पास के वातावरण को साफ रखें।

2. सड़क पर कूड़ा ना फेकें।
3. रसायनिक खाद के स्थान पर जैविक खाद का उपयोग करें।
4. भवनों में वर्षा जल–संचयन प्रणाली उपयोग में लायें।
5. यूज एण्ड थ्रो को छोड़कर पुनः सहेजने वाली प्रणाली को अपनायें।
6. अपने जीवनकाल में एक पौधा अवश्य लगायें तथा उसकी देखभाल तब तक करें जब तक पूर्ण वृक्ष न बन जाये।
7. नदी, तालाब, झरनों में गन्दा पानी तथा कूड़ा ना डालें।
8. पॉलीथीन व प्लास्टिक का उपयोग यथासंभव कम से कम करें।
9. कपड़े के थैले का उपयोग अधिक से अधिक करें।
10. जितना खायें उतना ही भोजन लें।
11. उत्तर पुस्तिका, रजिस्टर, कापी के खाली पन्नों को व्यर्थ न फेकें बल्कि उसका उपयोग करें।
12. दिन में सम्भव हो सूर्य की रोशनी से काम चलायें।
13. आवश्यकता न होने पर बिजली से चलने वाले उपकरणों को बन्द रखें।
14. पानी को व्यर्थ न बहने दें। ब्रश एवं शेव करते समय नल खुला न छोड़ें।
15. कपड़े धोने के बाद साबुन वाला पानी सफाई में उपयोग करें।
16. फोन, मोबाइल, लैपटॉप आदि का उपयोग पावर सेविंग मोड पर करें।
17. जितना हो सके पैदल चलें, निजी वाहन का उपयोग कम से कम करें। सार्वजनिक वाहन का उपयोग ज्यादा से ज्यादा करें।
18. पैकिंग वाली चीजों का उपयोग कम से कम करें।
19. डिस्पोजल वस्तुओं का इस्तेमाल कम से कम करें।
20. कूड़ा करकट, सूखे पत्ते इत्यादि न जलायें।
21. विशिष्ट मौकों पर उपहार में पौधा भेंट करें।
22. वृक्षों को न काटें, आवश्यकता पड़ने पर काटने के बाद नये वृक्षों को लगायें तथा पूर्ण वृक्ष होने तक सेवा करें।
23. पानी पिलाने के लिए छोटे गिलास का उपयोग करें।
24. मकान या भवन बनाते समय पौधारोपण के लिए जगह छोड़ें।
25. पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति मानव जाति को जागरूक करना जिससे कि लोगों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता बढ़े और प्रकृति की रक्षा हो सके।

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

डॉ. कमल किशोर महरोत्रा[1], श्रद्धा सिंह[2]

[1]असिसटेंट प्रोफेसर,

[2]एम एड प्रथम वर्ष

भारत एक विविध धर्म वाला देश होने के कारण मूल्यों को अधिक महत्व दिया जाता है। मानव जीवन में मूल्यों का समावेश होने से जीवन शान्तिपूर्ण एवं स्थायित्व से परिपूर्ण होता जाता है। पारिवारिक सम्बन्ध अटूट बनते हैं एवं मानव जीवन सुखमय व आनन्द से ओतप्रोत रहता है। किसी भी समुदाय या धर्म का अवलोकन करने से विदित होता है कि लगभग सभी धर्म एवं समुदायों में मूल्यों को महत्व दिया है। भारत में सदियों से ऋषि मुनियों द्वारा प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में बालक को मूल्यों की शिक्षा प्रदान नहीं की जाती थी तब छात्र अपने अध्यापक के व्यवहार को देखकर ही सीख लेता था। वर्तमान समय में छात्र को मूल्यों व मानवीय मूल्यों के विषय में बताया व पढ़ाया जा रहा है।

संप्रत्यात्मक पृष्ठभूमि

शिक्षा एक सप्रयोजन एवं नैतिक क्रिया है। शिक्षा का मुख्य कार्य विकास के प्रमुख पहलुओं, शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, संवेगात्मक, सामाजिक एवं नैतिक विकास के बीच सामंजस्य लाना है। लेकिन वर्तमान स्थिति पर ध्यान देने से ज्ञात होता है कि यह सामंजस्य गड़बड़ा जाता है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में समाज में अनिवार्य मूल्यों में निरन्तर कमी या चिन्ता व्यक्त की गई और सुझाव दिया जाता है। सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के विकास के लिए पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया जाना चाहिए ताकि शिक्षा के माध्यम से सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को विकसित किया जा सके। अतः नैतिक, आध्यात्मिक एवं मानवीय मूल्यों के विकास में शिक्षा की विशेष भूमिका है तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति की दिशा में अध्यापकों को एक महत्वपूर्ण संकल्प हमें अपने शिक्षाण एवं आचरण में सुधार करने की शक्ति प्रदान करता है। मूल्यों का सम्बन्ध ज्ञानात्मक, भावात्मक एवं क्रियात्मक तीनों ही रूपों में परिलक्षित होता है। मूल्य मौखिक व्यवहार में भी प्रदर्शित होते हैं। प्रारम्भिक अवस्थाओं में आवश्यकताएं बहुत कम होती हैं और इनकी पूर्ति परिवार में ही हो जाती है। मूल्यों में समाज की स्वीकृति निहित होती है, शिक्षार्थी अपने कार्य, व्यवहार, समाज से स्वीकृत मूल्यों के प्रकाश में करता है। शिक्षार्थी अपनी इच्छानुसार स्वछंद होकर जब चाहे उसी रूप में काम नहीं कर सकता उसे अपने साथियों, अभिभावकों, शिक्षाकों की भावनाओं का भी ध्यान रखना पड़ेगा और यही सब उसकी इच्छाओं की नियंत्रित करते हैं। मूल्य उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन एवं निर्धारण है। किसी के कार्य व्यवहार के

उद्देश्यों से संचालित होते हैं, यदि मूल्य उच्चस्तरीय एवं सम्माननीय है। तो उद्देश्य भी उन्हीं के अनुसार जनसाधारण की दृष्टि में सम्माननीय हो सकते हैं। शिक्षा मानवीय मूल्यों का विकास करने में सहायक है। शिक्षा का प्रमुख कार्य भावी पीढ़ी को नैतिक मूल्य प्रदान करता है।

गांधी जी ने कहा है कि शिक्षा का उद्देश्य मानव को बुद्धिमान बनाने के साथ श्रेष्ठ मानव बनाना है। मूल्यों का विकास बालक के पर्यावरण से प्रभावित होता है। उसे यह पर्यावरण विद्यालय में मिलता है। इस आधार पर विद्यालय में होने वाली विभिन्न क्रियाओं का बालक पर मूल्यपरक प्रभाव पड़ता है।

शिक्षा

शिक्षा शब्द संस्कृत की 'शिक्ष' धातु से बना है जिसका सीखने व सिखाने दोनों शब्दों के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

'एजूकेट' का अर्थ है क्रमबद्ध निर्देश के द्वारा पालन या चरित्र का निर्माण करना।

वैदिक साहित्य में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है यथा–विद्या, ज्ञान, बोध और विनय आधुनिक शिक्षा शास्त्रियों की तरह प्राचीन शिक्षा शास्त्रियों ने भी 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग व्यापक और सीमित दोनों रूपों में किया है। इस तरह शिक्षा के दो रूप सामने आते हैं।

शिक्षा एवं मूल्य की संकल्पना

जीवन में सफलता का आधार वस्तुतः शिक्षा में निहित है क्योंकि शिक्षा व्यक्ति को समाज में अपनी भूमिका अधिक दक्षता से अदा करने की क्षमता प्रदान करती है। समय के साथ–साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं। उत्तम सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण व हस्तान्तरण पर भी ध्यान दिया जा रहा है। परन्तु दूसरी ओर सार्वजनिक जीवन में नैतिकता व सामाजिक मूल्यों के ह्रास के प्रति ध्यान आर्कषित नहीं किया जा जा रहा है। जब से देश स्वतंत्र हुआ है कई समितियों तथा शिक्षा आयोगों ने शिक्षा के विविध पहलुओं पर विचार मंथन किया है और मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है।

समय परिवर्तन का पर्याय है निरन्तर चलता रहा है, बदलता रहता है। समय के साथ जीवन, समाज में जीने का ढंग भी बदलता है। जो जीवन को सर्वाधिक प्रभावित करती है वह है प्रकृति। प्रकृति व्यक्ति के मन, शरीर, विचार, आत्मा, सभ्यता, संस्कृति, मान्यताओं और मूल्यों सहित सभी पक्षों को प्रभावित करती है।

भारत में वैदिक काल में मूल्य चरम सीमा पर थे। वैदिक काल में भारत की सभ्यता और संस्कृति मूल्यवान थी। उस काल में समस्त मानवीय मूल्य व्यक्तियों के मन में घर किये हुए थे। भारत में उस समय धर्म को मानव धर्म का स्वरूप प्राप्त था। जिसमें सभी नैतिक मूल्यों के निर्वाह की शिक्षा दी जाती थी तथा सामाजिक रूप में उनके पालन को भी सुनिश्चित किया जाता था। शिक्षा इस प्रकार दी जाती थी कि धर्म के माध्यम से नैतिक मूल्य व्यक्ति के हृदय में बस जाते थे।

वर्तमान में देश में जैसे–जैसे पश्चिमी सभ्यता के भौतिक वाद ने अपने पांव पसारे हैं, वैसे–वैसे नैतिक मूल्यों में गिरावट को अनुभव किया गया है। भारत जो अपनी मूल्यावान संस्कृति के लिए प्रसिद्ध था, वर्तमान में नित्य प्रतिदिन ऐसे उदाहरणों का भंडार बनता जा रहा है, जो मूल्यहीन समाज का भाव प्रकट करते हैं, मूल्यों से दूर रहने के कारण ही आज का भारतीय समाज तनाव ग्रस्त है।

मूल्य की अवधारणा

मूल्य का अर्थ एवं परिभाषाएं – 'मूल्य' पद का अर्थ समाज, विज्ञान या दर्शन शास्त्र में किसी भी तरह से स्पष्ट नहीं है, (मैकमिलन व नैलर 1964) – "हम मूल्य की किसी एक परिभाषा पर एक मत नहीं हो पाये हैं। मतैक्य के रूप में तो केवल इतनर ही कहा जा सकता है कि मूल्य मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण चीज का प्रतिनिधित्व करती है।" मूल्य के लिए इंग्लिश में 'Value' शब्द का प्रयोग किया जाता है जिसका उत्पत्तित लैटिन भाषा के 'Valtere' शब्द से मानी है जो किसी वस्तु की कीमत, गुण या उपयोगिता को व्यक्त करता है। मूल्य एक ऐसी आचार संहिता या गुणों का समावेश है जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली एवं विश्वसनीय बनकर उभरता है। मूल्य में मानव की धारणाएं, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति व आस्था आदि अंतनिर्हित होते हैं।

मनुष्य जीवन पंर्यन्त सीखता रहता है तथा उसके अनुभवों में निरन्तर अभिवृद्धि होती रहती है। जैसे–जैसे वह अधिकाधिक सीखता जाता है तथा परिपक्व होता है वह ऐसे अनुभव भी प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को दिशा निर्देशित करते हैं। ये निर्देशक जीवन को उचित दिशा प्रदान करते हैं तथा उसके अनुभवों में वृद्धि करते हैं। इन्हें मूल्य कहा जा सकता है। मूल्य किसी वस्तु या स्थिति का वह गुण है जो समालोचना या वरीयता प्रकट करता है। यह एक आदर्श या इच्छा है जिसे पूरा करने के लिये व्यक्ति जीता है तथा अजीवन प्रयास करता है।

"मूल्य वह चरित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक, सामाजिक व सौंदर्यबोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है।" – सी0पी0वुड के अनुसार

"मूल्य आदर्श–विश्वास या मानक है जिन्हें सम्पूर्ण समाज या समाज का एक बड़ा अंश धारण किए हुए है।" – जॉन के अनुसार

"मानव मूल्य व्यवहार के घटक तथा निर्धारक तत्व है। ये आदर्श और ध्येय दोनों का कार्य करते हैं।" – वुड्स के अनुसार

"मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं को पुष्टि करें।" – अर्बन के अनुसार

मूल्य प्रत्यय

मूल्य के प्रत्यय में तीन घटकों का समावेश होता है –

(1) ऐषणा

(2) विवेक

(3) स्वतंत्रता

'ऐषण' और 'विवेक' स्पष्ट ही सविषयक है और 'स्वतंत्रता' कर्तव्य धर्म के कारण कृति द्वारा विषय का आक्षेप करती है। किन्नतु अच्छा ज्ञान और क्रिया तीनों ही चेतना आयाम न केवल विषय का आरोप करते हैं बल्कि दोनों के मध्य सम्बन्ध का भी उतना ही आपेक्ष करते हैं। पशु जीवन के समान मानव जीवन एक सहज और नियम की प्रवृति चक्र में बंधा हुआ नहीं है। आत्म बोध के साथ मनुष्य में अपनी प्रवृत्तियों की ओर एक सहज–भाव उदित होता है जो उनके सहज रूप को पूरी तरह से स्वीकार नहीं करता। आत्मबोध, विवके और स्वतंत्रता के न्यनाधिक अवभास नियत प्राकृतिक प्रवृत्ति चक्र के मानवीय पर्येषणा के अनन्त ऋजुपथ में रूपान्तरित करने की ओर उद्धष्टि रहते हैं।

मूल्य सम्बन्धी भारतीय अवधारणा

भारतीय मनीषियों ने मानव मूल्यों की विवचेना मानव को एक ज्ञान एवं विवेकशील प्राणी मानते हुए की है। ज्ञानहीन मनुष्य पशु के समान होता है। ज्ञान के प्रकाश में की गई इच्छा–तुष्टि या लक्ष्य प्राप्ति को मूल्य की संज्ञा प्रदान की है। नीतिशतक में कहा गया है कि –

"येशां न विद्या न तपो न दानं,
ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृर्त्युलोके भुविभारभूता।
मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति।"

मनवोचित जीवन लक्ष्यों को ही भारतीय मनीषियों ने मूल्य कहा है जीवन मूल्यों के लिए पुरूषार्थ शब्द का प्रयोग किया है। चारों पुरूषार्थ भारतीय मूल्य है – धर्म, अर्थ, काम–मोक्ष। धर्म सभी सामाजिक और नैतिक व्यवस्थाओं का आधार है।

मूल्य सम्बन्धी पाश्चात्य अवधारणा

पाश्चात्य विद्वानों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से मूल्यों को परिभाशित किया है – "मूल्य वह है, जिसका महत्व है जिसको पाने के लिये व्यक्ति और समाज चेष्टा करते हैं जिसके लिए वे जीवित रहते हैं तथा जिसके लिये बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं।

"मूल्य वह है जो मानव इच्छाओं की पूर्ति करे।" – अर्बन के अनुसार

मूल्यों को इस प्रकार से बांटा है –

(1) शारीरिक (2) आर्थिक (3) साहचर्य (4) सौंदर्य (5) चरित्र (6) बौद्धिक (7) धार्मिक (8) मनोरंजन।

मूल्य के लक्षण

1. मूल्य वस्तुओं के महत्व के बारे में विचार है।
2. मूल्य प्रत्यय, अमूर्तिकरण व भावनाएं भी है तथा उनके संज्ञानात्मक, अनुभावात्मक व क्रियात्मक पक्ष है।
3. मूल्य संशक्त सांवेगिक वचनबद्धता भी है। व्यक्ति जिस चीज को मूल्वान मानता है उसे अत्याधिक पसंद करता है व उसकी बहुत चिंता करता है।
4. सभी विचारों की भांति मूल्यों का अस्तित्व अनुभव के क्षेत्र में नहीं वरन लोगों के मन में है।
5. बिना तर्क के मूल्य अंधे होते हैं, बिना भावनाओं के वे अशक्त होते हैं तथा बिना कार्यों के खाली होते हैं।
6. मूल्य अंह–संरक्षक, समायोजनात्मक ज्ञान व आत्मानुभूति भूमिकाओं का निर्वाह करते है।

मूल्य के स्रोत

1. इतिहास
2. संविधान
3. विज्ञान
4. साहित्य
5. सामाजिक प्रथाएं
6. दर्शन
7. धर्म
8. संस्कृति
9. जन प्रसारण के साधन

मूल्यों का वर्गीकरण

मूल्य आधारित जीवनृौली को ध्यान में रखते हुये विभिनन दार्शनिकों व अन्य विद्वानों ने विविध प्रकार के मूल्यों को निश्चित किया है। वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। मूल्यों का वर्गीकरण विविध संस्थाओं तथा विद्वानों द्वारा अनेकों प्रकार से किया गया है। जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है –

(1) शाश्वत मूल्य

(2) संवैधानिक मूल्य

(3) परिवर्तनशील मूल्य

(1) शाश्वत मूल्य –

शाश्वत मूल्य वे मूल्य होते हैं जो पूरे विश्व में सब कहीं प्रत्येक कालों में वांछनीय होते हैं। ये कभी भी बदलते नहीं हैं।

(2) संवैधानिक मूल्य –

संवैधानिक मूल्य वे मूल्य होते हैं जो हमें समाज और संविधान के द्वारा प्रदान किये जाते हैं।

(3) परिवर्तनशील मूल्य –

परिवर्तनशील मूल्य वे मूल्य होते हैं जो समय काल और परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं। आलपोर्ट का मानना है कि मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करते हुए कार्य करता है।

मानवीय मूल्यों का सापेक्षित महत्व –

"मानवीय मूल्य आचार, सौदंर्य, कुशलता या महत्व के वे मानदण्ड हैं जिनका लोग समर्थन करते हैं, जिसके साथ जीते हैं तथा जिन्हें वे कायम रखते हैं।" – जैक आर फेंकला के अनुसार

"मूल्य शब्द के अन्तर्गत वे समस्त नियम, गुण प्रदान सम्मिलित किये जा सकते हैं जो मनुष्य को आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं व्यवहारिक क्षेत्र के उच्च लक्ष्य की ओर ले जा सकें।" – डॉ0 गिरीश शर्मा दत्त

वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों का विकास

(1) परिवार द्वारा मानवीय मूल्यों का विकास –

बालक में मानवीय मूल्यों का विकास करने का सर्वप्रथम अधिकार व दायित्व परिवार का होता है क्योंकि जब बालक का जन्म होता है तो वो मूल्यों के साथ ही जन्म लेता है, केवल वह मूल्यों परिवार द्वारा उचित प्रकार के संस्कार देकर उनको निखारा जा सकता है। मानवीय मूल्यों का विकास बच्चे को पढ़ाए नहीं जा सकते हैं। क्योंकि शैशवास्था से बाल्यावस्था तक के जो बालक होते हैं वे अपने परिवार में जैसा देखेगें वैसा ही सीखेगें। भारतीय धर्म ग्रन्थों में ऐसा माना गया है कि 14 वर्ष तक जो भी बालक घर में देखता है उसी प्रकार के गुणों का विकास बालक में होता है। उसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

(क) माता–पिता यदि घर में अपने से बड़ों के पैर छूते हैं तो वैसा ही बालक देखता है और सीखता है।

(ख) माता–पिता बच्चों से कहते हैं कि हमेशा सत्य बोलना चाहिए और वर्तमान समय में सारे माता–पिता बात–बात पर झूठ बोलते हैं।

(ग) परिवार में यदि सब उच्च विचार व धार्मिक प्रवृत्ति के हैं तो बालक भी उसी व्यवहार को देखकर वैसा ही हो जायेगा।

(2) अध्यापक द्वारा मानवीय मूल्यों का विकास –

अध्यापक को वर्तमान समय में भविष्य निर्माण करता माना जाता है। क्योंकि बालक परिवार से निकलकर विद्यालय ही आता है। विद्यालय में वह अपने अध्यापक को ही सबसे

अच्छा व अपना रोल मॉडल मानता है। अध्यापक अगर गलत बात भी कहता है तो बालक उसको भी सत्य मान लेता है। इसीलिये विद्यालय में अध्यापक जैसा व्यवहार करता है वैसा ही बालक सीखता है।

(1) अध्यापक को बालक का उत्तम व उचित प्रकार से विकास करने के लिए छात्रों को अपना रोल मॉडल चुनने के बारे में बताएं।

(2) छात्र में मानवीय मूल्य परिवार के बाद विद्यालय में सिखाएं जा सकते हैं।

(3) अध्यापक बालकों को उत्तम चरित्र वाले पुरूषों के विषय में बताकर मानवीय मूल्यों का विकास किया जा सकता है।

(4) परिवार के बाद अध्यापक ही है कि वह बालक को स्वामी विवेकानन्द बनाए या नरेन्द्र मोदी ये अध्यापक का दायित्व है।

(3) शिक्षा के पाठ्यक्रम द्वारा मूल्यों का विकास –

प्राचीन समय की भारतीय शिक्षा प्रणाली में बालकों को मूल्य की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उस समय के ऋषि एवं मुनि इस प्रकार से शिक्षा प्रदान करते थे कि बालक में मानवीय मूल्यों का उचित प्रकार से विकास व प्रसार किया जा सके।

परन्तु वर्तमान समय में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली को अपना लेने के पश्चात् विद्यालयों में मूल्यों की शिक्षा का विलोपन हो गया है। आज के समय में परिवार से व विद्यालय के पाठ्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया जा रहा है। बालक के अन्दर जो मानवीय मूल्य स्थापित है जोकि सुप्त अवस्था में है जिनको हम शिक्षा के द्वारा जागृत अवस्था में लाया जा सकता है। इसीलिये वर्तमान समय में बालक को मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान करने के लिये पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के विषय को पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के विषय को पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है।

मानवीय मूल्यों का विकास करने के लिये स्वामी विवेकानन्द जी ने भी इस प्रकार के पाठ्यक्रम के विषय में बताया है।

स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा शिक्षा का पाठ्यक्रम –

स्वामी जी के अनुसार यदि शिक्षक बालकों को अच्छे विचार देगें तो वे निश्चित रूप से मनुष्य बन सेकेगें। कुछ पाठ्यक्रम इस प्रकार है –

(1) आत्म बोध

(2) व्यावहारिकता

(3) आध्यात्म ज्ञान

(4) धर्म शिक्षा

(5) सांस्कृतिक शिक्षा

उपरोक्त प्रकार की शिक्षा को पाठ्यक्रम में शामिल करके ही बालक को मानवीय मूल्यों की शिक्षा प्रदान की जा सकती है जिससे बालक का उत्तम चरित्र का निर्माण किया जा सकता है। अतः वर्तमान परिस्थितियों में प्राथमिक स्तर, माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के लिए धार्मिक मूल्य, ज्ञानात्मक मूल्य, सामाजिक मूल्य, प्रजातांत्रिक, सौन्दर्यात्मक मूल्य व मानवीय मूल्य, पारिवारिक मूल्य को लिया गया है।

अध्यापक को शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्माझा में पहले मूल्यों के निर्माण की प्रक्रिया ठीक इसी तरह है जैसे मिट्टी निर्माण की। एक लम्बा अरसा लग जाता है मूल्य निर्मिती में। जैसे एक वटवृक्ष की अनेक जड़ें होती हैं और कुछ ही दिनों में ये जड़ें इसी वृक्ष के तने को सहारा देती है। बस इसी तरह मूल्य की भी अनेक जड़ों होती हैं, जिसको इस प्रकार से भी वर्गीकृत किया जा सकता है–

(1) मानवीय मूल्य निर्माण
(2) मानवीय मूल्य परिवर्तन
(3) मानवीय मूल्य संक्रमण
(4) मानवीय मूल्य विघटन
(5) नव निर्मित मानवीय मूल्य

अतः इस प्रकार से मूल्यों का निर्माण करके ही उनको मानवीय बनाया जा सकता है जिसको पाठ्यक्रम में शामिल किया जा सकता है।

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने अपने–अपने अभिप्राय व्यक्त करते हुये अनेक प्रकार के वर्गीकरण प्रस्तुत किये हैं। इन मूल्यों का वर्गीकरण निम्नलिखित दृष्टि से किया जा सकता है। कुछ मानवीय मूल्य इस प्रकार हैं –

(1) वैयक्तिक
(2) पारिवारिक
(3) सामाजिक
(4) राश्ट्रीय एवं राजनैतिक
(5) दार्शनिक/धार्मिक
(6) साहित्य/कलागत
(7) शैक्षणिक

अतः अन्त में यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त मूल्यों के द्वारा मानवीय मूल्यों का निर्माण किया जा सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य

किसी भी कार्य व अध्ययन की सफलता उसके उद्देश्यों की प्राप्ति से होती है। इस अध्ययन का उद्देश्य निम्न प्रकार है –

(1) वर्तमान समय में शिक्षा की व्यवस्था व उसकी प्रणाली का अध्ययन करना।

(2) मानवीय मूल्यों के प्रति परिवार की भूमिका

(3) मानवीय मूल्यों के प्रति अध्यापक की भूमिका

(4) मानवीय मूल्यों के प्रति विद्यालय का वातावरण

(5) शिक्षा के पाठ्यक्रम में मानवीय मूल्यों की शिक्षा

(5) परिवार व समाज का वातावरण

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन के हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं जो निम्न प्रकार है –

(1) भारत में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली आने के पश्चात् मानवीय मूल्यों का विलोपन।

(2) परिवार में माता–पिता के द्वारा केवल रूपये कमाने की शिक्षा प्रदान की जा रही है मानवीय मूल्यों की नहीं।

(3) अध्यापक द्वारा भी मानवीय मूल्यों का हनन किया जा रहा है।

(4) शिक्षा के पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा है लेकिन पढ़ायी नहीं जाती।

(5) समाज द्वारा श्री मानवीय मूल्यों का हनन किया जा रहा है।

उपाय

(1) बालक को बाल्यावस्था से ही उसे अपने आपको जानने व अपनी अन्दर छुपी शक्तियों को पहचानने में माता–पिता द्वारा योगदान प्रदान करना।

(2) माता–पिता मानवीय मूल्य बताने के बजाए उनको अपने व्यवहार में लाऐं, जिससे बालक भी उसका अपने व्यवहार में ला सके।

(3) वालक, माता–पिता व शिक्षक द्वारा बताये गये मूल्यों का उतना ध्यान नहीं रखता है जितना वह देखकर सीखता है।

(4) बालक अपने जन्म के साथ ही मानवीय मूल्यों को लेकर आता है बस माता–पिता, अध्यापक व समाज को उसको उचित प्रकार विकसित करना होगा।

(5) बालको को आध्यात्म की शिक्षा भी प्रदान करनी चाहिए जिससे वह अपने आपको जान सके और अपने मानवीय मूल्यों को समझ सके।

(6) विद्यालय में अध्यापकों को इस प्रकार के क्रिया–कलाप कराये जाने चाहिए जिससे छात्रों के व्यक्तित्व का विकास हो तथा उसके उत्तर चरित्र का निर्माण किया जा सके।

अतः उपरोक्त अध्ययन के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँ सकते हैं कि छात्र को विद्यालय में क्रियाएं कराके तथा उसी प्रकार से परिवार में बालक को मानवीय मूल्य से सम्बन्धित व्यवहार परिवार में किया जाए जिससे बालक में मानवीय मूल्यों का विकास किया जा सकता है। इसी प्रकार समाज भी बालक को, अपने व्यवहार व आचरण के द्वारा मानवीय मूल्यों का विकास किया जा सकता है। विद्यालय, परिवार, शिक्षा, पाठ्यक्रम व समाज का उद्देश्य बालक के अन्तर्मन में निहित शक्तियों का विकास कर सके व उसे भारत का एक समृद्ध व उत्तर चरित्र वाले युवा का निर्माण कर सके। इसके लिये कुछ पंक्तियां निम्न प्रकार हैं –

"कथानक व्याकरण समझे
तो सुरभित छंद हो जाए,
हमारे देश में फिर से
सुखद मकरंद हो जाए,
मेरे ईश्वर, मेरे दाता,
ये कविता मांगती तुझसे
युवा पीढ़ी संभलकर
विवेकानन्द हो जाए।"

– श्रृद्धा सिंह

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

भारतीय संस्कृति एवं मानव मूल्य

खेमेन्द्र कुमार शर्मा
अस्सिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग
एस.सी.डी.के.खोला कॉलेज ऑफ एजुकेशन दिनेशपुर,यू एस नगर (उत्तराखंड)।

''मानवीय मूल्य और भारतीय संस्कृति पूरी दुनिया में प्रासंगिक हैं। भारतीय संस्कृति पांच हजार साल से अधिक पुरानी है और कुछ प्राचीन संस्कृतियों में से एक है जो आज भी जीवित हैं। भाषा, कला, आध्यात्मिकता, संगीत, नृत्य, साहित्य सभी इस संस्कृति का हिस्सा हैं। भारतीय संस्कृति ने विभिन्न संस्कृतियों के प्रभावों पर अलग–अलग प्रतिक्रिया दी है, विशेष रूप से आक्रमणकारियों की और इसने विभिन्न तत्वों को संरक्षित, अवशोषित और आत्मसात किया है और यही भारतीय संस्कृति और सभ्यता की सफलता का रहस्य है। इसकी विविधता के बावजूद, एक 'मौलिकएकता' है जो इसे अद्वितीय बनाती है। भारतीय संस्कृति के कई अलग–अलग हिस्सेहैं और प्रत्येक दूसरे के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है और इसमें गहनता से बुना हुआ मूल्य है। संस्कृति को संरक्षित और प्रसारित करने में परिवार आवश्यक हैं। यह परिवार में है कि बच्चा पहले अनुभव करता है और साझा करने, देखभाल करने, निःस्वार्थता, सहनशीलता के मूल्यों को अवशोषित करता है। एकता, निष्ठा, अखंडता अन्योन्याश्रय और दूसरों के लिए चिंता पर जोर देने के साथ एक भारतीय परिवार की प्रमुख विशेषताएं हैं। भारत में, भोजन का महत्व न केवल इसलिए है क्योंकि यह पौष्टिक है, बल्कि इसके लिए भगवान की ओर से एक उपहार है। कपड़े परंपरा, संस्कृति की विविधता से जुड़े होते हैं। भारत में राष्ट्रीय प्रतीक एकता, सच्चाई और देशभक्ति के प्रतीक हैं। राष्ट्रीय प्रतीक देश के लिए विशिष्ट हैं। शिक्षकों को सभी विषयों में पाठ्यक्रम में मूल्यों को एकीकृत करने के बारे में पता होना चाहिए।अक्सर हम अपने भीतर कई पूर्वाग्रहों या गलत धारणाओं को लेकर चलते हैं और यह नहीं सोचते कि ये सही हैं य गलत।

परिचय

''यदि आप दूसरों को सम्मान देते हैं, तो आपको बदले में दूसरों से सम्मान मिलेगा।''

मानवीय मूल्य मानव के आधार हैं। जैसा कि बच्चे देश का भविष्य हैं, कॉलेज और संस्थान मूल्य शिक्षा भी प्रदान कर रहे हैं। खुद को जानने और परतों को भेदने में समय लगता है, कंडीशनिंग हमारे असली खुद पर आने के लिए। इसमें मदद करने के लिए, मूल्य शिक्षा रास्ता दिखाती है और कुछ रोशनी डालने की कोशिश करती है। मानव मूल्य विश्वासों का प्रतिनिधित्व करते हैं कि ''अस्तित्व की एक विशिष्ट पद्धति आचरण या अंत की स्थिति है, आचरण के अंत या

स्थिति के विपरीत या विपरीत मोड के लिए व्यक्तिगत या सामाजिक रूप से बेहतर। इसमें एक न्यायिक तत्व होता है, जो सही, अच्छा या वांछनीय होता है, उसके बारे में एक व्यक्ति के विचार हैं। मूल्यों में सामग्री और तीव्रता दोनों विशेषताएं हैं। सामग्री विशेषता निर्दिष्ट करती है कि यह कितना महत्वपूर्ण है। जब हम उनकी तीव्रता के संदर्भ में एक व्यक्ति के मूल्यों को रैंक करें, हम उस व्यक्ति के मूल्य प्रणाली को प्राप्त करते हैं। यह व्यवस्था है स्वतंत्रता, आनंद, स्वाभिमान, ईमानदारी, आज्ञाकारिता और समानता जैसे मूल्यों को हम प्रदान करते हैं। हम हमेशा वही मानते हैं जो हम देखते हैं लेकिन व्यक्ति के दिल और स्वभाव को कभी नहीं समझते हैं। लक्ष्य संगठन की सफलता के लिए मानवीय मूल्यों के महत्व का विश्लेषण करना है। विधियों का विश्लेषण और तकनीक संगठन अपने कर्मचारियों को खुश रखने के लिए कर रहे हैं। जैसे मान मनुष्यों के लिए आधार हैं और वे संगठन जो कर्मचारियों और नियोक्ताओं के विवादों को कम करने के लिए मानव मूल्यों का ध्यान रखते हैं और उन्हें महत्व देते हैं। जैसे व्यक्ति के व्यक्तित्व और चरित्रों पर प्रभाव, उपलब्ध साहित्य प्रबंधन, प्रधानाचार्य, कर्मचारियों के लिए उपलब्ध साहित्य, प्रश्नावली आदि है। फिर व्यक्तिगत और समूह के आधार पर प्रश्नावली और साक्षात्कार के आधार पर अवलोकन, बाकी पर है व्यक्तिगत अनुभव।

''एक मूल्य एक संक्षिप्त है जिस पर एक व्यक्ति वरीयता से कार्य करता है।'' (गॉर्डन. डब्ल्यू. ऑलपोर्ट)

चूंकि यह बहुत बड़ा विषय है और साहित्य समीक्षा की खोज के समय मानव मूल्यों पर बहुत सारे काम किए गए थे। शिक्षा, मानवाधिकार, चिकित्सा, स्वास्थ्य, अर्थशास्त्र जैसे विभिन्न विषयों के साथ मानवीय मूल्यों पर शोध समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, शरीर विज्ञान राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। मानवीय मूल्य और संस्कृतियां न केवल भारत के लिए प्रासंगिक हैं, वे पूरे विश्व में प्रासंगिक हैं। इनमें से एक सबसे बड़ा पारिवारिक मूल्य है, जिसमें संपूर्ण ब्रह्मांड शामिल है। जिस क्षण परिवार के मूल्य आप में आते हैं, वह बहुत अधिक जिम्मेदार व्यक्ति बन जाता है। आप केवल अपने बारे में नहीं, बल्कि बड़े परिप्रेक्ष्य में, बड़े कैनवास पर सोचते हैं, और यही एक बेहतर इंसान बनाता है। याद रखें कि सभ्यता के संदर्भ में, यह वह धन नहीं है जो आप कमाते हैं, जिसे सम्मान मिलता है, यह अकेले ज्ञान नहीं है – केवल जब वे मूल्यों, मानवीय मूल्यों, दूसरों के लिए एकभावना के साथ संयुक्त होते हैं, तो क्या आप एक बेहतर व्यक्ति, एक बेहतर इंसान बन सकते हैं, और बेशक आप समाज द्वारा सम्मानित हैं। मैं यह समझने में असफल हूं कि लोग 'आधुनिक समाज' शब्द का उपयोग कब करते हैं। जब औद्योगिक क्रांति चल रही थी तो 17 वीं और 18 वीं शताब्दी में लोग क्या उपयोग कर रहे थे? क्या यह पूरी दुनिया, उसकी अर्थव्यवस्था, तकनीक और लोगों के एक–दूसरे को देखने के तरीके को नहीं बदल रहा था? क्या उन्होंने उस समय यह सवाल उठाया था कि क्या बदलती दुनिया में सामाजिक मूल्य और पारिवारिक मूल्य प्रासंगिक हैं? या नहीं। यह 20 वीं शताब्दी की समस्या है जब व्यक्तिवाद

की अवधारणा सामने आने लगी। यह वह धन नहीं है जो आप कमाते हैं जो सम्मान प्राप्त करता है, यह अकेले ज्ञान नहीं है – केवल जब वे मानवीय मूल्यों के साथ संयुक्त होते हैं तो आप एक बेहतर व्यक्ति बन जाते हैं, और निश्चित रूप से आप समाज द्वारा सम्मानित होते हैं।

भारतीय संस्कृति

सामूहिक रूप से भारत में मौजूद सभी धर्मों और समुदायों की हजारों विशिष्ट और अद्वितीय संस्कृतियों को संदर्भित करती है। भारत की भाषाएं, धर्म, नृत्य, संगीत, वास्तुकला, भोजन और रीति–रिवाज देश के भीतर जगह–जगह से भिन्न हैं। भारतीय संस्कृति, जिसे अक्सर कई संस्कृतियों के समामेलन के रूप में जाना जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप में फैली हुई है और कई सदियों पुराने एक इतिहास से प्रभावित है। भारत की विविध संस्कृतियों के कई तत्व, जैसे कि दर्शन, व्यंजन, भाषा, नृत्य, संगीत और फिल्में इंडोस्फियर, ग्रेटर इंडिया और दुनिया भर में गहरा प्रभाव डालते हैं।

1. धार्मिक संस्कृति

भारतीय मूल के धर्म हिंदू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिखधर्म, ये सभी धर्म और कर्म की अवधारणा पर आधारित हैं। अहिंसा, अहिंसा का एक दर्शन, मूल भारतीय विश्वासों का एक महत्वपूर्ण पहलू है जिसके सबसे प्रसिद्ध प्रस्तावक महात्मा गांधी थे, जिन्होंने सविनय अवज्ञा आंदोलन के माध्यम से ब्रिटिश राज के खिलाफ भारत को एक साथ लाया और इस दर्शन ने मार्टिन लूथर किंग, जूनियर को अमेरिकी नागरिक अधिकारों के लिए प्रेरित किया। विदेशी मूल का धर्म, जिसमें अब्राहमिक धर्म शामिल हैं, जैसे यहूदी धर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम, भारत में भी मौजूद हैं, साथ ही पारसी धर्म और बाहि आस्था दोनों ही उत्पीड़न से बच रहे हैं। इस्लाम ने भी सदियों से भारत में आश्रय पाया है।

भारत में विभिन्न संस्कृति वाले 29 राज्य हैं और दुनिया में दूसरा सबसे अधिक आबादी वाला देश है। भारतीय संस्कृति, जिसे अक्सर कई विभिन्न संस्कृतियों के समामेलन के रूप में जाना जाता है, भारतीय उपमहाद्वीप में फैली हुई है और कई हजार साल पुराने इतिहास से प्रभावित और आकार ले चुकी है। भारत के इतिहास में, भारतीय संस्कृति धर्मों से बहुत प्रभावित है। उन्हें भारतीय दर्शन, साहित्य, वास्तुकला, कला और संगीत के बहुत से आकार देने का श्रेय दिया गया है। भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर ग्रेटर इंडिया भारतीय संस्कृति की ऐतिहासिक सीमा थी। यह विशेष रूप से आम युग की प्रारंभिक शताब्दियों के दौरान यात्रियों और समुद्री व्यापारियों द्वारा सिल्क रोड के माध्यम से भारत से एशिया के अन्य भागों में हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, वास्तुकला, प्रशासन और लेखन प्रणाली के प्रसार की चिंता करता है। पश्चिम में, ग्रेटर इंडिया ग्रेटर फारस के साथ हिंदू कुश और पामीर पर्वत में फैला हुआ है। सदियों से, भारत में बौद्ध, हिंदू, मुस्लिम, जैन, सिख और विभिन्न जनजातीय आबादी के बीच संस्कृतियों का महत्वपूर्ण संलयन हुआ है।

भारत हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, सिख धर्म और अन्य धर्मों का जन्मस्थान है। उन्हें सामूहिक रूप से भारतीय धर्म के रूप में जाना जाता है। भारतीय धर्म अब्राहमिक लोगों के साथ–साथ विश्व धर्मों का एक प्रमुख रूप है। आज, हिंदू धर्म और बौद्ध धर्म क्रमशः दुनिया के तीसरे और चौथे सबसे बड़े धर्म हैं, जिनके कुल मिलाकर 2 बिलियन से अधिक अनुयायी हैं, और संभवतः 2.5 या 2.6 बिलियन से अधिक अनुयायी हैं। भारतीय धर्मों के अनुयायी – हिंदू, सिख, जैन और बौद्ध भारत की लगभग 2 प्रतिशत जनसंख्या हैं।

भारत दुनिया के सबसे धार्मिक और जातीय विविध देशों में से एक है, जिसमें कुछ सबसे गहरे धार्मिक समाज और संस्कृतियाँ हैं। धर्म अपने कई लोगों के जीवन में एक केंद्रीय और निश्चित भूमिका निभाता है। हालांकि भारत एक धर्मनिरपेक्ष हिंदू–बहुल देश है, लेकिन इसकी बड़ी मुस्लिम आबादी है। जम्मू और कश्मीर, पंजाब, मेघालय, नागालैंड, मिजोरम और लक्षद्वीप को छोड़कर, सभी 28 राज्यों और 9 केंद्र शासित प्रदेशों में हिंदू प्रमुख हैं। उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, केरल, तेलंगाना, आंध्र प्रदेश, पश्चिम बंगाल और असम में बड़ी आबादी के साथ मुसलमान पूरे भारत में मौजूद हैं, जबकि केवल जम्मू और कश्मीर और लक्षद्वीप में बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी है। सिख और ईसाई भारत के अन्य महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक हैं।

2011 की जनगणना के अनुसार, भारत की 79.8 प्रतिशत जनसंख्या हिंदू धर्म का पालन करती है। इस्लाम (14.2 प्रतिशत), ईसाई धर्म (2.3 प्रतिशत), सिख धर्म (1.7 प्रतिशत), बौद्ध धर्म (0.7 प्रतिशत) और जैन धर्म (0.4 प्रतिशत) भारत के लोगों के बाद आने वाले अन्य प्रमुख धर्म हैं। कई आदिवासी धर्म, जैसे कि सरनावाद, भारत में पाए जाते हैं, हालांकि ये हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म, इस्लाम और ईसाई धर्म जैसे प्रमुख धर्मों से प्रभावित हुए हैं। जैन धर्म, पारसी धर्म, यहूदी धर्म और बहाई धर्म भी प्रभावशाली हैं लेकिन उनकी संख्या कम है। नास्तिकता और अज्ञेयवाद का भारत में अन्य धर्मों के प्रति आत्म–सहिष्णु सहिष्णुता के साथ भी प्रभाव दिखाई देता है। प्यू रिसर्च सेंटर द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार, 2050 तक भारत में हिंदुओं और मुसलमानों की दुनिया की सबसे बड़ी आबादी होगी। भारत में लगभग 31 मिलियन मुस्लिमों की आबादी 19–20 प्रतिशत है और अभी भी 1.3 है। लगभग 76 प्रतिशत आबादी वाले भारत में अरब हिंदुओं के रहने का अनुमान है। नास्तिकता और अज्ञेयवाद का भारत में एक लंबा इतिहास है और Srama anda आंदोलन के भीतर पनपा है। Carvaka स्कूल 6 वीं शताब्दी ईसा पूर्व के आसपास भारत में उत्पन्न हुआ था। यह प्राचीन भारत में भौतिकवादी और नास्तिक आंदोलन के शुरुआती रूपों में से एक है। श्रमण, बौद्ध, जैन, अज्विका और हिंदू धर्म के कुछ स्कूल नास्तिकता को मान्य मानते हैं और रचनाकार देवता, कर्मकांड और अंधविश्वास की अवधारणा को अस्वीकार करते हैं। भारत ने कुछ उल्लेखनीय नास्तिक राजनेताओं और समाज सुधारकों का उत्पादन किया है। 2012 के विन–गैलप ग्लोबल इंडेक्स ऑफ रिलीजन एंड नास्तिक रिपोर्ट के अनुसार, 1 प्रतिशत भारतीय धार्मिक थे, 13 प्रतिशत धार्मिक नहीं थे।

भारतीय धर्मों ने भारतीय संस्कृति को आकार दिया है

सिख स्वर्ण मंदिर

बौद्ध महाबोधि मंदिर

हिंदू कंडारिया महादेव मंदिर

जैन पलिताना मंदिर

2. दर्शन

भारतीय दर्शन में भारतीय उपमहाद्वीप की दार्शनिक परंपराएं शामिल हैं। रूढ़िवादी हिंदू दर्शन के छह स्कूल हैं न्याय, वैशेषिका, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदांत और चार विषम विद्यालय– जैन, बौद्ध, अवजिका और कृतिका – अंतिम दो भी हिंदू धर्म के स्कूल हैं। हालांकि, वर्गीकरण के अन्य तरीके हैं, उदाहरण के लिए, विद्यारण्य भारतीय दर्शन के सोलह विद्यालयों की पहचान करता है, जिनम andaiva और Raseitionsvara परंपराएँ शामिल हैं। 1000 –1500) के बाद से, भारतीय दार्शनिक विचार के विद्यालयों को ब्राह्मणवादी परंपरा रूप में या तो रूढ़िवादी या गैर–रूढ़िवादी के रूप में वर्गीकृत किया गया है – यास्तिका या नासिका – वे इस संबंध पर निर्भर करते हैं वेद ज्ञान के अचूक स्रोत के रूप में। भारतीय दर्शन के मुख्य विद्यालयों को मुख्य रूप से 1000 ईसा पूर्व के बीच सामान्य युग की प्रारंभिक शताब्दियों के बीच औपचारिक रूप दिया गया था। दार्शनिक सर्वपल्ली राधाकृष्णन के अनुसार, इनमें से सबसे पहले, जो बाद के वैदिक काल (1000–500 ई.पू.) में उपनिषदों की रचना की तारीख है, ''दुनिया की सबसे प्रारंभिक दार्शनिक रचनाओं'' का गठन करते हैं। विभिन्न स्कूलों के बीच प्रतिस्पर्धा और एकीकरण उनके

प्रारंभिक वर्षों के दौरान तीव्र था, विशेष रूप से Compet ईसा पूर्व और 200 सीई के बीच। जैन धर्म, बौद्ध धर्म, और अद्वैत वेदांत जैसे कुछ स्कूल बच गए, लेकिन अन्य, जैसे सांख्य और andaiva, नहीं थे, उन्हें या तो आत्मसात कर लिया गया या वे विलुप्त हो गए। इसके बाद की शताब्दियों में 20 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध तक निरंतर टिप्पणियों और सुधारों का उत्पादन हुआ। पारंपरिक दर्शन को समकालीन अर्थ देने वाले लेखकों में श्रीमद राजचंद्र, स्वामी विवेकानंद, राम मोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती शामिल हैं

भारतीय दार्शनिक परंपराएँ

जैन दर्शन का प्रचार 24 तीर्थंकरों द्वारा किया गया था, बौद्ध दर्शन की स्थापना गौतम बुद्ध ने 563483 ईसा पूर्व में की।

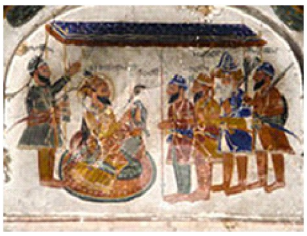

गुरु गोविंद सिंह (1666–1708 ईस्वी) गुरुग्रंथ साहिब में सिख दर्शन को रोशन किया गया था।

3. पारिवारिक संरचना और विवाह

पीढ़ियों से, भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली की प्रचलित परंपरा है। यह तब होता है जब एक परिवार के विस्तारित सदस्य – माता–पिता, बच्चे, बच्चों के पति/पत्नी और उनकी संतान, आदि – एक साथ रहते हैं। आमतौर पर, सबसे पुराने पुरुष सदस्य संयुक्त भारतीय परिवार प्रणाली में प्रमुख हैं। वह ज्यादातर सभी महत्वपूर्ण निर्णय और नियम बनाता है, और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा उनका पालन करने की संभावना है। 1966 के एक अध्ययन में, ओरेनस्टीन

और मिकलिन ने भारत के जनसंख्या डेटा और पारिवारिक संरचना का विश्लेषण किया। उनके अध्ययन से पता चलता है कि भारतीय घरेलू आकार 1911 से 1951 की अवधि के समान था। इसके बाद, शहरीकरण और आर्थिक विकास के साथ, भारत ने पारंपरिक संयुक्त परिवार को और अधिक परमाणु जैसे परिवारों में विभाजित किया है। सिन्हा ने अपनी पुस्तक में, भारतीय परिवार पर किए गए कई समाजशास्त्रीय अध्ययनों को संक्षेप में बताने के बाद, नोट किया है कि पिछले 60 वर्षों में, भारत के अधिकांश हिस्सों में सांस्कृतिक प्रवृत्ति संयुक्त परिवार से परमाणु तक एक त्वरित परिवर्तन हुआ है। परिवार, दुनिया के अन्य हिस्सों में जनसंख्या के रुझान की तरह। भारत में परंपरागत रूप से बड़े संयुक्त परिवार, 1990 के दशक में, भारतीय घरों का एक छोटा सा हिस्सा था, और औसतन प्रति व्यक्ति घरेलू आय कम थी। वह पाता है कि संयुक्त परिवार अभी भी कुछ क्षेत्रों में और कुछ स्थितियों में, सांस्कृतिक परंपराओं के कारण और कुछ हिस्सों में व्यावहारिक कारकों के कारण बना हुआ है। ग्रामीण और शहरी माता–पिता में अलग–अलग विचारधाराओं के कारण निम्न सामाजिक–आर्थिक वर्गों के युवा अपने साथियों के साथ अपने परिवार के साथ समय बिताने के लिए अधिक इच्छुक होते हैं। शिक्षा के प्रसार और अर्थशास्त्र के विकास के साथ, पारंपरिक संयुक्त परिवार प्रणाली पूरे भारत में तेजी से टूट रही है और कामकाजी महिलाओं के प्रति दृष्टिकोण बदल गया है। भारतीय समाज में अरक्षित विवाह लंबे समय से आदर्श रहे हैं। आज भी, अधिकांश भारतीयों की शादी उनके माता–पिता और अन्य सम्मानित परिवार के सदस्यों द्वारा की जाती है। अतीत में, शादी की उम्र युवा थी। भारत की 2011 की जनगणना के अनुसार, भारत में महिलाओं के लिए विवाह की औसत आयु 21वर्ष हो गई है। 2009 में, लगभग महिलाओं ने 1, साल की उम्र से पहले शादी कर ली।

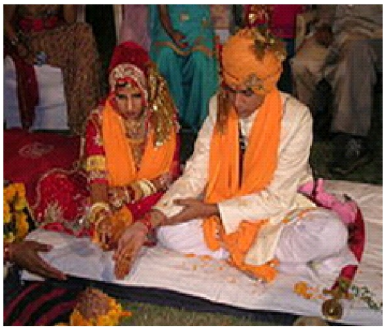

अधिकांश विवाहों में, दुल्हन का परिवार दूल्हे को दहेज प्रदान करता है। परंपरागत रूप से, दहेज को परिवार की संपत्ति का एक हिस्सा माना जाता था, क्योंकि एक बेटी का उसके

परिवार की अचल संपत्ति पर कोई कानूनी दावा नहीं था। इसमें आमतौर पर गहने और घरेलू सामान जैसे पोर्टेबल कीमती सामान शामिल होते हैं जो एक दुल्हन अपने पूरे जीवन में नियंत्रित कर सकती हैं। ऐतिहासिक रूप से, ज्यादातर परिवारों में पारिवारिक संपत्ति की विरासत पुरुष रेखा के नीचे से गुजरती है। 1956 से, भारतीय कानून पुरुषों और महिलाओं को कानूनी इच्छा के बिना विरासत के मामलों में समान मानते हैं। भारतीय विरासत और संपत्ति के उत्तराधिकार के लिए कानूनी इच्छा शक्ति का उपयोग कर रहे हैं, 2004 तक कानूनी इच्छा का उपयोग लगभग 20 प्रतिशत लोगों ने किया।

4 . भारत में त्योहार

भारत, एक बहु–सांस्कृतिक, बहु–जातीय और बहु–धार्मिक समाज होने के नाते, विभिन्न धर्मों की छुट्टियों और त्योहारों को मनाता है। भारत में तीन राष्ट्रीय अवकाश, स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस और गांधी जयंती, पूरे भारत में उत्साह के साथ मनाए जाते हैं। इसके अलावा, कई भारतीय राज्यों और क्षेत्रों में प्रचलित धार्मिक और भाषाई जनसांख्यिकी के आधार पर स्थानीय त्योहार हैं। लोकप्रिय धार्मिक त्योहारों में नवरात्रि, जन्माष्टमी, दिवाली, महा शिवरात्रि, गणेश चतुर्थी, दुर्गा पूजा, होली, रथ यात्रा, उगादि, वसंत पंचमी, रक्षाबंधन, और दशहरा के हिंदू त्योहार शामिल हैं। कई फसल त्योहार जैसे मकरसंक्रांति, सोहराई, पूसन, हॉर्नबिल, चापचर कुट, पोंगल, ओणम और राजा संक्रांति झूला उत्सव भी काफी लोकप्रिय हैं। भारतीय नव वर्ष का त्यौहार भारत के अलग–अलग हिस्सों में अलग–अलग समय में एक अनोखी शैली के साथ मनाया जाता है। उगादी, बिहू, गुढ़ी पड़वा, पुथंडु, वैशाखी, पोहेला बोइशाख, विशु और विशुवा संक्रांति भारत के विभिन्न हिस्सों का नव वर्ष त्योहार है।

भारत में कुछ त्योहारों को कई धर्मों द्वारा मनाया जाता है। उल्लेखनीय उदाहरणों में दिवाली शामिल है, जो देश भर के हिंदुओं, सिखों, बौद्धों और जैनियों द्वारा मनाई जाती है और बुद्ध पूर्णिमा, कृष्ण जन्माष्टमी, अंबेडकर जयंती बौद्धों और हिंदुओं द्वारा मनाई जाती है। सिख त्योहार, जैसे कि गुरुनानक जयंती, बैसाखी पंजाब और दिल्ली के सिखों और हिंदुओं द्वारा पूरे धूमधाम से मनाई जाती है, जहाँ दोनों समुदाय मिलकर बहुसंख्यक आबादी बनाते हैं। भारत की संस्कृति में रंगों को जोड़ते हुए, ड्री फेस्टिवल भारत के आदिवासी त्योहारों में से एक है, जो अरुणाचल प्रदेश की जीरो घाटी के अपटानियों द्वारा मनाया जाता है, जो भारत का सबसे पूर्वी राज्य है। भारत के पारसी समुदाय के बीच नवरुज सबसे महत्वपूर्ण त्योहार है।

5. भारतीय कला और वास्तुकला

पारंपरिक भारतीय कला और वास्तुकला की अपनी विशिष्ट विशेषताएं हैं, लेकिन यह भी कई विदेशी प्रभावों के आत्मसात और अवशोषण से समृद्ध रहा है। बौद्ध अजंता और एलोरा

पेंटिंग प्राचीन काल के भारतीय कला के सबसे शुरुआती जीवित उदाहरण हैं। मधुबनी पेंटिंग, मैसूर पेंटिंग, राजपूत पेंटिंग, तंजौर चित्रकला, क्षेत्रीय कला की विभिन्न शैलियाँ हैं।

6. संगीत और नृत्य

संगीत और नृत्य कई प्रकार के होते हैं, यह क्षेत्र पर निर्भर करते हैं, फिर भी ये एकता का निर्माण करते हैं। वे त्योहारों के उत्सव का एक अभिन्न अंग हैं और गैर–धमकी भरे तरीके से लोगों को साथ लाते हैं। वे सौंदर्य के लिए अपील करते हैं। बचपन से, माताएं बच्चों को संगीत से परिचित होने के लिए प्रोत्साहित करती हैं और अपने स्वयं के क्षेत्र में नृत्य और एक साथ संगीत और नृत्य का सम्मान करते हैं अन्य क्षेत्रों के भी। भारतीय संगीत और नृत्य को (क) शास्त्रीय (ख) लोक और (ग) लोकप्रिय के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। नाटक और रंगमंच संगीत और नृत्य के साथ निकटता से जुड़ा हुआ है।

मानवीय मूल्यों की आवश्यकता

मूल्य ऐसी मान्यताएं हैं जो धारक के लिए उपयोगिता या महत्व में निहित हैं, ''या'' सिद्धांत, मानक या गुण सार्थक या वांछनीय हैं। '' मूल्य आत्म–अवधारणा की एक महत्वपूर्ण विशेषता संस्थान और व्यक्ति के लिए पर्यवेक्षी सिद्धांतों के रूप में सेवा करते हैं। आज के समाज जगत में मानवीय मूल्यों की आवश्यकता है। मानवीय मूल्य वे विशेषताएं हैं जो लोगों को मानवीय तत्व को ध्यान में रखने के लिए मार्गदर्शन करती हैं जब कोई अन्य मानव के साथ बातचीत करता है। उनके पास कई सकारात्मक चरित्र हैं जो लोगों के बीच मानवता के बंधन बनाते हैं और इस प्रकार सभी मनुष्यों के लिए मूल्य रखते हैं। वे दूसरे के मानवीय सार के लिए मजबूत सकारात्मक भावनाएं हैं। इन मानवीय मूल्यों पर बंधन, आराम, आश्वासन और शांति की खरीद का प्रभाव है। मानव मूल्य समाज के भीतर किसी भी व्यावहारिक जीवन का आधार है। वे एक ड्राइव के लिए जगह बनाते हैं, एक दूसरे की ओर एक आंदोलन, जो शांति की ओर जाता है। सरल शब्दों में, मानवीय मूल्यों को सार्वभौमिक के रूप में वर्णित किया जाता है और सभी मनुष्यों द्वारा साझा किया जाता है, चाहे उनका धर्म, उनकी राष्ट्रीयता, उनकी संस्कृति और उनका व्यक्तिगत इतिहास। स्वभाव से, वे दूसरों के लिए विचार करने के लिए राजी हैं। इस प्रकार, न्यू होराइजन कॉलेज में मानवीय मूल्यों को पाठ्यक्रम और कार्यक्रमों के रूप में छात्रों के भीतर विकसित किया जाता है। भारतीय मूल्य भारतीय संस्कृति में गहराई से निहित हैं। पिछले 5000 वर्षों में भारतीय संस्कृति ने अलग–अलग प्रभावों के लिए अलग–अलग प्रतिक्रिया दी है और इसे संरक्षित किया है, विभिन्न संस्कृतियों से अवशोषित और आत्मसात किए गए तत्व और ''यह रहस्य है भारतीय संस्कृति और सभ्यता की सफलता '', (राधाकृष्णन, 1929)। भारतीय अत्यधिक विकसित होने के साथ, सभ्यता को BC2800 के रूप में जल्दी पता लगाया जा सकता है, शहरी हड़प्पा सभ्यता, उसके बाद ग्रामीण आधारित आर्य सभ्यता। यूनानियों, शक, कुषाणों, हूणों, की सभ्यताओं के विदेशी

आक्रमण गुप्तकाल, प्राचीन काल में मौर्य, 8 शताब्दी ईस्वी का अरब आक्रमण सल्तनत, ''महान के भारतीय मुस्लिम सभ्यता के उच्च फूल मध्यकाल में मुगल ''(बाशम, 2007) और'' पश्चिमी की पूरी ताकत प्रभाव ''(बाशम, 2007) आधुनिक काल में ब्रिटिश शासन के दौरान सभी के पास है भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया। इस आत्मसात और अवशोषण में देखा जा सकता है देश का धर्म, कला, वास्तुकला, भाषा और विभिन्न जीवन शैली। कला में और वास्तुकला, बौद्धों पर यूनानी शैली के प्रभाव का सबसे अच्छा उदाहरण है विषय था गंधार कला विद्यालय। भारत–इस्लामी संश्लेषण को देखा जा सकता है, कला के विभिन्न क्षेत्रीय स्कूलों जैसे कांगड़ा, डेक्कन और मोगुल में चित्रकला की शैली और वास्तुकला में भी। भारतीय भाषा, उर्दू और फारसी प्रभाव का परिणाम है (श्रीवास्तव (2009) के अनुसार)।

भारतीय जीवन और संस्कृति की अन्य सभ्यताओं से भारतीयों में यह विचार पैदा होता है कि पूरी दुनिया एक परिवार है: 'वसुधैव कुटुम्बकम'। सार्वभौमिक का मूल्य इस तरह भाईचारे का पोषण हुआ है। भाषाई, धार्मिक विविधता है जो 'मौलिक एकता' (स्मिथ, 1981) के साथ एक साथ सह–अस्तित्व में है और यह अद्वितीय बनाता है। विभिन्न धर्मों, भाषाओं के उपसंस्कृति हो सकते हैं लेकिन एक राष्ट्रीय संस्कृति है जो भारतीय संस्कृति है जिसने प्रभावित किया है एशिया, दक्षिण–पूर्व एशिया और दुनिया के कई अन्य हिस्सों में।

निष्कर्ष

कर्तव्य–प्रथम मूल्य प्रणाली भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण सकारात्मक पहलू है जिसे उजागर करने की आवश्यकता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रतिनिधि सरकार के इस आधुनिक युग में और नियम कानून, सरकार और उसकी एजेंसियों को अपने कर्तव्यों को अच्छी तरह और ईमानदारी से निभाना चाहिए ताकि नागरिक अपने अधिकारों का आनंद ले सकें। प्राचीन काल में राजा के कर्तव्यों के उदाहरण को उन संस्थाओं और व्यक्तियों की जिम्मेदारियों को उजागर करने के लिए उद्धृत किया जाना चाहिए जिन्हें शासन का कार्य सौंपा गया है। पहले के राजशाही चरण और जाति व्यवस्था का एक अन्य पहलू यह था कि धर्म का गैर–प्रदर्शन डंडा (सजा) के साथ था। आज के संदर्भ में यह अदालतें हैं जो प्रहरी के रूप में कार्य करती हैं और अन्य एजेंसियों – कार्यपालिका और विधायिका को अपने कर्तव्यों का पालन करने के लिए मजबूर करती हैं। सामाजिक व्यवस्था के हिंदू दृष्टिकोण को चुनौती देने वाली रूढ़िवादी परंपरा ने हमेशा मनुष्यों की समानता और अन्य मूल्यों जैसे दया, अहिंसा, सहिष्णुता, मानव गरिमा, आदि पर प्रकाश डाला है। युवा भारतीयों को रवींद्रनाथ के बारे में याद दिलाया जाना चाहिए। टैगोर ने कहा:''सक, हूण, पठान और मुगल सभी एक शरीर में विलीन हो गए हैं।''आज के भारत में, जो धार्मिक और सांप्रदायिक मतभेदों में विभाजित है, मानवाधिकार आंदोलन का एक मौलिक कर्तव्य (इसमें गैर–सरकारी और सरकारी दोनों एजेंसियों को शामिल किया जाना चाहिए) विभिन्न विश्वास और सांप्रदायिक आंदोलनों के साथ एक संवाद में प्रवेश करना नकारात्मक

स्तर पर, तीन क्षेत्रों पर ध्यान दिया जाना चाहिए: भारत की संस्कृति में महिलाओं की जगह और स्थितिय जाति की विचारधारा और अस्पृश्यता, और गरीबी, अज्ञानता और अशिक्षा की बुराइयों। मानव अधिकारों की संस्कृति एकतरफा तरीके से नहीं पनप सकती है। किसी के पास सिर्फ अधिकार नहीं हो सकते हैं और समाज के प्रति कोई कर्तव्य और जिम्मेदारियां नहीं हैं। इसी प्रकार समाज के बोझ के प्रति जिम्मेदारियों को निभाते हुए किसी से भी उम्मीद नहीं की जानी चाहिए। वासुदेव कुटुम्बकुम "यानी पूरी दुनिया एक परिवार की तरह है। यह मानवता है जो मानवीय मूल्यों से संबंधित है और मूल्यों को भी महत्व देती है। हमारे देश में ऐसा क्यों है ''विविधता में एकता'' है। मानवीय मूल्यों के बारे में जानने के लिए मानव और मूल्यों का अर्थ जानना आवश्यक है। संगठन शांति, सम्मान और बेहतर संबंधों को बनाए रखने के लिए इस मानव मूल्यों पर जोर दे रहे हैं। कई गैर सरकारी संगठन इन क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। बेहतर कार्य प्रगति के लिए संगठन मानव को जैम्स मानते हैं और उनके मूल्यों को महत्व देते हैं। हम दुनिया से शुरू करते हैं जब भगवान ने इस दुनिया को बनाया तो उन्होंने शांति और मानवता का संदेश फैलाया। हर धर्म उसी की बात करता है। गैर सरकारी संगठन UNICHEF, UNO, मानवाधिकार की तरह है संगठन और दूसरों की तरह उनका मुख्य उद्देश्य मानवता के माध्यम से शांति बनाए रखना है। पूरी दुनिया मेंसरकारी और गैर सरकारी संगठन अपनी बैठकों के लिए एक ही एजेंडा रखते हैं। भारत में हम मानवता के बहुत सारे उदाहरण देख सकते हैं क्योंकि प्रत्येक धर्म प्रत्येक त्योहार को एक साथ मनाता है। में अब स्कूल और कॉलेज भी हर त्योहार मनाते हैं ताकि बच्चे अपनी संस्कृति और त्योहारों के बारे में जान सकें और इसके पीछे के संदेश को जानिए जो प्रेम, शांति और मानवता का है जो भाईचारे का संदेश देता है। दुनिया में कहीं भी केवल भारत जैसी मानवता की संस्कृति नहीं देखी जा सकती है।

संदर्भ

1. *झरियाश्रीमती बबीता,रायपुर के निजी संस्थानों में मानव मूल्यों का महत्व, छत्तीसगढ़, भारत, इंजीनियरिंग विज्ञान आविष्कार के अंतर्राष्ट्रीय ISSN (ऑनलाइन): 2319 – 6734, ISSN (प्रिंट): 2319 – 6726*
2. *चटर्जी समीर, प्रबंधन के प्रोफेसर, कर्टिन प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, बेंटले, पश्चिमी ऑस्ट्रेलियाय Cecil-AI, पियर्सन,*
3. *राजपूत.जेएस, मानव मूल्य शिक्षा, प्रागुन प्रकाशक।*
4. *ब्रोनोवस्की.जे– उच्च शिक्षा त्रैमासिक, 1956य विज्ञान और मानव मूल्यों, विली ऑनलाइन पुस्तकालय।*
5. *GOOGLE, भारतीय संस्कृति और मानव मान पेज 3[6]-http%//newhorizoncollege-in/human&valuesprofessional&ethics/*
6. *Wikkipidea*

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

डॉ. कुलदीप चौधरी
असिस्टेंट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान
श्री गुलाब सिंह राजकीय महाविद्यालय चकराता, देहरादून

येषां न विद्या न तपो न दानं, ज्ञानं न शीलंगुणों न धर्मः।
तेममृत्युलोकेभुविभारभूता, मनुष्य रूपेणममृगाश्चरन्ति ।।

अर्थात जिस मनुष्य ने किसी भी प्रकार से शिक्षा का अध्ययन नहीं किया, न ही उसने व्रत और तप किया, थोड़ा बहुत अन्न, वस्त्र, धन या विद्या दान नहीं दिया, न ही उसमें किसी प्रकार का ज्ञान है, न शील है न गुण है न धर्म है। ऐसे मनुष्य इस धरती पर भार होते हैं। मनुष्य रूप में होते हुए भी पशु के समान जीवन व्यतीत करते हैं।

शिक्षा अंधकार से प्रकाश की ओर मानव यात्रा का नाम है। शिक्षा एक ऐसा माध्यम है जिसके द्वारा मनुष्य के अंतःकरण के द्वार खुल जाते हैं और मानव को परम आलौकिक प्रकाश की प्राप्ति होती है। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के उत्थान में जो उन्नति जिस कारण से होती है वह उस राष्ट्र अथवा समाज की शिक्षा के फलस्वरूप होती है। हमारे देश की पवित्र भूमि पर अनेकों महान ऋषियों, विद्वानों, संतों एवं महापुरूषों का जन्म हुआ। इन्हीं महान पुरूषों में महर्षि विश्वामित्र, महर्षि सन्दीपन, आचार्य चाणक्य, महात्मा गांधी, स्वामी विवेकानन्द, महर्षि दयानन्द, सर्वपल्ली डॉ राधा कृष्णन् इत्यादि प्रमुख हैं। इन्हीं महान पुरूषों की शिक्षा से अनेकों साधारण व्यक्ति जैसे राम, कृष्ण, चन्द्रगुप्त मौर्य, सम्राट अशोक आदि राष्ट्र नायक बने।अतः स्पष्ट है कि शिक्षा के बिना किसी भी राष्ट्र एवं समाज की उन्नति होना असम्भव है।

शिक्षा के सम्बन्ध में गांधी जी की बात करें तो विश्व के लोग महात्मा गांधी को महान राजनीतिज्ञ एवं समाज सुधारक के रूप में जानते हैं किन्तु शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी का अतुलनीय योगदान रहा है, क्योंकि महात्मा गांधी जी का मत था कि बिना शिक्षा के समाज की उन्नति होना असम्भव है। गांधीजी जीवन भर शोषित, पिछड़े एवं अछूतोद्धार हेतु जीवन भर संघर्ष करते रहे। महात्मा गांधी का मूलमन्त्र था "शोषित विहीन समाज की स्थापना करना"। गांधी जी मानते थे कि ऐसा तभी सम्भव है जब कि समाज का प्रत्येक वर्ग शिक्षित हो। गांधीजी के द्वारा जिन शिक्षा सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी वह प्रारम्भिक शिक्षा योजना उनके शिक्षा दर्शन का मुर्त रूप है। गांधीजी का शिक्षा दर्शन उन्हें एक शिक्षा शास्त्री के रूप में दर्शाता है। महात्मा गांधीजी कहते थे कि मेरे प्रिय भारत में सभी बच्चों को 3H की शिक्षा अर्थात Head, Hand, Heart देनी आवश्यक है।गांधीजी के अनुसार शिक्षा एक ऐसा अस्त्र है जिसके माध्यम से बच्चे स्वावलम्बी बने और

भारत देश को मजबूत बनाने में अपना योगदान दे सकें। महात्मा गांधी ने शिक्षा को 'द ब्यूटीफुलट्री' की संज्ञा दी। इसका कारण यह था कि गांधीजी ने भारत की शिक्षा के बारे में जो कुछ पढ़ा था, उससे यह पाया कि भारत में शिक्षा संस्कारों के बजाय समाज के अधीन थी। गांधीजी एक ऐसी शिक्षा पद्धति को चाहते थे जिससे नवीन पीढ़ी में चरित्र निर्माण हो सके। गांधीजी से एक बार पूछा गया कि आपकी शिक्षा का उद्देश्य क्या है उन्होंने उत्तर दिया—चरित्र निर्माण। वह कहते थे कि वर्तमान शिक्षा हमें सबकुछ सिखाती है, पर हमारे आन्तरिक अस्तित्व से परिचय नहीं करवाती। हम नहीं जानते कि हम अपनी इच्छाओं एवं स्वार्थों के कितने अधीन हैं। हम दूसरों की सेवा करने से अधिक महत्व अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति को देते हैं क्योंकि हमारे पास अच्छाई एवं बुराई के बीच में अन्तर करने की समझ नहीं है। अतः सूचना एकत्र करना शिक्षा का उद्देश्य नहीं है, बल्कि मानवीय बदला वही इसका लक्ष्य हो सकता है। अतः यह आवश्यक है कि शिक्षा इस प्रकार की हो जिससे मानव का चरित्र निर्माण हो सके।

स्वामी विवेकानन्द भारत की वर्तमान एवं भविष्य में आने वाली परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वर्तमान शिक्षा प्रणाली में अत्यधिक परिवर्तन की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि दूषित प्रणाली के माध्यम से आज का शिक्षित युवा पिता, पूर्वजों, इतिहास और अपनी संस्कृति से घृणा करना सीखता है, वह अपने प्राचीन वेदों, पुराणों एवं पवित्र पुस्तकों को गलत मानने लगता है। स्वामी विवेकानन्द मानते थे कि इस शिक्षा प्रणाली से व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में कोई सहयोग नहीं हो रहा है। उनका मानना था कि ऐसी शिक्षा का क्या महत्व है जो युवा पीढ़ी को गलत मार्ग दिखाये। स्वामी विवेकानन्द ने कहा था कि शिक्षा के लिए जरूरी है एकाग्रता और एकाग्रता के लिये जरूरी है ध्यान, ध्यान से ही हम इन्द्रियों पर संयम रखकर एकाग्रता प्राप्त कर सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द ने युवाओं से कहा कि उठो और जागो और तब तक नहीं रूको जब तक तुम अपना लक्ष्य प्राप्त नहीं कर लेते।

वर्तमान समय शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों में बहुत बदलाव आ चुका है और इसका प्रभाव यह हुआ है एक शिक्षा प्राप्त व्यक्ति दान की भावना के स्थान पर शिक्षा को मात्र जीवन की वृत्ति समझने लगा है और परिणामस्वरूप शिक्षार्थी शिक्षकको श्रद्धा पूर्णदृष्टि से नहीं देखता। इसका प्रभाव वर्तमान समय में अध्यापक और विद्यार्थी के बीच के पवित्र सम्बन्धों पर भी पड़ा है। आज के समय में अध्यापक दान का विनिमय कुछ चांदी के सिक्कों के रूप में चाहता है और इस प्रकार से अध्यापक वेतनभोगी बनकर रह गया है। इसका परिणाम पूर्ण हानि हुआ और नित्य प्रति हमारे समाज में उच्चकोटी के मूल्यों का पतन होने लगा। कागज के उस टुकड़े ने शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच एक दूषित वातावरण पैदा कर दिया है। अब ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षक छात्रों के मध्य आकर्षण का केन्द्र न होकर समाज द्वारा उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा है।

जो भारत, शिक्षा के कारण विश्व में सर्वोच्च स्थान पर विराजमान था उसी भारत में आज के शिक्षा का स्तर मानवीय मूल्यों की दृष्टि से गिरा हुआ प्रतीत होता है क्योंकि अध्यापक और

छात्र के मध्य धन का स्थान है, महान मानवता का नहीं। जब हम अपनी शिक्षा संस्कृति और सभ्यता को ही भूल गये तो हमारे देश में अशिक्षा का अंधकार फैल गया और हम पथभ्रष्ट होकर अनादर का पात्र बन गयेतथा हमारा कार्य भी व्यापार बन गया किन्तु वास्तव में अध्यापन एक उच्च प्रकार की समाज सेवा है जिसके आधार पर किसी देश की सभ्यता और संस्कृति फूलती और फलती है।

भारतवासी अपने उच्च आदर्श को भूलकर पथ से हट गये हैं। वे भूल गये हैं कि उनके विश्वगुरू का स्थान प्राप्तकरने का कारण उच्च कोटि की शिक्षा ही थी क्योंकी वह शिक्षा उच्च संस्कारों से परिपूर्ण थी। अध्यापक का स्थान सर्वोच्च था। महाराजा राम को मर्यादा पुरूषोत्तम बनाने का सम्पूर्ण श्रेय महर्षि विश्वामित्र को है। श्रीकृष्ण को राजनीति का महान पंडित महर्षि संदीपनि ने बनाया। सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को स्वर्ण युग का चक्रवर्ती सम्राट बना देने वाले महान राजनीतिज्ञ चाणक्य थे। महाराजा शिवाजी को स्वराज्य की स्थापना का मंत्र अपने समर्थ गुरू रामदास से मिला। नरेन्द्र को विवेकानन्द बनाने का श्रेय स्वामी रामकृष्ण परमहंस को है। अपने आरम्भ के जीवन में नरेन्द्र साधारण विद्यार्थी थे किन्तु स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने अपनी शिक्षा के प्रभाव द्वारा उन्हें कर्म योगी महापुरूष बना दिया। जिसके द्वारा भारतीय संस्कृति का दिव्य संदेश समस्त विश्व में प्रचार कर अपने राष्ट् के मस्तक को अत्यन्त ऊँचा किया।

यह सत्य है कि शिक्षक पर शिक्षा का उत्तरदायित्व है तथा आदर्श शिक्षक अपने ज्ञान और व्यवहार द्वारा अपने विद्यार्थियों को प्रभावित करता है। विद्यार्थी की बुद्धि अत्यन्त कोमल होती है। वह अपने शिक्षक के विचारों का सरलता से अनुकरण करके अपनेसंस्कारों का निर्माण करता रहता है। अतः अध्यापक को अपने व्यवहार में सदैव सतर्क रहना आवश्यक है। एक शिक्षक को शिक्षा के द्वारा अपने विद्यार्थी के सम्मुख सुन्दर एवं उच्च आदर्श उपस्थित करने चाहिये। अध्यापक ऐसी शिक्षा प्रदान करे जो किसी शिक्षार्थी के चरित्र को उच्चकोटि का बनाये। विद्यार्थी का सबसे मूल्यवान गुण उसका चरित्र है। संसार में सर्वोत्तम शिक्षा उसी के द्वारा होती है जिसका चरित्र महान होता है। सहनशीलता सफल शिक्षित व्यक्ति का आभूषण है।जो थोड़ी सी बात पर क्रोधित हो जाता है उसके शिक्षित होने का लाभ नहीं है। अभिमान शून्यता, सहानुभूति और प्रसन्नचित रहना आदर्श व्यक्तित्व के लक्षण हैं।

हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली को दूषित होने से बचाने का उत्तरदायित्व मात्र अध्यापकों पर ही है। जब तक हमारे देश के अध्यापकों में आदर्श व्यवहार की ओर झुकाव नहीं होगा और वे स्वार्थपरता को त्यागकर अपने कार्य को परम कर्त्तव्य समझकर समाज के सामने नहीं आयेंगे तब तक देश का भविष्य उज्जवल होने में नितान्त संदेह है। शिक्षक शिक्षा के माध्यम से आदर्श को प्रस्तुत करे । शिक्षा का उद्देश्य केवल धन का अर्जन करना नहीं बल्कि एक सशक्त राष्ट्र का निर्माण करना है। अध्यापक छात्रों में उच्च मानवीय मूल्यों का संचार करते हैं और अच्छी शिक्षा के माध्यम से एक बेहतर समाज का निर्माण किया जा सकता है एवं उच्च मानवीय मूल्यों

की स्थापना की जा सकती है। अतः इस उद्देश्य हेतु शिक्षक को आगे आना होगा क्योंकि शिक्षक ही राष्ट्र निर्माता है और शिक्षा ही राष्ट्र की रीढ़ है। शिक्षा ही राष्ट्र की वह अनूठी शक्ति है जिसके द्वारा राष्ट का निर्माण, राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। शिक्षा प्राप्त करने का लक्ष्य केवल सम्पत्ति अर्जन करना नहीं है बल्कि अखण्ड राष्ट्र भक्ति से ओत–प्रोत चरित्रवान विद्यार्थियों का निर्माण करना है।

संदर्भ

1. *वर्मा वी0 पी0, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा*
2. *मशरूवाला किशोर लाल, गांधीविचार–दोहन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रका0 दिल्ली*
3. *मिश्रा अनिल दत्ता, जर्नल ऑफ गांधियन स्टडीज, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली।*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

आधुनिक शिक्षा और मूल्यो पर मीडिया का प्रभाव

माणिक रस्तोगी[1], संजय प्रसाद[2]
[1]असिसटेंट प्रोफेसर
राजकीय रजा पी.जी. कॉलेज, रामपुर
[2]बीएड प्रथम वर्ष, राजकीय रजा पी.जी. कॉलेज, रामपुर

शिक्षा एक ऐसा साधन है जो मानव को प्राणी जगत के अन्य जीवों से पृथक करती हैं। शिक्षा का मानव जीवन में काफी महत्व है। शिक्षा के बिना मानव पशु के समान है। शिक्षा मानव को एक सामाजिक प्राणी बनाकर सांस्कृतिक धरोहर को आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरिक करने के योग्य बनाती है। शिक्षा से ही मानव का संर्वागीण विकास होता हैं। शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा के ''शिक्ष'' धातु से बना है। जिसका अर्थ होता हैं सीखना या सिखाना। पेस्टालॉजी के अनुसार ''शिक्षा बालक की जन्मजात शक्तियों का स्वाभाविक, समन्वित एवं प्रगतिशील विकास हैं।

व्यक्ति जिस समाज मे रहता हैं उसमे मूल्य वांछनीय, महत्वपूर्ण एवं आदरपूर्ण होते हैं। मूल्य व्यक्ति के अभिवृत्ति, निर्णय, चयन, व्यवहार तथा सम्बन्धों एवं यहां तक कि व्यक्ति के दृष्टिकोण एवं उसकी सोच को प्रतिबिम्बित करता है। मूल्यों से हमारे चिन्तन, भावनाओं एवं क्रियाओं का निर्धारण होता है। वस्तुतः मूल्य हमारे जीवन में सही कार्य करने के लिए पथ–प्रदर्शक होते हैं। मूल्य एक मानक शब्द है। अमूर्त सम्प्रत्यय हैं इसका संबध मनुष्य के भावनात्मक पक्ष से होता है जो उसके व्यवहार को नियंत्रित एवं निर्देशित करता है। कलुकहान के अनुसार ''व्यक्ति एवं संस्कृति के ढाँचे के अन्दर मूल्य पहले के या बाल्यवस्था के समाजीकरण का परिणाम होता हैं।''

आधुनिक युग की सबसे बड़ी समस्या मानवीय मूल्यों के ह्रास के रूप में देखी जा रही है। इसलिए हमारी शिक्षा व्यवस्था में मूल्य शिक्षा का समावेश अत्यन्त आवश्यक है। मूल्य के विकास में विद्यालय का दृष्टिकोण, उसकी आतंरिक व्यवस्था, शिक्षाकों का आदर्श आपसी सहयोग, बच्चो के प्रति भावनाओ आदि का महत्व है। मूल्यों की शिक्षा में विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है।

वर्तमान शिक्षा भावनात्मक उदारता और वैचारिक सहिष्णुता विकसित करने में प्रभावी भूमिका कम ही निभा पा रही है, इसका परिणाम संघर्ष और असंतुलन के रूप में सामने आ रहा है। अतः मूल्य आधारित शिक्षा ही व्यक्तित्व के सर्वतोन्मुखी विकास में सहायक हो सकती है।

संचार माध्यम (मीडिया) को लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ कहा जाता है। किसी भी देश की उन्नति व प्रगति में मीडिया का बहुत बड़ा हाथ होता है। संचार माध्यम समाज का निर्माण एवं पुनः निर्माण करता है। आधुनिक युग में संचार माध्यम का सामान्य अर्थ समाचार पत्र, पत्रिकाओं, टेलीविजन, रेडियो, इण्टरनेट आदि से लिया जाता है। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा समाचार पत्र का बाजार है। प्रतिदिन 10 करोड़ प्रतियां बिकती हैं। मानवीय मूल्यो को विकसित करने में संचार माध्यम का बहुत बड़ा योगदान होता हैं।

संचार माध्यम को निम्न भागो में बांटा जा सकता हैः—

1. मुद्रण माध्यम
2. इलेक्ट्रॉनिक माध्यम
3. कम्प्यूटर माध्यम

मुद्रण माध्यम के अन्तर्गत टेलीविजन, रेडियो, सिनेमा, समाचार पत्र, पत्रिकाएं तथा इंटरनेट आदि हैं। अधिकांश मुद्रण माध्यम निजी हाथो में हैं और बड़ी—बड़ी कम्पनियो द्वारा नियन्त्रित हैं। भारत में 70,000 से अधिक समाचार पत्र हैं। आज भारत विश्व का सबसे बड़ा समाचार पत्र का बाजार है। प्रतिदिन 10 करोड़ प्रतियां बिकती हैं। समाचार पत्र या अखबार समाचारो पर आधारित एक प्रकाशन हैं। अधिकतर समाचार—पत्र स्थानीय भाषाओं और स्थानीय विषयों पर केन्द्रित होते हैं।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यम, तकनीकी शिक्षा के लिए शैक्षणिक सामग्री विकास हेतु एक प्रमुख केन्द्र हैं। एक समय ऐसा था, जब छात्र अपनी परीक्षा परिणाम जानने के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान पर भटकते रहते थे तथापि पिछले 10 वर्षों से परीक्षा के परिणाम इंटरनेट पर आसानी से देखे जा सकते हैं। ई—अधिगम्यता इलेक्ट्रॉनिक माध्यम पर आधारित है जिसमें छात्र कहीं भी कम्प्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से पढ़ाई कर सकता है। आईसीटी सूचना और संचार प्रौद्योगिकी इस तकनीक में शामिल हैं। आज विकासशील देशो का सामना करने वाली कई चुनौतियों में से यह एक तकनीक हैं और वैश्वीकरण, सूचना और संचार क्रान्ति के लिए सरकार निति निर्माताओं, शिक्षाविदो, गैर—सरकारी संगठनो और आम नागरिको की आवश्यकता के सम्बन्ध में चिंतित हैं। अपने समाज को आकस्मिक सूचना अर्थव्यवस्था में प्रतिस्पर्धी बनाने में वैश्वीकरण और नवाचार प्रौद्योगिकी ने सभी क्षेत्रों में आईसीटी के बढ़ते उपयोग को प्रेरित किया है और इसमें शिक्षा भी शामिल हैं। इसमें आईसीटी का उपयोग शिक्षा के लिए व्यापक हैं और दुनिया भर में लगातार बढ़ रहा है। शिक्षक और शिक्षार्थियों को सशक्त बनाने, सीखने और उसकी उपलब्धियों में सूचना प्रौद्योगिकी को महत्वपूर्ण बनाने में बहुत योगदान दिया गया है।

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सहायत से छात्र अब ई—पुस्तकें, परीक्षा के नमूने वाले प्रश्न—पत्र पिछले वर्षों के प्रश्न—पत्र आदि देखने के साथ संसाधन व्यक्तियों, मेंटोर, विशेषज्ञों,

शोधकर्ताओं, व्यवसायियों और साथियो से दुनिया के किसी भी कोने पर अपनी आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं। किसी भी समय कहीं भी सूचना और संचार प्रौद्योगिकी की सर्वाधिक अनोखी विशेषता यह है कि इसे समय और संस्थान में समायोजित किया जा सकता हैं इसे ध्यान में रखते हुए सूचना और संचार प्रौद्योगिकी ने असम्मिलित अधिगम्यता (डिजिटल अधिगम्यता) को संभव बनाया है। अब छात्र किसी भी समय अपनी सुविधानुसार ऑनलाईन अध्ययन पाठ्यक्रम सामग्री को पढ़ सकते हैं। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी आधारित शिक्षा आपूर्ति (रेडियो और टेलीविजन पर शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण) से भी सीखने वाले और अनुदेशक को एक भौतिक स्थान पर होने की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

जब से सूचना और संचार प्रौद्योगिक को एक शिक्षण माध्यम से एक रूप में उपयोग किया गया है। इसने एक त्रुटिहीन प्रेरक साधन के रूप में कार्य किया है। इसमें वीडियो, टेलीविजन, मल्टीमीडिया, कम्प्यूटर सॉफ्टवेयर का उपयोग शामिल हैं जिसमें ध्वनि और रंग निहित हैं। इससे छात्र सीखने की प्रक्रिया में गहराई से जुड़ते हैं।

जैसे–जैसे समय आगे बढ़ता है, दिन छोटे लगने लगते हैं। 24 घण्टे उन सभी लक्ष्यों के लिए कम लगते हैं जो हम पूरा करना चाहते हैं तथा एक साथ बहुत सारे कार्य पूरा करना जीवन का तरीका बन जाता है। हममें अनेक लोग अपनी शिक्षा जारी रखना चाहते हैं किन्तु समय की सीमाओं के कारण पढ़ाई जारी रखना कठिन हो जाता है। इसलिए कई लोग और छात्र दूरस्थ पाठ्यक्रमो के माध्यम से पढ़ने का विकल्प अपनाते हैं, जिससे शिक्षा आराम से जारी रख सके।

वर्तमान दुनिया में, यह कल्पना करना लगभग असम्भव है कि कोई भी व्यक्ति कम्प्यूटर के बिना रह सकता है। अस्पतालों, दूरसंचार, कार्यालयों, परिवहन में मॉल और घरों में कम्प्यूटर हर जगह हैं। कम्प्यूटर द्वारा स्कूलों में शिक्षार्थियों को वीडियो या ऑडियो की सहायत से बुनियादी अवधारणा को बेहतर समझाने में मदद कर सकते हैं। शिक्षा संस्थानाओ में इंटरनेट व कम्प्यूटर हर विषय पर महत्वपूर्ण ज्ञान और जानकारी प्रदान करते हैं। कम्प्यूटर पूरे विश्व में छात्रों को जोड़ते हैं जो आपका ज्ञान साझा करते हैं।

संचार माध्यम का शिक्षा तथा मूल्यों पर सकारात्मक तथा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। संचार माध्यम का सबसे बड़ा साधन आज के समय में टेलीविजन है। टीवी में बढ़ते मीडिया के समाज पर अपना ही प्रभाव है।

सकारात्मक प्रभाव

संचार माध्यम के द्वारा लोगो को शिक्षा मिलती है वे टीवी, रेडियो प्रोग्राम के द्वारा स्वस्थ्य वातावरण एवं अन्य जानकारी जान पाते हैं। लोगो को अपनी प्रतिभा पूरी दुनिया के सामने रखने का आधार मिलता है। बच्चो का ज्ञान बढ़ता है, डिस्कवरी जैसे चैनल से बहुत कुछ सीखते हैं। देश–दुनिया को समस्त समाचारो का संचार माध्यम से सीधा प्रसारण होता है। तकनीकी शिक्षा

सिस्टम के लर्निंग रिसोर्स विकास हेतु व्यावसायिक सहायता उपलब्ध कराना है। द्वि–आयामी एवं त्रि–आयामी एनीमेशन में प्रशिक्षण उपलब्ध कराता है। ई–लर्निंग के माध्यम से शिक्षा को देश के सुदूर क्षेत्रो में पहुंचाता है। EDUSAT के माध्यम से शिक्षार्थी गुणवत्ता वाले नई–नई शिक्षा का अध्ययन कर पाता है।

नकारात्मक प्रभाव

संचार माध्यम जैसे मास मीडिया तथा सोशल मीडिया का सबसे बुरा असर विद्यार्थियों पर पड़ता है वे अपना ध्यान इस पर अधिक लगाते हैं जिससे उनकी पढ़ाई पर बहुत बुरा असर पड़ता है। कुछ भी दिखाने के लिए आजकल फूहड़ता परोसी जाती है। कई बार ऐसे कार्यक्रम दिखाये जाते हैं जो बच्चो के साथ बैठकर नहीं देखे जा सकते हैं। इनसे मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा, जिससे समाज में नैतिकता घट रही है जो अपराधो को बढ़ावा दे रही है। अश्लील सामग्री संचार माध्यम के लिए बड़ी चुनौती है। संचार माध्यम से अफवाहों का फैलना आम सा हो गया है। असम की हिंसा हो या मुजफ्फरनगर के दंगे अफवाहें संचार माध्यम से ही फैली थीं।

निष्कर्ष

संचार माध्यम एक ऐसा माध्यम है जिसने आम नागरिक को अपने विचार व्यक्त करने का आसान मंच प्रदान किया है। शिक्षा का कार्य अच्छे नागरिक बनाना हैं और उनके मूल्यों को ऊंचा उठाना है। मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों में मानवता, देश–प्रेम व दूसरों के लिए कल्याण आदि अच्छी भावनाओं को संचार करती है तथा संस्कार के अच्छे तथा योग्य पहलू का संरक्षण करना सिखाती है। संचार माध्यम उच्च मानवीय मूल्यों के विकास में सहायक होती है।

सन्दर्भ

1. *मूल्य एवं शांति शिक्षा, सौरभ सिंह, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।*
2. *पी0डी0 पाठक, एस0एस0 माथुर, अधिगम एवं शिक्षण, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

भारतीय संविधान एवं मानवीय मूल्य

डॉ. मनमीत कौर
एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग,
बरेली कालेज, बरेली।

संविधान राष्ट्र का पवित्र दस्तावेज है। यह उस दर्शन और मूल्यों का प्रतिनिधित्व करता है जिस पर कोई राष्ट्र विकसित होता है और उन लक्ष्यों की पहचान कराता है जिन पर देश के नागरिकों की ऊर्जा को निर्देशित किया जाना चाहिए। किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था की आधारशिला उस देश का संविधान ही है। भारत में हर घर में धार्मिक ग्रन्थ जैसे—भगवद्गीता, रामायण, बाइबिल, गुरू ग्रंथ साहिब या कुरान मिल सकते हैं, लेकिन भारत का संविधान पढ़ने के लिए यह मुमकिन नहीं है। भारतीय संविधान अपने आप में अनूठा है, दुनिया का सबसे बड़ा लिखित संविधान होने के साथ ही यह देश के मूल्यों को प्रदर्शित करता है। हिन्दी और अंग्रेजी की दोनों मूल प्रतियाँ संविधान की हस्तलिखित हैं। इस तरह से यह दुनिया का सबसे बड़ा हस्तलिखित संविधान भी है। संविधान की मूल प्रतियों में हमारे पौराणिक और धार्मिक पात्रों को भी उकेरा गया है, भगवान राम, कृष्ण और शिव को चित्रित किया गया है। इसके साथ ही उपदेश देते भगवान बुद्ध को भी शामिल किया गया है, भारतीय संविधान शिक्षित करता है और जीवन जीने के तरीके को बढ़ावा देता हैं। संविधान की प्रस्तावना के अन्तर्गत उन आदर्शों, सिद्धान्तों एवं मूल्यों को आत्मसात किया गया है जिनके लिए हम प्रयास कर रहे हैं। यह सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय या विचारों की अभिव्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता और विश्वास यहाँ तक की अवसर की स्थिति और समानता प्रदान करता है तो साथ ही नागरिकों के लिए आचार संहिता भी उपलब्ध कराता है। जब संविधान रोजगार में अवसर की समानता की बात करता है और धर्म, वंश, जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव को रोकता है तो वह महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा दे रहा होता है और यहाँ तक की जातिगत बंधनों को तोड़ रहा होता है। भारतीय संविधान की प्रस्तावना 'भारत के लोग' से शुरू होती है। यह बताती है कि देश का संविधान देशवासियों के लिए है। लोगों को बेहतर जीवन देने के लिए संविधान ने हमें कुछ मौलिक अधिकार दिए हैं। इसमें समानता, स्वतन्त्रता, धार्मिक स्वतन्त्रता, सांस्कृतिक व शैक्षिक अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार व संवैधानिक उपचारों का अधिकार है, 1976 में संविधान संशोधन से अनुच्छेद 51ए को जोड़ा गया यह नागरिक के मौलिक कर्तव्यों की बात करता है। ये कर्तव्य संविधान के प्रति सम्मान, समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत को संरक्षित करना, पर्यावरण में सुधार और सुरक्षा सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा और हिंसा को रोकना और व्यक्तिगत व सामाजिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठता प्राप्त करना है। यदि सभी नागरिक कर्तव्यों का

पालन करें तो यह पूरे देश के लिए एक अच्छा कदम होगा। संवैधानिक मूल्यों के लिए सबसे अधिक आवश्यक है कि भारतीय संविधान को देश के घर–घर में धार्मिक पुस्तक के समान अध्ययन किया जाए व अंतःकरण में समाहित किया जाए। क्योंकि संवैधानिक मूल्य देश की कानूनी व्यवस्था की नींव हैं हमारे संविधान को एक अद्वितीय संविधान के साथ–साथ सबसे बड़ा तभी माना जा सकता है जब उसके मूल्य ईमानदारी से भारतीय नागरिकों द्वारा अपनायें जायें। इस पेपर के माध्यम से संविधान क्या है? भारतीय संविधान किस प्रकार मानवीय मूल्यों पर प्रभाव डालता है, आदि के अध्ययन का प्रयास किया गया है।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से आधुनिक युग तक के इतिहास में ऐसे अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जब शासन, जनसाधारण की इच्छा के विरूद्ध स्वेच्छाचारी, अत्याचारी और निरंकुश बने हैं, ऐसे शासकों की शक्तियों पर नियंत्रण, नागरिकों के कहने, इच्छा करने या चाहने मात्र से ही नहीं हो जाता है इन नियंत्रणों की तो ऐसी ठोस व स्थायी व्यवस्था आवश्यक है, जो शासन की शक्तियों को व्यवहार में प्रतिबन्धित रख सकें, जिससे वे सत्ता का दुरुपयोग चाहकर भी नहीं कर सकें। शासक शक्ति पर ऐसे प्रभावशाली, ठोस तथा स्थायी नियंत्रणो के लिए मानव ने आरम्भ से ही अनेक प्रकार नियंत्रक संस्थाओं की स्थापना की है। अनुभव के आधार पर समय–समय पर, उनमें संधार व परिवर्तन किये हैं, परन्तु अनेक नियंत्रक संस्थाओं की दुर्बलता व प्रभावहीनता के कारण राजनीतिक शक्ति का व्यवहार में दुरूपयोग हुआ और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अंत किया गया है। इस कारण, आधुनिक युग में, मनुष्य ऐसी राजनीतिक संस्थाओं की खोज में व्यस्त है जिनकी स्थापना से शासकों की शक्ति नियंत्रित रहे और वे उसक केवल सदुपयोग ही कर सकें। वर्तमान राजनीतिक व्यवस्थाओं में नियंत्रण की यह संस्थागत व्यवस्था व राजनीतिक शक्ति के प्रयोगकर्ताओं की भूमिका को संविधान में स्पष्ट रूप से लिखकर निर्धारित किया जाता है। यह माना जाता है कि सम्पूर्ण राजनीतिक तंत्र को एक उच्चतर विधि–संवैधानिक विधि के अधीन रखनी चाहिए तथा राजनीति शक्ति की नियंत्रण व्यवस्था व इसके दुरुपयोग की बचाव प्रक्रियाओं को विधिवत् उद्घोषित ऐसे लोककृत प्रलेख संविधान में उल्लेखित करना चाहिए, जिसकी सत्ता, नीति निर्धारण व क्रियान्वयन करने वाली सरकार की संस्थाओं की शक्ति व पहुँच से सामान्यतया ऊपर हो तथा इस प्रलेख की इतनी वैध्यता हो कि यह उन सब प्रयत्नों को जो इसके अतिक्रमण के लिए किए जायें, अभिभूत कर सकें, और राजनीतिक समाज में एक व्यक्ति संस्था, समूह व दल 'उच्चतर विधि' द्वारा निर्धारित भूमिका ही निभाए।

संविधान की आवश्यकता

प्रत्येक राज्य के लिए संविधान का होना आवश्यक है। संविधान के बिना किसी भी राज्य का शासन चलना अत्यन्त कठित है। इतिहास के अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है

कि प्रत्येक राज्य में शासन को चलाने के लिए कुछ नियम सदा से किसी न किसी रूप से अवश्य रहे हैं। प्रत्येक राज्य में, चाहें वह लोकतांत्रिक हो या अधिनायकवादी, कुछ ऐसे नियमों का स्वीकार किया जाना आवश्यक है जो राज्य को राजनीतिक संस्थाओं व शासकों की भूमिका को निर्धारित व सुनिश्चित कर, अराजकता से समाज को मुक्त रख सके। यहां तक कि अत्यधिक निरंकुश व स्वेच्छाचारी राज्यों में भी कुछ नियमों का पाया जाना नितान्त आवश्यक है। सरकारें चाहें निरंकुश हों अथवा लोकतन्त्रात्मक, उनके संचालन के लिए कुछ सिद्धान्तों अथवा नियमों का होना सदैव सहायक होता है। चूंकि प्रत्येक संविधान में सरकार के विभिन्न अंगों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन होता है। अतः इन सम्बन्धों का वर्णन करने वाले नियमों की विद्यमानता से सरकार के विभिन्न अंग एक दूसरे के सहयोग से कुशलतापूर्वक कार्य कर सकते हैं और उनमें संघर्ष या विरोध की सम्भावनाएं भी कम हो जाती हैं। संविधान में नागरिकों के अधिकारों का भी वर्णन होता है। यह वर्णन ही इनकी सुरक्षा व्यवस्था है, क्योंकि यह सरकार की पहुँच से इस प्रकार परे बन जाते हैं। इस प्रकार संविधान के द्वारा किसी भी राज्य का आधारभूत ढांचा संस्थागत रूप में खड़ा किया जाता है, जिससे हर व्यक्ति, संस्था व समूह की भूमिका सुनिश्चित हो जाती है।

सामान्यतया यह समझा जाता है कि संविधान एक ऐसा आलेख (document) ही होता है जो निश्चित समय में निर्मित व स्वीकृत हो, पर यह संविधान का सही व ठीक अर्थ नहीं है। संविधान का आलेख, अर्थात लिखित रूप में होना आवश्यक नहीं है। किसी भी राज्य में परम्परागत नियमों की ऐसी व्यवस्था हो सकती है, जिनको विधिवत कभी लिखा नहीं गया फिर भी जो शासकों व नागरिकों के दिल–दिमाग में इतनी गहराई से जमे हों कि इससे सरकार पर न केवल प्रभावशाली नियंत्रण रहता हो अपितु सम्पूर्ण राजनीतिक व्यवस्था में हर एक की भूमिका निर्धारित रहती हो। ऐसे राजनीतिक समाज में यह परम्परागत नियम ही संविधान कहलाते हैं। अतः संविधान उन समस्त लिखित और अलिखित (परम्पराएं) नियमों और कानूनों का समूह है जिनके आधार पर किसी भी देश की शासन व्यवस्था संगठित की जाती है और शासन के विभिन्न अंगों के बीच शक्तियों का विभाजन किया जाता है तथा उन सिद्धान्तों का निर्धारण होता है, जिनके अनुसार वे शक्तियां प्रयोग में लाई जाती हैं। संक्षेप में, ''संविधान नियमों का वह संग्रह है जो उन उद्देश्यों की प्राप्ति करता है जिनके लिए शासन शक्ति प्रर्वातत की जाती है और जो शासन के उन विविध अंगों की सृष्टि करता है जिनके माध्यम से सरकार अपनी शक्ति का प्रयोग करती है।''

संविधान में जनतांत्रिक मूल्यों का महत्व

स्वतंत्र भारत के नागरिकों को जाति–धर्म, वर्गनिरपेक्ष स्वतंत्र एवं सुखद जीवन–यापन के लिए लोकतंत्रात्मक मूल्यों की व्यवस्था की गयी इस दिशा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास था भारतीय संविधान जो 26 जनवरी 1950 को विधिवत् लागू किया गया। संविधान द्वारा

लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली की घोषणा ने समस्त भारतीय जनजीवन में नया स्पंदन प्रदान किया। स्वतंत्रता न केवल राजनीतिक क्षेत्र में भारत के इतिहास का महत्वपूर्ण क्षण था बल्कि सामन्ती, साम्प्रदायिक, जातीय एवं प्रादेशिक मूल्य चेतना से ग्रस्त भारतीय जनजीवन के राजनैतिक – सामाजिक एवं आर्थिक विकास का भी नवीन अध्याय था, जिसकी सम्पूर्ण व्यवस्था भारतीय संविधान में की गयी। देश की एकता को दृष्टि में रखकर इस संविधान में समग्र भारत के निवासियों को समानाधिकार जैसे जनतांत्रिक मूल्यों को महत्व देकर स्वतंत्रता, समता, सर्वहित एवं न्याय की व्यवस्था जैसे जनतांत्रिक मूल्यों को मुख्य लक्ष्य रूप में निर्धारित किया गया है। संविधान की प्रस्तावना में कहा गया है, ''हम भारत के लोग दृढ़ संकल्प होकर अपने इस संविधान में आज दिनांक 26 नवम्बर, 1949 ई० को एतद द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।''

संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट कहा गया है कि भारत एक सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न, लोकतन्त्रात्मक गणराज्य है। सम्पूर्ण प्रभुत्व–सम्पन्न का अर्थ यह है कि आन्तरिक या बाहरी दृष्टि से भारत पर किसी विदेशी सत्ता का अधिकार नहीं है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में अपनी इच्छानुसार आचरण कर सकता है और वह किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय समझौते या सन्धि को मानने के लिए बाध्य नहीं है। भारत एक लोकतन्त्रात्मक राज्य है, अर्थात् भारत में राजसत्ता जनता में निहित है। जनता को अपने प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार होगा, जो जनता के स्वामी न होकर सेवक होंगे।

भारतीय राज्य का गणतन्त्रात्मक स्वरूप इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारत राज्य का सर्वोच्च अधिकार वंशाक्रमानुगत राजा न होकर भारतीय जनता द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित राष्ट्रपति हैं। 42वें संवैधानिक संशोधन द्वारा प्रस्तावना में भारत को 'समाजवादी राज्य' घोषित किया गया है। 42वें संशोधन द्वारा प्रस्तावना में अब भारत को स्पष्ट रूप से 'पंथनिरपेक्ष राज्य' घोषित किया गया है। पंथनिरपेक्ष राज्य का तात्पर्य यह है कि राज्य की दृष्टि में सभी धर्म समान हैं और राज्य के द्वारा विभिन्न धर्मावलम्बियों में कोई भेदभाव नहीं किया जायेगा। डा० अम्बेडकर ने 'हिन्दू कोड बिल' पर बोलते हुए ठीक कहा था, ''पंथनिरपेक्ष राज्य का अर्थ यह नहीं है कि लोगों को भारतीयों का ख्याल ही नहीं किया जाएगा। इसका अर्थ केवल यह होगा कि संसद को जनता पर किसी विशेष पंथ को लादने की शक्ति नहीं होगी। संविधान द्वारा केवल यह नियन्त्रण लगाया जाता है, डा० राधाकृष्णन् के शब्दों में भारत राज्य वास्तविक धर्मप्राण राज्य है, जो सभी धर्मों के सार मानव धर्म में विश्वास करता है।''

भारतीय संविधान में पर्याप्त लोचशीलता है और अभी तक भारतीय संविधान में 126 संवैधानिक संशोधन हो चुके हैं। इस पर प्रकाश डालते हुए संविधान सभा में कहा था, यद्यपि जहाँ तक सम्भव हो हम इस संविधान का रूप देना चाहते हैं। संविधान कोई स्थायित्व नहीं होता है, उसमें लचीलापन होना ही चाहिए। यदि संविधान में सभी कुछ स्थायी और कठोर बना दिया

जाए तो राष्ट्र का विकास रुक जायेगा, क्योंकि राष्ट्र जीवित विकासशील प्राणियों का समूह हैं। किसी भी स्थिति में हम अपने संविधान को इतना कठोर नहीं बनाना चाहते कि वह बदलती हुई परिस्थितियों के अनुरूप परिवर्तित न हो सकें। भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद अनुच्छेद के अनुसार, ''इण्डिया अर्थात् भारत राज्यों का एक संघ होगा। इस प्रकार भारत में संघात्मक शासन की स्थापना की गई है और इसमें संघात्मक शासन के सभी लक्षण विद्यमान हैं। संविधान ने शासन शक्ति एक स्थान पर केन्द्रित न कर, केन्द्र और राज्य सरकारों में विभाजित कर दी है और दोनों ही अपने–अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र हैं। संविधान लिखित और बहुत सीमा तक कठोर हैं और इसे सर्वोच्च स्थिति प्रदान की गई है। उच्च्तम न्यायालय को संविधान का रक्षक बनाया गया है, जिसे संविधान की व्याख्या करने और केन्द्र एवं राज्य के बीच उत्पन्न संवैधानिक झगड़ों के निर्णय का अधिकार दिया गया है। 'बंधुता' भारतीय संविधान का सबसे बड़ा मूल्य है। 'व्यक्ति की गरिमा' दूसरा सबसे महत्वपूर्ण और खोज एवं सुधार की भावना है। प्रस्तावना संविधान का भाव है। इसमें निहित मूल्य न केवल देश को पहचान प्रदान करते हैं, बल्कि नागरिक जीवन को नियंत्रित भी करते हैं। इसी प्रकार 'हम लोग' की भावना राष्ट्रीय और धार्मिक कल्याण दोनों की नींव हैं और ये एक दूसरे के पूरक और सहयोगी भी हैं। संवैधानिक मूल्य देश की कानूनी व्यवस्था की नींव है हमारे संविधान को एक अद्वितीय संविधान के साथ–साथ सबसे बड़ा तभी माना जा सकता है जब उसके मूल्य ईमानदारी से भारतीय नागरिकों द्वारा जीये जायें।

भारतीय संविधान देश की विकास योजना का मूलाधार है जिसके विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत राष्ट्र की प्रगति के लिए विभिन्न योजनाओं का निर्धारण किया गया। संविधान के अनुसार अधिनियमों में दिये गये मौलिक अधिकारों तथा जातीय एवं वर्गीय चेतना से मुक्त जिन समानाधिकारों जनतांत्रिक मूल्य की घोषणा की गयी उससे देश के दलित एवं पिछड़ी हुई जातियों के विकास के नये आयाम प्रारम्भ हुए। इन जातियों के उत्थान के लिए नागरिक समानाधिकार की व्यवस्था की गयी तथा अस्पृश्यता को कानूनी रूप से दण्डनीय अपराध घोषित कर सभी नागरिकों को वैधानिक सुरक्षा का जो जनतांत्रिक अधिकार दिया गया उससे समग्र सामाजिक, आर्थिक मूल्यों में परिवर्तन की नयी दिशा प्रारम्भ हुई। निराश्रित एवं साधनहीन विवश व्यक्तियों के शोषण को समाप्त करने के लिए शोषण के विरूद्ध अधिकार जैसे जनतांत्रिक मूल्य संविधान में प्रदान किये गये। भारत के समग्र नागरिकों को अभिव्यक्ति, धर्म संस्कृति, भाषा, लिपि, क्रय, विक्रय तथा उद्योग एवं सम्पत्ति आदि के स्वतंत्र अधिकार देकर व्यक्ति स्वातंत्र जनतांत्रिक मूल्यों की घोषणा की गयी।

संविधान के अधिनियमों द्वारा नारी की सुरक्षा जैसे जनतांत्रिक मूल्यों की व्यवस्था कर महिला जीवन के विकास के लिए विशेष प्रयास किये गये। नारी को पुरूषों के समान अधिकार

प्रदान किये गये। हिन्दू–विवाह एवं उत्तराधिकार के नियमों की स्थापना द्वारा उसके व्यक्तित्व को सक्रिय, एक ही विवाह की अनुमति, सम्बन्ध विच्छेद तथा पुनर्विवाह की कानूनी व्यवस्था कर नारी के दाम्पत्य जीवन को सुखमय बनाने की चेष्टा की गयी तथा उसे सम्पत्ति की अधिकारणी घोषित कर समाज में सम्मान प्रदान किया गया एवं पराश्रित जीवन से छुटकारा दिलाया। इसके अतिरिक्त महिलाओं की नैतिक सुरक्षा व जनतांत्रिक मूल्य के लिए वैश्यावृत्ति को कानूनी अपराध घोषित कर वेश्याओं एवं देवदासियों को विवाह की अनुमति दी गयी तथा साथ ही उनके सुधार एवं सुरक्षा के लिए विभिन्न परिषदों एवं संस्थाओं की स्थापना की गयी। इस प्रकार संविधान में नारी के विभिन्न पहलुओं पर जनतांत्रिक मूल्यों का पक्ष रखा गया।

इसी प्रकार अमेरिका और आयरलैण्ड आदि देशों के संविधानों की तरह हमारे संविधान द्वारा भी नागरिकों को मौलिक अधिकार दिये गये हैं। इन छः मौलिक अधिकारों के साथ ही दस मूल कर्तव्य भी प्रदान किए गए हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समाज में हमें जो अधिकार मिलते हैं उनके बदले हमें कुछ ऋण भी चुकाने पड़ते हैं। ये ऋण ही हमारे कर्तव्य हैं, प्रो० लास्की के शब्दों में ''किसी भी व्यक्ति को असामाजिक कृत्य करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता। जब तक कि मैं बदले में समाज कुछ न दूँ तब तक मुझे समाज से कोई भी सुख सुविधा हासिल करने का अधिकार नहीं है। इसी प्रकार संवैधानिक मूल्यों में राज्य–नीति के निदेशक सिद्धान्त हमारे संविधान को संजीवनी व्यवस्थाएँ हैं। इन सिद्धान्तों में हमारे संविधान का और उसके सामाजिक न्याय दर्शन का वास्तविक तत्व निहित है ये सिद्धान्त हमारे संविधान की प्रतिज्ञाओं और आकांक्षाओं को वाणी प्रदान करते हैं। डा० राजेन्द्र प्रसाद के अनुसार, ''राज्य–नीति के निदेशक सिद्धान्तों का उद्देश्य जनता के कल्याण को प्रोत्साहित करने वाली, सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करना है। इन आधारभूत सिद्धान्तों का उद्देश्य कल्याणकारी राज्य स्थापित करना है, सामूहिक रूप से ये सिद्धान्त भारत में आर्थिक एवं सामाजिक लोकतन्त्र की रचना करते हैं। निदेशक सिद्धान्तों का वास्तविक महत्व इस बात का है कि ये नागरिकों के प्रति राज्य के दायित्व के द्योतक हैं संविधान की प्रस्तावना में जिन आदर्शों की प्राप्ति की इच्छा प्रकट की गई है, ये उन आदर्शों की ओर बढ़ने के लिए पथ–प्रदर्शन का कार्य करते हैं जिन आदर्शों की प्राप्ति भारतीय राज्य का लक्ष्य है ये उन आदर्शों की गणना है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान मानवीय मूल्यों की रक्षा करता है व एक सुव्यवस्थित समाज एक आदर्श राज्य का निर्माण करता है। संविधान के माध्यम से ही व्यक्ति की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखते हुए भी सामाजिक उत्थान और सामाजिक न्याय की स्थापना सम्भव होती है। संविधान की प्रस्तावना संविधान की आत्मा है, इसमें जीवन के मूल्य समाहित हैं, संविधान में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और महत्व पर बल दिया गया है, व्यक्ति लोकतन्त्र की एक

महत्वपूर्ण इकाई मानते हुए, राष्ट्रीय एकता को महत्वपूर्ण आधार माना गया है। भारतीय संविधान के जनकों ने नव–निर्माण की भूमिका में एक नए और सुव्यवस्थित समाज की कल्पना की है। यह बहुत सौभाग्य और सन्तोष की बात है कि हमारे संविधान के निर्मातागण भी उन्हीं श्रेष्ठ मूल्यों व आदर्शों के समर्थक रहे, जिनके द्वारा व्यक्ति की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखते हुए भी सामाजिक उत्थान और सामाजिक न्याय की स्थापना सम्भव होती है।

डा० सुभाष कश्यप के शब्दों में ''संविधान में निहित पावन आदर्श हमारे राष्ट्रीय आदर्श हैं और जहाँ वे एक ओर हमें अपने गौरवमय अतीत से जोड़ते हैं वहाँ उस भविष्य की आशंका को भी संजोते हैं।''

संदर्भ

1. *डा० पुखराज जैन व डा० बी०एल० फड़िया, भारतीय शासन एवं राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा।*
2. *डा० सी०बी० गेना, 'तुलनात्मक राजनीति एवं राजनीतिक संस्थाएँ', विकास पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।*
3. *डा० जे०सी० जौहरी, तुलनात्मक शासन एवं राजनीति, एस०वी०पी०डी० पब्लिशिंग हाऊस, आगरा।*
4. *डा० एस०आर० माहेश्वरी, 'तुलनात्मक राजनीति', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।*
5. *डा० सुभाष कश्यप, ''हमारी संसद'', राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत।*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

नारी शिक्षा के मापदण्ड

पूनम रानी
पुस्तकालयाध्यक्ष; एस. डी. कॉलेज ऑफ लॉ; मुजफ्फरनगर।

इतिहास की ओर देखे तो हम यह पायेंगे कि प्राचीन भारत में नारी शिक्षा को मुख्य स्थान प्राप्त था। गार्गी, मैत्रयी, लोपमुद्रा आदि अनेक महिलाऐं जो आज भुला दी गयी है, अपने समय की प्रख्यात शिक्षाविद रही है। जो शास्त्रार्थ में निपुण थी।

हमारे देश भारत में शिक्षा हमेशा से एक ज्वलन्त मुद्दा रहा है कि सरकार के द्वारा किये जा रहे प्रयासों के बावजूद हम दिन प्रतिदिन बढती हुई जनसंख्या के समक्ष शिक्षा उपलब्ध कराने में असमर्थ रहे है। इसका मुख्य कारण एक पुरानी मानसिकता पर भी है कि हमारे देश में लड़कियों को अनेक सामाजिक कारणों से पढ़ने के लिए रोक दिया जाता है।

आंकडों पर यदि दृष्टि डाले तो संसार में महिला साक्षरता दर 79.7 प्रतिशत भारत में वर्ष 2011 की जनसंख्या के अनुसार 65.46 प्रतिशत है। हांलाकि विश्व में सर्वाधिक जनसंख्या वाला देश चीन में महिलाओं में साक्षरता 82.7 प्रतिशत के साथ काफी आगे है। इमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारी मानसिकता में शिक्षा केवल रोजगार का माध्यम मात्र है तथा रोजगार से जुड़ जाने के कारण हम शिक्षा को एक सामाजिक उन्नति का आधार मानते है, न कि सामाजिक संस्कार का, और शायद यही कारण है कि हम नारी शिक्षा का गुणगान तो करते है परन्तु शिक्षा के समान अवसर और सुविधाएं उपलब्ध नही करा पाते है, हमारी सुविधाओं का अभाव ही शिक्षा प्राप्ति के लिए सबसे बडी बाधा है। यह कहना अतिश्योक्ति न होगा कि विभिन्न सरकारी स्कूलों द्वारा संसाधनों के अभाव में छात्राऐं शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं हो पाती और प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात शहरी क्षेत्र के स्कूल में जाना पसन्द नहीं करती। महिला शिक्षा के लिए हमारी सामाजिक कुरीतियां भी जिम्मेदार है। आज के समय में यह धारणा है कि बेटी घर का काम करें, उसे पढ़ाने लिखाने का क्या लाभ। इस प्रक्रिया में हमारा समाज यह भूल जाता है कि पढ़ाई लिखाई का अर्थ केवल रोजी रोटी से नही है, वरन पढ़ाई से ही हम अपनी मानसिक क्षमताओं को ही विकसित कर देश के निर्माण में अपना योगदान दे सकते है।

आज हमें आवश्यकताऐं इस बात की है कि हम नारी शिक्षा के लिए सामूहिक प्रयासों से हम समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षित कर सकते हैं, इसके लिए कुछ पहलुओं पर गंम्भीरता पूर्वक चिन्तन करना होगा।

1. प्राथमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में नैतिक शिक्षा के साथ साथ प्राचीन भारत की विदुषी महिलाओं के जीवन के चरित्र को पढ़ाया जाए। जिससे बच्चों को छात्र जीवन में ही आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलती रहे।

2. राज्य सरकार तथा केन्द्र सरकार को यह चाहिए कि शिक्षा के लिए मूल–भूत सुविधाओं का प्रत्येक वर्ष अवलोकन कर उन्हें समय की आवश्यकताओं के अनुरूप सुविधाऐं उपलब्ध करायी जाये।

3. शिक्षा का निजीकरण भी प्राथमिक शिक्षा के लिए ही बा धक है अतः ब्लाक, गांव स्तर पर यह आवश्यक हो कि शिक्षा का निजीकरण न हो, शिक्षा के निजीकरण से पढाई का महंगा होना, ग्रामीण क्षेत्र के लिए जनसमुदाय को प्राथमिक करता है और ऐसे में लडकियों को पढाई छोडने के लिए विवश किया जाता है। पढाई को रूचिकर बनाने के लिए प्रारम्भिक स्तर से ही तकनीकी आधार पर केन्द्र शिक्षा पर ही केन्द्रित हो, जिससे छात्राओं में सीखने की प्रबल इच्छा जागृत हो।

4. हमारे देश में शिक्षा से दूर रहने का एक मुख्य कारण बालश्रम भी है। ग्रामीण क्षेत्रों में बच्चों के माता पिता बच्चों को मजदूरी के लिए स्कूल की पढाई छुटा देते है जो कि अनुचित है। अतः सरकार को चाहिए की बालश्रम निषे ध कानूनों को कठोरता से पालन कराया जाये। जिससे कोई माता पिता अपने बच्चों से मजदूरी ना करा सके। सरकार द्वारा संचालित योजनाओं को जन–जन तक पहुंचाने के लिए समूचित प्रयास करने चाहिए। वर्तमान में संचालित बेटी बचाओं, बेटी पढ़ाओं योजना का हरियाणा राज्य में प्रयोग सफल रहा है जिस कारण लिंग अनुपात संतुलन बन रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय समाज में नारी सुरक्षा सबसे बडा मुद्दा है। इसमें जिस कारण भारतीय समाज अपनी बहन बेटी के लिए असुरक्षित महसूस करता है। सरकार को यह चाहिए कि महिला सुरक्षा या नारी सुरक्षा को गंम्भीरता से लेकर उनका शीघ्र समाधान किया जाए। निर्भया वाद में हो रही देरी यह प्रमाणित करती है कि नारी सुरक्षा के नाम पर प्रशासनिक लिपापोती कर अपने कर्तव्यों को पूरा मान लिया जाता है। यह जनमानस के लिए उचित नही है। आवश्यकता इस बात की है कि नारी सुरक्षा से जुडे नियमों को कठोरता पूर्वक पालन कराया जाये। जिसमें समाज में नारी से जुडे अपराधों के बारे में भय हो सके।

शिक्षा का पश्चिमीकरण हमारी मानसिकता को अवरूद्ध करता है, यह सही है कि हम शिक्षा के पश्चिमीकरण से स्वंय को पृथक नहीं कर सकते, परन्तु शिक्षा रोजगार मुखी के साथ भारतीय संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व करती हो। जिससे समाज बालपन से ही शिक्षा के माध्यम से ही छात्र/छात्राओं में एक दूसरे के प्रति सम्मान हो। निःसंदेह भारत में साक्षरता दर बढाने के लिए उपरोक्त प्रयास करने होंगें। जिससे हम साक्षर भारत के साथ–साथ शिक्षित भारत के स्वप्न को साकार कर सकें।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में मूल्य शिक्षा

डॉ. प्रदीप कुमार[1], संतोष कुमार पाण्डेय[2]

[1]असिसटेंट प्रोफेसर,

[2]बी.एड प्रथम वर्ष

शिक्षा शिक्षक विभाग, राजकीय रज़ा पीजी कॉलेज, रामपुर।

मनुष्य जीवन पशु जीवन से श्रेष्ठ इसलिये माना जाता है कि उसमें ज्ञान, बुद्धि एंव विवेक पाया जाता है ज्ञान मनुष्य जीवन मे चँहुमुखी उन्नति कर सकता है। वर्तमान समय में विश्व के हर क्षेत्र मे जो उन्नति दिखाई दे रही है, वह शिक्षा का ही प्रभाव है।

मानवीय मूल्यों का विकास समाज में शिक्षा के द्वारा ही होता है सामाजिक सम्पर्क के परिणाम स्वरूप नैतिक विकास होता है अर्थात समाज का मानवीय मूल्य के विकास में अहम योगदान है। हम कुछ मूल्यों को प्राथमिकता देते है व कुछ अन्य मूल्यों को त्याग देते हैं। मानव आचरण केवल विचारों द्वारा ही नहीं होता अपितु भावों द्वारा भी होता है, सिद्धान्तो की भावों द्वारा शक्ति हम सबको मिलती है।

स्थायी भावों के आधार पर ही हम सभी लोग मूल्यों का चयन करते हैं, और उच्च मूल्यों के निरतंर चुनाव करने से यह हमारा स्वाभाव बन जाता है। हमारे व्यक्तिव का अंग बन जाता है, हमारे चरित्र का निर्माण होता है।मूल्य समाज को व्यवस्था देते हुये तथा व्यक्ति के व्यवहार की दिशा को आधार प्रदान करते हैं। अच्छे चरित्र का आधार मूल्य है और आधुनिक युग मानवीय मूल्यों के संकट का युग है। वर्तमान समय में व्यक्ति के जीवन में ईमानदारी और सहनशीलता का क्षरण हो रहा है। चारों ओर अपराध हिंसा क्रूरता लोभ स्वार्थ और परसेवा का लोप दिखाई देता है भौतिकता की चकाचौंध के कारण आध्यात्मिकता का लोप है। शहरीकरण की अंधी दौड़ के कारण पर्यावरण के प्रति उपेक्षा है।

हमारा जीवन मूल्यवान होना चाहिए यह हमें बारबार सुनाई पड़ता है मूल्य की सही परख होने के बाद ही हम मूल्यवान बन सकते हैं। मूल्यवान बनने के लिये किसी जगह पर खोज करने की आवश्यकता नहीं होती है। मानवीय मूल्य तो संस्कार का ही एक हिस्सा हैं और संस्कार तो पारिवारिक होते हैं कुछ लोग मानवीय मूल्यों को सिर्फ शिक्षा के साथ ही जोड़कर देखते हैं, मूल्य हमारे साथ ही चलते हैं। मानवीय मूल्यों को संभालने का कार्य मुश्किल जरूर है वह किसी भी क्षण छिटक जाये तब मूल्य में से अवमूल्य का प्रकटीकरण अपने आप हो जाता है।

शिक्षा से मनुष्य संसार की सभी सुख सुविधाओं को जुटाने में समर्थ हो गया है वैसे ही वह इस संसार के अज्ञानरूपी मायाजाल को छोड़कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है। संसार के

अज्ञान से जो छुटकारा दिलायें, वह सच्ची शिक्षा है, शिक्षा ही अज्ञानरूपी अंधकार से मुक्ति दिलाकर ज्ञान का आलोक प्रदान करती है।

शिक्षा व्यक्तित्व के विकास का केन्द्रबिन्दु है

शिक्षा मानव को एक अच्छा इंसान बनाती है शिक्षा में ज्ञान उचित आचरण और तकनीकी दक्षता शिक्षण और विद्या से प्राप्त होता है। शिक्षा कौशलों व्यापारों या व्यवसायों एंव मानसिक नैतिक और सौन्दर्यविषयक के उत्कर्ष पर केन्द्रित है।

शिक्षा समाज में पीढ़ी दर पीढ़ी ज्ञान के हस्तांरण, सवर्धन का अच्छा प्रयास है। शिक्षा व्यक्ति को समाज में जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में स्थापित करने में सहायक है।

- मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। (स्वामी विवेकानन्द)
- शिक्षा राष्ट्र के आर्थिक, सामाजिक विकास का शक्तिशाली साधन है, शिक्षा राष्ट्रीय सम्पन्नता एंव राष्ट्र कल्याण की कुंजी है। (राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, 1964–44)
- शिक्षा से मेरा तात्पर्य बालक और मनुष्य के शरीर, मन तथा आत्मा के सर्वागीण एंव सर्वोत्कृत विकास से है। (महात्मा गाँधी)

शिक्षा मानवीय ज्ञान में विस्तार एंव बुद्धि का माध्यम

हजरत मुहम्मद साहब का प्राथमिक उद्देश्य उनकी इस उक्ति से स्पष्ट हो जाता है कि उपहार में स्वर्ण देने की अपेक्षा बच्चों को शिक्षा देना श्रेयस्कर है।

अतः शिक्षा का मूलतत्व ज्ञानार्जन करना था, क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही मानवीयता का प्रकाश प्राप्त होता है तथा व्यक्ति में स्वविवेक जाग्रत होता है। शिक्षा के अभाव में धर्म एंव आध्यात्म विषयक ज्ञान की प्राप्ति भी असंम्भव है। जो ज्ञान के द्वारा आनन्द की प्राप्त हो सकती है।

मूल्य

वास्तव में शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति में मानवीय मूल्यों का समावेश हो पाता है जो व्यक्ति के महानतम विचारों का प्रचार प्रसार करके, सम्पूर्ण विश्व में हमेशा के लिये अमर हो जाते हैं। संसार के विभिन्न देशों की प्रगति मे शिक्षा से ही उस देश की उन्नति निर्भर होती है जिसका विकसित देश व विकासशील देश धीरे धीरे मानवीय मूल्यों की चरम सीमा पर एक नये उन्नतिशील समाज का विकास करते हैं।

नैतिकमूल्य

नैतिक गुणो की श्रेष्ठता को मानव समाज के लाभ की दृष्टि से देखना चाहिए। मानव समाज के लिये जो प्रसन्नता अधिक प्रसन्न करेगी, वह उतनी ही अधिक बड़ी मानी जायेगी। इस प्रकार नैतिक उपदेशों तथा आशाओं को अधिक इस प्रकार किया जा सकता है जो नैतिक मूल्य का मूलतत्वहै।

सौदर्यपरक मूल्य

मोंटेगू के अनुसार सौंदर्यपरक मूल्य एक मनोंरजन है उसके अनुसार बोध और विचारों का मिश्रण होता है। मानव के द्वारा सौन्दर्य के अनुभूति उसके सूक्ष्म गुणो के हमारे अंदर के भावो के साथ सम्मिश्रण हो जाता है, इस प्रकार सौन्दर्यपरक मूल्यों के आंनद के साथ सांमजस्य हो जाना ही सौन्दर्यपरक मूल्यों की बड़ी विशेषता है मानव अपने अंदर के गुणों को जितना रूचिकर बना देता है। जो सामाजिक समूह के उत्थान के लिये, अभिवृद्धि में सहायक होते हैं। सौंदर्यपरक मूल्य की सबसे बड़ी विशेषता होती है।

सामाजिकमूल्य

व्यक्ति समाज का एक अंग होता है सामाजिक मूल्य में एक व्यक्ति का आदर्श पूरे समाज के लिये प्रेरणा बन जाता है।हम सबको एक अच्छे समाज के निर्माण में, प्रेरणाओं का लाभ के योग्य बना सके, और मनुष्यों को उचित दिशा की और निर्देशन दे सकते हैं तभी वास्तविक रूप से सामाजिक मूल्यों का मानव समाज के लिये हितकर होगा।

भारतीय संविधान मे वर्णितमानवीय मूल समानता, स्वतंत्रता, शिक्षा का अधिकार से सर्वागीण विकास

भारतीय संविधान मे प्रत्येक नागरिक को अनुच्छेद 14 में विधि के समक्ष समता और विधियों का समान संरक्षाण अनुच्छेद 15 में राज्य के नागरिक के प्रति केवल धर्म, मूल, वंश, लिंग, जाति या जन्मस्थान को लेकर भेद का अंत, अनु0 16 में लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता, अनु0 17 अस्पृश्यता का अंत, अनु0 18 में उपाधियों का अंत स्वतंत्रता का अधिकार अनुच्छेद 19–22 तक अनुच्छेद 19 मे वाक् एंव अभिव्यक्ति की स्वंतत्रता, शांतिपूर्वक और निरापुध सम्मेलन का अधिकार, संगम संघ या सहकारी, समितियों बनाने का अधिकार, भारत के राज्य क्षेत्र में किसी भाग में निर्वाध से घूमने और बस जाने का अधिकार, कोई भी वृत्ति, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार, पहले संविधान में 7 अधिकार थे अब वर्तमान मे 6 अधिकार हैं अनुच्छेद 21 (क) में 6 से 14 वर्ष तक की उम्र के बच्चों को निशुल्क एंव अनिवार्य शिक्षा को उपलब्ध कराया जा रहा है। अर्थात शिक्षा के द्वारा मानवीय मूल्यो का विकास हो सकेगा, एवं राष्ट्रीय ज्ञान आयोग की संकल्पना ज्ञानवान समाज का निर्माण किया जाना सम्भव हो पायेगा। लोकिंतात्रिक मूल्यों के सृजन में शिक्षा को मौलिक अधिकार की श्रैणी में लाकर ऐतिहासिक कदम उठाया गया है। (एम0 लक्ष्मीकांत)

संविधान में संस्कृति और शिक्षा संबंधी अधिकार से मूल्यों का विकास

अनुच्छेद 19 में यह उपबंध है कि भारत के किसी भाग का निवासी को अपनी बोली, भाषा लिपि तथा संस्कृति को बनाये रखने का अधिकार प्राप्त है तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों एंव भाषायी, अल्पसंख्यकों को सुरक्षा प्रदान किया गया है। तथा नागरिकों के अनुभाग शब्द दिया गया है जिसका अर्थ है कि अल्पसंख्यक एंव बहुसंख्यक दोनों से है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि शिक्षा के माध्यम से चरित्र, सत्यनिष्ठा, ईमानदारी सकारात्मक समभाव एंव बंधुत्व की भावना का विकास संभव है। महान शिक्षाविदों के लिये देश कृतार्थ है जिन्होंने विभिन्न कालखण्डों में भारतीय समाज को शिक्षित किया है।

धार्मिक मूल्यः– इस मूल्य को लोग बड़ी सरलता से समझते हैं समाज में कुछ लोग नास्तिक होते हैं उनमें इस मूल्य का अभाव होता है परन्तु जो विभिन्न धर्मों को माननेवाले होते हैं उनका धार्मिक मूल्य पाया जाता है। इसमें कलात्मक की अपेक्षा धार्मिक अनुभूति अधिक होती है। (1) ईश्वर की पूजा में जीवन लाभ देखना (2) अनुभूति या स्वीकृत समुदाय से स्पष्टता आत्मसात करने पर उच्चस्तर का उददेश्य प्राप्त हो जाता है। (3) आशा, सकारात्मक सोच का विकास होता है। (4) इसमें संसार के पीछे एक ईश्वर मौजूद है जो हर गतिविधि जैसे पक्षी के हिलनेडुलने तक को देखता है।

न्यायिक मूल्यः—न्यायिक मूल्य में देश में घटित होने वाली समस्त घटनाओं की न्यायिक रूप से हल करने की कोशिश की जाती है। इसमें अपराधों पर नियंत्रण, समरसरता, भाई—चारे की भावना समाज में शांति बनाये रखने का प्रयास किया जाता है। समाज एक बेहतर माहौल में समृद्ध होकर विकास करता है।

राजनैतिक मूल्यः—इसका वर्तमान समय में पूरा विश्व प्रभावित हो रहा है इस मूल्य का विकास ईमानदारी और सेवाभाव की भावना का होना अतिआवश्यक है वर्तमान समय व भविष्य की पीढ़ी के विकास में इस राजनीतिक मूल्य का अहम योगदान है।

मनोवैज्ञानिक मूल्यः—मनोवैज्ञानिक मूल्य से एक बेहतर समाज का निर्माण किया जा सकता है इस मूल्य के न होने से बेहतर समाज की कल्पना पूरे विश्व की करना एक बेईमानी होगी अर्थात आज के समय कोई भी युद्ध को इस मूल्य के द्वारा जीते जा सकते हैं, इसका शांति बनाये रखने में मुख्य योगदानहै।

भौतिक मूल्यः—आज के समय में भाग दौड़ की जिन्दगी में इस मूल्य का होना लाजिमी है सभी व्यक्तियों को रोटी, कपड़ा, मकान की आवश्यकता है इस प्रकार कहा जा सकता है कि इसके बिना समाज में एक सम्मान प्राप्त करना अंसभव है वास्तव में आज भौतिक मूल्यों के कारण व्यक्ति का यश सम्मान को प्राप्त कर पाता है।

जब तक व्यक्ति यह अन्तर, निश्चय और निर्णय नहीं कर सकते कि क्या अनुचित है तब तक अच्छे समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

उपराष्ट्रपति एम0 वैंकेया नायडू जी ने जयपुर में महात्मा गांधी चिकित्सा विज्ञान और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालयों में उदबोधन करते हुये कहा कि शिक्षा ही किसी राष्ट्र की प्रगति की नींव डालती है तथा मानवीय मूल्यों से संबंधित शिक्षाण को भी चिकित्सा शिक्षा का एक अहम हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

आधुनिक समय में मूल्य शिक्षा का महत्व बढ़ गया है जो एक अच्छे शिक्षित प्रगतिशील समाज के निर्माण हेतु आवश्यक है। चारों तरफ शिक्षा में प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवार,समाज, समुदाय में मूल्यों को बखूबी से अपना रहा है। उन्नति शिखर पर पहुंचाने की कोशिश कर रहा है। जो एक बेहतर राष्ट्र एंव मानवता विश्व की कल्पना को साकार कर रहा है। भारत में एक बेहतर राष्ट्र बनने के लिये शिक्षा मे मानवीय मूल्यों को महत्व देना ही होगा।

सन्दर्भ

1. *अनिल अग्रवाल,परीक्षा मंथन, निबन्ध मंथन,''30''वां संशोधित संस्करण पृ0 संख्या 208–225, मंथन प्रकाशन इलाहाबाद*
2. *एम0 लक्ष्मीकान्त, भारत की राजव्यवस्था पंचम संस्करण, पृ0 सं0 7.5 से 7.20 तक, MC Graw Hill Education (India) Private Limited*
3. *www.drishtias.com*
4. *PIB delhi, 26 march, 2019*
5. *राम राकल पाण्डेय, मूल्य शिक्षा के परिपेक्ष्य पृ0स0 08 से 47 तक*
6. *सुरेश भटनागर, मुनेन्द्र कुमार, समकालीन भारत और शिक्षा, प्रकाशन आर0 लाल0 बुक डिपों, मेरठ।*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

उच्च शिक्षा में मानवीय मूल्यो की दशा और दिशाः एक विश्लेषण

प्रवीन कुमार गुप्ता
असि. प्रोफेसर
ग्रामोदय पी. जी. कॉलेज अमरपुरकाशी मुरादाबाद

शिक्षा एक संस्कार है, जो मनुष्य को सार्थक जीवन के लिये सक्षम बनाती है। शिक्षा ज्ञान का वह अमूल्य अस्त्र है जिससे सभ्यतायें बनती है, संस्कृतियाँ परवान चढ़ती है एवं इतिहास लिखे जाते है। शिक्षा जीवन दर्शन है, एवं सामाजिक विकास का सबसे प्रभावशाली माध्यम है इसलिये शिक्षा को विकास के एक महत्वपूर्ण मापदण्ड के रूप मे पहचाना गया है।

यदि हम शिक्षा को प्रयोजन की दृष्टि से देखते है तो शिक्षा बहुउद्देशीय है। अलग अलग विद्वानों ने शिक्षा को अलग अलग रूपो में स्वीकार किया है। अरस्तु ने शिक्षा का मूल उदेश्य मनुष्य की आत्मा और समूचे व्यक्तित्व को निखारना बताया है, तो महॉत्मा गॉधी ने शिक्षा का सम्बन्ध बुद्धि, आत्मा एंव शरीर तीनो से जोड़ा है। इन दोनो और शिक्षा सम्बन्धी अन्य विचारको का अध्ययन करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की सहज शक्तियो का विकास उसके चरित्र का निर्माण और उसे प्रबुद्ध बनाकर जीवन संग्राम मे सफल भूमिका के लिये तैयार करना है।

भारत मे उच्च शिक्षा कोई नई बात नही है। हमारे देश के अतीत में उच्च शिक्षा में मानवीय मूल्यों की गौरवशाली परम्परा रही है। प्राचीन काल मे गुरूकुलों तथा आश्रमों में गुरू के पास रहकर छात्र उच्च शिक्षा प्राप्त करते थे बुद्ध काल में भी बिहार तथा संघो में उच्च शिक्षा दी जाती थी। नालन्दा, तक्षशिला जैसे विश्वविद्यालय वास्तव मे विश्व प्रसिद्ध थे जिनमे विश्व के अनेक देशों से छात्र पढ़ने आया करते थे। नालंदा जैसे विश्वविद्यालयों में निशुल्क शिक्षा दी जाती थी।

उच्च शिक्षा से समुदाय व राष्ट्र शक्ति सम्पन्न होते हैं तथा लोकतन्त्र मजबूत होता है जिससे मानवता पर आधारित विकास गतिमान होता है। तथा इससे शक्ति सद्भाव और सामाजिक न्याय को बल मिलता है। परन्तु वर्तमान समय में उच्च शिक्षा अपने मूल उद्देश्यो से भटक गयी है इसका प्रमुख कारण भारतीय शिक्षा व्यवस्था मे बिट्रिश शासन की छाप है।

यह कहना सत्य होगा कि हमारी आधुनिक उच्च शिक्षा के प्रेणता अंग्रेज शासक थे इसके जन्मदाता चार्ल्स ग्रांट थे। उनके द्वारा स्थापित शिक्षा व्यवस्था के पीछे उनके निहित स्वार्थ थे। अंग्रेजो ने शिक्षा को अपने हितों के लिये प्रयोग किया। उनका उद्देश्य भारत में एक ऐसा शिक्षित वर्ग पैदा करना था जो औपनिवेशिक शासन को सुचाारू रूप से चलाने में सहायक हो।

भारत मे अंग्रेजी शिक्षा का लक्ष्य अग्रेजी शासन की नींव मजबूत करना था। पराधीनता के समय से ही अंग्रेजो द्वारा संचालित शिक्षा व्यवस्था की आलोचना भारतीय नेताओं तथा विचारकों द्वारा की जाती रही है और उसे भारतीय जनता के लिये सर्वथा अनुपयुक्त बताया गया स्वतन्त्रता के बाद भी शिक्षा व्यवस्था में पर्याप्त सुधार नहीं हो सके हैं और उसमें कहीं न कहीं अंग्रेजी शिक्षा की छाप स्पष्ट रूप से दिखाई पडती है। परिणाम यह हुआ कि वही पुरानी शिक्षा व्यवस्था बैसाखियों के सहारे लंगड़ाती और लड़खड़ाती रही।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार ने शिक्षा की प्रगति की ओर ध्यान दिया। शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु अनेक समितियाँ बनी, आयोग स्थापित किये गये, सम्मेलनों और संगोष्ठियों मे सुधार हेतु चिन्तन व मनन हुआ। उच्च शिक्षा में समुचित सुधार हेतु गठित आयोगो की बड़ी रिपोर्ट और सिफारिशों के बावजूद भारत मे शिक्षा व्यवस्था की रूपरेखा वही है जो अंग्रेजो ने पढ़े लिखे क्लर्क और शासकीय सेवक प्राप्त करने के लिये यहाँ प्रारम्भ की। यद्यपि रिर्पोटो में बार बार यह जोर दिया जाता रहा है कि हमारी शिक्षा देश की आवश्यकताओ के अनुरूप व्यावहारिक होनी चाहिये। परन्तु न तो शिक्षा पद्धति का भारतीयकरण हुआ और न ही शिक्षा दैनिक जीवन मे उपयोगी हो पाई। आज शिक्षा के क्षेत्र मे आमूल चूल परिवर्तन लाने की आवश्यकता है थोडे बहुत संशोधनों से उसके दोष दूर नहीं होंगे।

उच्च शिक्षा की दिशा एंव दशा मे सुधार हेतु समय समय पर अनेक प्रयास किये जाते रहे है। इसी उद्देश्य से 4 नवम्बर 1948 को भारतीय विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की गई थी। जिसके प्रमुख उद्देश्य उत्पादन वृद्धि, सामाजिक व राष्ट्रीय एकता और संस्कृति पर आधारित है विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने उच्च शिक्षा के निम्न लिखित प्रमुख उद्देश्य बताये हैं।

- आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक परिवर्तन मे नेतृत्व ग्रहण कर सकने वाले व्यक्तियों का निर्माण।
- दूरदर्शी, बुद्धिमान व बौद्धिक व्यक्तियों का निर्माण जो समाज सुधार के कार्य मे योगदान दे सके।
- प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये शिक्षा का प्रसार व ज्ञान की खोज कर सकने वाले व्यक्ति उत्पन्न करना।
- राष्ट्रीय व सांस्कृतिक विरासत को अपनाने वाले नागरिक बनाना।
- देश की सम्यता व संस्कृति के लिये रक्षक व पोषक अग्रदूतो का निर्माण।
- अनुसंधान व खोज विकसित करना तथा स्वस्थ शरीर व मस्तिष्क का निर्माण।

हमने उच्च शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये थे उन उद्देश्यों या लक्ष्यों को हम प्राप्त नहीं कर सके। एक ओर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था अपने मूल उद्देश्यो की पूर्ति में विफल रही है,

दूसरी ओर वही इसके अनेक विनाशकारी परिणाम देखने को मिले है। इसने घोर चरित्रहीनता का संस्कार उत्पन्न किया है तथा आत्मनिर्भरता जैसे आधारभूत पहलूओं की जड़े हिला दी है।

उच्च शिक्षा के समक्ष चुनौतियाँ

देश को स्वाधीन हुये 70 वर्ष से अधिक हो चुके है। हमारे देश के कर्णधारों ने कभी भी शिक्षा व्यवस्था को सही दिशा देने के उद्देश्य के सार्थक व गम्भीर प्रयास नही किये है यह कहना अनुचित होगा कि शिक्षा जैसे अति आधारभूत विषय को देश की आवश्यकता के अनुरूप तथा व्यावहारिक बनाने का जितना प्रयास किया जाना चहिये उतना नहीं किया गया। हमारी उच्च शिक्षा अपने मूल उद्देश्यों से भटक कर डिग्रियों तथा नौकरियों तक सीमित होकर रह गयी है।

हमने उच्च शिक्षा के जो उद्देश्य निर्धारित किये थे उन्हें हम प्राप्त नही कर सके है। अब हमें उच्च शिक्षा के लक्ष्य फिर से निर्धारित करने होंगे। पहले जिन लक्ष्यों को हम प्राप्त नहीं कर पाये उनके प्राप्त न होने के कारणों को खोजना होगा। यह उच्च शिक्षा के लिये सबसे बड़ी चुनौती है। आज हमें ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो हमारा नैतिक व चारित्रिक विकास करे तथा आत्मनिर्भरता प्रदान करे। शिक्षा ऐसी हो जो रामायण भी पढ़ाये और अणुबम भी बनाना सिखाये। इस शैक्षिक धारणा को उच्च शिक्षा में लागू करना सबसे बडी चुनौती है इसके लिये उच्च शिक्षा की निम्न चुनौतियो की ओर हमे अपना ध्यान आकर्षित करना होगा।

उद्देश्य निर्धारण

सबसे पहले उच्च शिक्षा को निश्चित उद्देश्यो से जोडना होगा। आज सम्पूर्ण विद्यार्थी समुदाय इस भ्रान्त, सारहीन और लक्ष्य विमुख शिक्षा प्रणाली के बीहड़ मे भटक रहा है उसे न अपने गन्तव्य का बोध है और न साधनो का। अतः स्पष्ट होना चाहिये कि जब भी कोई विद्यार्थी कोई डिग्री ले तो यह निश्चित हो कि यह डिग्री अमुख उद्देश्य को पूरा करती है। आज उच्च शिक्षा व्यक्ति को जीवन के लिये तैयार नहीं करती है अतः उच्च शिक्षा के उद्देश्यो का पुर्ननिर्धारण 21 वीं सदी के समक्ष प्रथम चुनौती है।

पाठयक्रम का पुर्नगठन

पाठयक्रम उद्देश्य प्राप्ति का आधार होता है। उच्च शिक्षा के पाठयक्रम का परिवर्तित परिस्थितियो के अनुसार पुर्नगठन आवश्यक है। स्नातकोत्तर कक्षाओ मे अनुसंधान विधियों के उपयोग पर आधरित पाठयक्रम होना चाहिये। उच्च शिक्षा का विस्तार तो हुआ है किन्तु पाठयक्रमों मे व्यावसायिक विषयों का अभाव, रोजगारोन्मुखी पाठयक्रम न होना आदि कारणो से पाठयक्रम शिक्षा के उद्देश्यो मे पूर्णतया सहायक साबित नहीं हो रहे हैं। अतः पाठयक्रम का पुर्नगठन भी उच्च शिक्षा की प्रमुख चुनौती है।

शिक्षा का माध्यम

उच्च शिक्षा का माध्यम मातृभाषा रहे या क्षेत्रीय भाषा अथवा अंग्रेजी यह एक जटिल समस्या है। एक छात्र जितना समय अंग्रेजी सीखने में लगाता है उतना समय वह ज्ञार्नाजन मे लगाये तो छात्र की योग्यता मे विशेष वृद्धि होगी। जो भाव मातृभाषा में व्यक्त हो सकते हैं वह विदेशी भाषा में सम्भव नहीं हैं। अतः देश के सामने एक ज्वलंत प्रश्न है कि उच्च शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो या अंग्रेजी या अन्य भाषा। शिक्षा के माध्यम को लेकर शिक्षाविदो में जो विवाद बन गया है वह 21 वीं सदी मे उच्च शिक्षा के समक्ष एक चुनौती है।

छात्र अनुशासनहीनता

उच्च शिक्षा की एक प्रमुख चुनौती छात्र अनुशासनहीनता है। छात्र कल्याण के उद्देश्य एंव प्रजातन्त्र के उद्देश्य से बनाई गई चुनाव प्रणाली आज छात्र अनुशासनहीनता का पर्याय बन गई है। उच्च शिक्षा में अनुशासनहीनता छात्रों को नैतिक पतन की ओर ले जा रही है। छात्रों में मानवीय मूल्यों के आभाव से छात्र उच्च कोटि के नागरिक बनने में सक्षम नहीं है।

उच्च शिक्षा में सुधार हेतु कुछ सुझाव

आज जब हम अपने देश की उच्च शिक्षा व्यवस्था पर दृष्ट्रिपात करते है तो लगता है कि हम सम्भवता सही दिशा मे नहीं बढ़ रहे है। शिक्षा के सुपरिभाषित प्रयोजनो तथा उद्देश्यो की दृष्टि से हमारे देश की उच्च शिक्षा व्यवस्था मे पर्याप्त परिवर्तन की आवश्यकता है। स्वतन्त्र भारत की शिक्षा का पुर्नगठन राष्ट्रीय आदर्शो को ध्यान में रखकर किया जाये। इसके लिये अनेक विद्वानो ने सुझाव दिये है जिनका सार हम इस प्रकार रख सकते हैः—

- हमारी उच्च शिक्षा में कहीं न कहीं अंग्रेजी शासन की छाप है जो देश के वातावरण के प्रतिकूल थी अतः इसे स्वतन्त्र भारत मे राष्ट्र के अनुकूल बनाया जाये।
- अब तक की शिक्षा में अंग्रेजी पर अत्यधिक बल दिया है। जिसके अनेक दुष्परिणाम निकले है। अतः भारतीय शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषायें बने।
- प्रचलित शिक्षा द्वारा धर्मविहीनता और नैतिक पतन आ गया है अतः भारतीय शिक्षा में धार्मिक तथ्यों का समावेष करके भारतीयों का नैतिक उत्थान किया जाये।
- शिक्षा को सैद्धान्तिक बनाने के बजाय व्यावहारिकता पर आधारित किया जाये।
- अब तक शिक्षा के विकास की गति बहुत मन्द रही है। इसे तीव्र किया जाये।

सरकार की ओर से शिक्षा को राष्ट्र उपयोगी बनाने के प्रयास निरन्तर किये जाते रहे हैं परन्तु उच्च शिक्षा अब भी स्वतन्त्र भारत के अनुकूल नही बन सकी है।

निष्कर्ष

शिक्षा किसी भी देश की आधारशिला होती है। उच्च शिक्षा का प्रसार वहाँ के मानव संसाधन को दर्शाता है अपनी दिशाहीनता के परिणामस्वरूप आज की शिक्षा व्यवस्था विद्यमान परिवेश और आवश्यकताओं की दृष्टि में अर्थहीन हो गयी है। आज भारतीय उच्च शिक्षा कई समस्याओ से ग्रसित है जैसे– अनुशासनहीनता की समस्या, शिक्षा स्तर में गिरावट की समस्या, दोषपूर्ण पाठयक्रम, दोषपूर्ण परीक्षा प्रणाली, उच्च शिक्षा में उचित संसाधनो का अभाव इत्यदि।

आज तक गठित सभी समितियों ने उच्च शिक्षा के समक्ष उपस्थिति समस्याओं के समाधान हेतु सुझाव प्रस्तुत किये। उच्च शिक्षा की दिशा एंव दशा मे सुधार हेतु अनेक सुझाव दिये किन्तु उन सुझावो को सही मूर्त रूप न मिल पाने के कारण वे समस्यायें जस की तस हमारे सामने उपस्थित है।आज आवश्यकता है कि हम सभी सुझावो को मूर्त रूप देते हुये उन समस्याओ से निपटने का प्रयास करें तथा 21 वीं शताब्दी में भारत को प्रगति के पथ पर अग्रसित करें।

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

शिक्षा के व्यावसायिक मूल्य

मदन मोहन[1], डॉ. प्रवेश कुमार[2]
[1]बी.एड. छात्र प्रथम वर्ष
[2]असिस्टेंट प्रोफेसर
राजकीय रजा पी.जी. कॉलेज रामपुर।

शिक्षा मानव जीवन का समग्र एवं महत्वपूर्ण भाग है। इसके द्वारा व्यक्ति की समस्त शारीरिक मानसिक और सामाजिक शक्तियों का विकास होता है शिक्षा से व्यक्ति समाज का उत्तरदाई घटक बनकर चरित्र्वान नागरिक बनकर समाज की सर्वज्ञ उन्नति में अपनी शक्ति का उत्तरोत्तर प्रयोग करने की भावना से ओतप्रोत होकर संस्कृति तथा सभ्यता को पुनर्जीवित एवं पुनर्स्थापित करने के लिए आने के लिए प्रेरित करता है।

इस प्रकार एक और शिक्षा मनुष्य का सर्वांगीण विकास करके उसे तेजस्वी बुद्धिमान चरित्रवान एवं वीर बनाती है उसी प्रकार दूसरी ओर शिक्षा समाज की उन्नति के लिए भी एक शक्तिशाली साधन के समान हैं।

शिक्षा के द्वारा समाज में भावी पीढ़ी को मनुष्य उच्च आदर्शों, आशाओं, आकांक्षाओं, विश्वासों को इस प्रकार से स्थानांतरित करता है। कि उनके हृदय में त्याग एवं देश प्रेम की भावना जागृत हो। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति पशु प्रतीत होता है ।

कोठारी आयोग (1964–66) की रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा लोगों की जिंदगी की मूलभूत आकांक्षाओं आवश्यकताओं से संबंधित होनी चाहिए। शिक्षा लोगों के में सामाजिक आर्थिक विकास का एक महत्वपूर्ण औजार है।

शिक्षा से हमारा तात्पर्य सर्वोत्तम मानव शरीर दिमाग तथा आत्मा के निर्माण से है शिक्षा एक सफलतापूर्वक ज्ञान अर्जन तथा कौशल अर्जुन का जरिया है शिक्षा मनुष्य को रूढ़िवादिता अज्ञानता के अंधकार से ज्ञानरूपी प्रकाश की ओर ले जाती है। शिक्षा शब्द में शिक्षधातु का अर्थ सीखना और सिखाना होता है तथा दूसरी धातु साक्ष का अनुशासन में रखना और निर्देश देना होता है।

डीवी के अनुसार शिक्षा एक अनिवार्य सामाजिक गति है उनके अनुसार बिना शिक्षा के समाज प्रगति नहीं कर सकता समाज का प्रगतिशील होना वहां के व्यक्तियों की शिक्षा पर काफी हद तक निर्भर करता है।

शिक्षा और समाज

शिक्षा और समाज कहीं न कहीं एक दूसरे को प्रभावित करते हैं जहां एक और यह बात सत्य है कि समाज शिक्षा को प्रभावित करता है। तो दूसरी ओर यह बात भी सत्य है कि शिक्षा

समाज का स्वरूप निश्चित करती है और शिक्षा द्वारा ही समाज की सांस्कृतिक, धार्मिक राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति को प्रवर्तित किया जा सकता है। अतः शिक्षा को मानव समाज की आधार शिला कहा जाता है। क्योंकि वह समाज का निर्माण करती है उसमें परिवर्तन करती है और विकास करती है एक समय था। जब मानव को भौगोलिक परिस्थितियों का दास का जाता था परंतु आज मनुष्य के द्वारा अपनी भौगोलिक स्थिति में सक्षम हो गया है शिक्षा के द्वारा हवाई जहाज के निर्माण हुआ है और उनकी सहायता कर सकते हैं सदस्यों में अपनी संस्कृति का प्रसार शिक्षा के द्वारा ही करता है, इस प्रकार शिक्षा किसी समाज की संस्कृति का संरक्षण करती है शिक्षा के अभाव में संस्कृति के विकास की कल्पना नहीं की जा सकती शिक्षा के द्वारा मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि की जाती है और उसके आचरण को निश्चित दिशा दी जाती है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य में विचार करने एवं सत्य असत्य में भेद करने की शक्ति का विकास होता है शिक्षा के द्वारा ही समाज में राजनीतिक जागरूकता आती है। और व्यक्ति अपने अधिकार एवं कर्तव्य से परिचित होते हैं बिना उचित शिक्षा के विधान के व्यक्ति केवल राष्ट्र का अंधा भक्त बनाया जा सकता है। यह एक युग था जब शिक्षा के द्वारा मानव में केवल मानवीय गुणों का विकास किया था परंतु रोटी कपड़ा और मकान की समस्या को सुलझाने वाली शिक्षा उस समय नहीं जाती थी।

आज तो समाज की आर्थिक स्थिति का मूल आधार ही शिक्षा है आज समाज के द्वारा व्यक्ति को व्यवसाय अथवा उत्पादन कार्य में निपुण करने का प्रयत्न करती है। यह भी देखा जा रहा है कि जिस समाज में इस प्रकार की शिक्षा का जितना अच्छा प्रबंध क्षेत्र में उतनी तेजी से बढ़ रहा है। बिना शिक्षा के क्षेत्र में विकास नहीं कर सकते हैं।

व्यवसाय

व्यवसाय का शाब्दिक अर्थ है–पेशा, रोजगार, काम–धंध आदि व्यवसाय अंग्रेजी भाषा के profession शब्द का अनिवार्य जो लेटिन भाषा के profiteor से बना है। जिसका अर्थ है स्वीकार करना है सामाजिक विज्ञान शब्दकोश के अनुसार व्यवसाय शब्द का अर्थ ऐसे पेशे सेहै।जो विशेष ज्ञान एवं कौशल की अपेक्षा करते हैं और यह ज्ञान एवं कौशल कम से कम भागों में सैद्धांतिक तौर पर अर्जित किया गया हो। वह किसी विद्यालय संस्थान द्वारा प्रमाणित किया गया हो तथा संबंधित व्यक्तियों को सूचित किया गया हो। व्यवसाय में लाभ कमाने के उद्देश्य की जाने वाली वस्तुओं तथा सेवाओं के क्रय–विक्रय हस्तांतरण तथा सेवाओं से संबंधित रहती हैं।

व्यावसायिक शिक्षा

व्यावसायिक शिक्षा में छात्रों को व्यापार के आधारभूत सिद्धांत एवं प्रक्रियाओं का शिक्षण दिया जाता है। व्यावसायिक शिक्षा को कभी–कभी कैरियर शिक्षा या तकनीकी शिक्षा के रूप में भी जाना जाता है। व्यावसायिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा से आगे की और उच्च स्तर पर हो सकती है।

माध्यमिक स्तर के बाद, व्यावसायिक शिक्षा अकसर अत्यधिक विशिष्ट व्यापार तकनीकी स्कूलों सामुदायिक कॉलेजों प्रौद्योगिकी संस्थानों पॉलीटेक्निक संस्थानों द्वारा प्रदान की जाती है।

व्यवसाय व तकनीकी दो ऐसे शब्द हैं जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हम सभी के साथ जुड़े हैं। तकनीकी शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा का अंग है किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था उसके व्यावसायिक विकास पर निर्भर करती है व्यावसायिक शिक्षा व्यक्ति को किसी कार्य व्यवसाय से संबंधित तकनीकी प्रशिक्षण प्रदान करती है ताकि वह उस व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन कर सके।

व्यावसायिक शिक्षा कामगारों को दी जाने वाली शिक्षा या प्रशिक्षण है इसकी उत्पत्ति कार्य प्रशिक्षण अथवा कार्य अभ्यास से मानी जाती है इस प्रकार की शिक्षा प्रशिक्षण जिसमें कामगार भाग लेता है को व्यावसायिक शिक्षा कहते हैं कार्य में शिक्षा के दो प्रकार हैं।

1. जो व्यक्ति को रोजगार में प्रवेश के लिए तैयार करें।
2. रोजगार में प्रवेश के बाद व्यक्ति की कार्य क्षमता को बढ़ाने के लिए।

व्यावसायिक शिक्षा के उद्देश्य

व्यावसायिक शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

1. प्रत्येक व्यक्ति की रोजगार क्षमताओं को बढ़ाना और उनकी रुचि अनुसार उनको शिक्षा और रोजगार देना।
2. कुशल जनशक्ति की मांग और आपूर्ति के बीच अंतर को कम करना।
3. शिक्षा के अवसरों में विभिन्नता लाना।
4. विद्यार्थियों में आत्मविश्वास लाना।
5. उद्देश्यविहीन एवं रुचिविहीन शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों को विकल्प उपलब्ध कराना।
6. अधिक संख्या में स्वरोजगार आधारित पाठ्यक्रमों को तैयार करना।

रोजगारकेविशेषक्षेत्रकेलिएतैयारकरनेमेंव्यावसायिकशिक्षाकीभूमिका–

शिक्षा प्राप्त करना हर बच्चे का अधिकार है हम सभी सहमत हैं शैक्षिक प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जो विद्यार्थियों में बुनियादी क्षमता और कौशलों का विकास कर सके ताकि वह एक संतुलित जीवन जीने के लिए तैयार हो सके। और राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया में भागीदार बन सके इसलिए शिक्षा को मजबूत व्यावसायिक आधार प्रदान करने की जरूरत है। व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था न केवल अलग संस्थानों से की जानी चाहिए बल्कि स्कूली शिक्षा के हर स्तर पर पाठ्यक्रम इसे अंतिम रूप से जोड़ा जाना चाहिए। कुछ ऐसा ही राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में किया गया है शिक्षा प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए, कि जिससे छात्रों में आधारभूत

क्षमता, योग्यता और कौशलों का विकास किया जा सके। जिस ज्ञान को विद्यार्थी सीख व समझ रहा है। उसका प्रयोग भी होना चाहिए यदि सीखे गए ज्ञान का जीवन में उपयोग नहीं होता है। तो वह शिक्षा अपूर्ण और अधूरी मानी जाएगी, और ज्ञान अनुपयोगी और बेकार हो जाएगा इसलिए कहा जाता है कि ज्ञान की सार्थकता तभी है, सीखे गए सैद्धांतिक ज्ञान का व्यावहारिक उपयोग कर सकें।

संदर्भ

1. *भटनागर, एस एस एवं कुमार एसः समकालीन भारत एवं शिक्षा, आर लाल पब्लिकेशन मेरठ।*
2. *माथुर, एस एस एवं पाठक, पी डीः शिक्षण एवं अधिगम, अग्रवाल पब्लिकेशन एडिशन 2016/17।*
3. *www-hindivibhag-com*
4. *https%//en-m-wikipedia-org*
5. *www-mimirbook-com*

वर्तमान परिपेक्ष्य में शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों का महत्व

कु. प्रीति
रिर्सच स्कोलर, फैक्लटी ऑफ एजुकेशन,
दयालबाग एजुकेशनल इन्स्टीट्यूट(डीम्ड यूनिवर्सिटी) दयालबाग आगरा।

मानवीय मूल्य, वे मानवीय मान, लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। वे मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इन मूल्यों का एक सामाजिक–सांस्कृतिक आधार या पृष्ठभूमि होती है, इसीलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में हमें भिन्नता मिलती है। शिक्षा वह है जो व्यक्ति को मानवीय बनाये बिना शिक्षा के अभाव में व्यक्ति न तो सामाजिक और न ही व्यवहारिक बन पाता है। शिक्षा के द्वारा बालक का सामाजिक एवं व्यवहारिक विकास कर बालक को विकास की ओर अग्रसर कर सकते है। एक बालक सभ्य समाज का सदस्य य सुनागरिक एवं सुव्यवहार तभी कर पाएगा जब उसने मानवीय मूल्य का समावेश किया हो। ये मानवीय मूल्य बालक में शिक्षा के माध्यम से ही उत्पन्न किये जा सकते है। मानवीय मूल्य ही वह कड़ी है जो व्यक्तिगत अनुभवों और निर्णयों, उद्देश्यों तथा कार्यो को जोड़ता है। सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को समझने में भी मानवीय मूल्य इसी प्रकार की भूमिका का निर्वाह करते है। मूल्य व्यक्ति व समाज के व्यवहारों को नियंत्रित व सही मार्ग की ओर निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। मानवीय मूल्य शिक्षाविदों अथवा उपदेशकों द्वारा विकसित किया गया कोई अमूर्त सिद्धान्त नही है अपितु जीवन में जड़े विचार एवं नियम है जिनका औचित्य कई तरह से सिद्ध किया जा सकता है। मानवीय मूल्य सत्य, प्रेम और सेवा भाव, शांति, अहिंसा, न्याय मनुष्य के लिये अतिअवश्यक होते है।

प्रस्तावना

मानव प्रकृति की एक अद्भुत रचना होने के साथ–साथ बौद्धिक प्राणी भी है जिसने अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए अथक प्रयास किया है। मानव ने बौद्धिक प्राणी होने के कारण अपने आस–पास के वातावरण से निरन्तर सीखने का प्रयास किया और व्यावहारिक रूप से विकास की प्रक्रिया अपनाई। मानव ने अपने सीखने की प्रवृति से स्वयं को विकसित किया। यही सीखने का सतत् प्रयास ही शिक्षा कहलाता है। वस्तुतः शिक्षा अपने परिष्कृत एवं शुद्ध रूप से मानव को विवेकशील बनाती है। इसी कारण मनुष्य को प्रकृति की सर्वोत्तम कृति होने का गौरव प्राप्त है। मानव जीवन एवं मानव जीवन में शिक्षा का अत्याधिक महत्व है।

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा एक ऐसी सामाजिक एवं गतिशील प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात गुणों का विकास करके उसके व्यक्तित्व को निखारती है और सामाजिक वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बनाती है। यह प्रक्रिया व्यक्ति को उसके कर्त्तव्यों का ज्ञान कराते हुए उसके विचार एवं व्यवहार में समाज के लिए हितकर परिवर्तन करती है।

शिक्षा प्रक्रिया अनवरत रूप से जीवन–पर्यन्त चलती रहती है। व्यक्ति सदैव कुछ न कुछ अनुभव प्राप्त करता रहता है और इन्ही अनुभवों से वह कुछ न कुछ सीखता रहता है। स्पष्ट है कि शिक्षा कोई ऐसी प्रक्रिया नही जो एक निश्चित अवधि व विद्यालय जीवन में ही समाप्त हो जाए। अतः शिक्षा एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

महात्मा गॉधी– ''शिक्षा से अभिप्राय बालक एवं मनुष्य के शरीर, मन और आत्मा में निहित सर्वोत्तम शक्तियों के सर्वांगीण विकास है।''

फ्रोबेल– ''शिक्षा एक प्रक्रिया है जो कि बालकों की अन्तःशक्तियों को बाहर प्रकट करती है।''

शिक्षा व्यक्ति के प्रत्येक पहलू को विकसित करके उसका चारित्रिक निर्माण करती है अर्थात् मानवता का पाठ पढ़ाती है। शिक्षा मानव बुद्धि का परिमार्जन करती है और उसकी विभिन्न मानसिक शक्तियों का स्मरण, चिन्तन, तर्क आदि का समुचित विकास कर उसे एक विवेकशील प्राणी बनाती है।

मानवीय मूल्यों का अर्थ

मानवीय मूल्य वे मानवीय मान, लक्ष्य या आदर्श हैं जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। वे मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण समझते हैं। इन मूल्यों का एक सामाजिक–सांस्कृतिक आधार या पृष्ठिभूमि होती है, इसीलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में हमें भिन्नता मिलती है।

राधाकमल मुकर्जी ने लिखा है, ''मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएँ एवं लक्ष्य हैं जिनका अन्तरीकरण सीखने या सामाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से होता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अधिमान, मान तथा अभिलाषाएँ बन जाती हैं। आपके विचार से समाज वैज्ञानिकों द्वारा मूल्य को उचित रूप से परिभाषित नहीं किया गया है। उदाहरणार्थ, मनोविज्ञान में मूल्यों को केवल अधिमानों के रूप में परिभाषित किया गया है, जबकि अन्य सामाजिक विज्ञानों के मूल्यों को क्रियाशील अवश्यकरणीय या कर्त्तव्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। परन्तु ये सब मूल्यों की वास्तविक प्रकृति को स्पष्ट नहीं करते।

मूल्यों की उत्पत्ति एक सामाजिक संरचना विशेष के सदस्यों के बीच होने वाली अन्तःक्रियाओं के फलस्वरूप धीरे–धीरे होती है। वास्तव में मनुष्य को अपने परिस्थितिगत पर्यावरण से एक संतुलन बनाए रखने की आवश्यकता होती है, अपने जीवन–निर्वाह व भरण–पोषण सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना होता है, अपने समाज या समूहों के अन्य लोगों के साथ सामाजिक संबंधो का सामना करना होता है, अपने समाज या समूहों के अन्य लोगों के साथ सामाजिक–जीवन में भागीदार बनना पड़ता है एवं अपने व्यक्तित्व व संस्कृति के बीच आदान–प्रदान की प्रक्रिया में भी सम्मिलित होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यदि समाज के सदस्यों के लिए समाज द्वारा कुछ अधिमानों, मानदंडों तथा सामूहिक अभिलाषाओं को व्यवहार के आधार के रूप में प्रस्तुत न किया जाए तो समाज में अव्यवस्था, असुरक्षा और अशांति का ही राज्य होगा। इस स्थिति को टालने के लिए ही समाज द्वारा मान्यताप्राप्त कुछ मानदंड, इच्छाएँ एवं लक्ष्य विकसित किए जाते हैं और वे समाज में प्रचलित रहते हैं, जिन्हें कि व्यक्ति सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित कर लेता हैं। अतः मनुष्य को मूल्य अपने जीवन से, अपने पर्यावरण से, अपने–आप (स्वयं) से, समाज और संस्कृति से ही नहीं अपितु मानव–अस्तित्व व अनुभव से प्राप्त होते हैं।''

मुकर्जी के अनुसार 'मानवीय मूल्य' वे लक्ष्य तथा संतोष है जिन्हें मनुष्य तथा समाज जीवन तथा मस्तिष्क के विकास व विस्तार की प्रक्रिया में अपने लिए स्वीकार कर लेता है, जो व्यक्ति के आचरण में अन्तर्निष्ठ होते हैं और जो स्वयं साध्य होते हैं। उदाहरण 'सत्य', 'शिव' और 'सुन्दर' से सम्बन्धित मूल्य मनुष्य के आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित हैं जो स्वतः ही पूर्ण हैं। इसके विपरीत, 'मावीय मूल्य' वे मूल्य हैं जिन्हें मनुष्य और समाज प्रथम प्रकार के मूल्यों की सेवा हेतु एवं उन्हें उन्नत करने के साधन के रूप में मानते हैं। स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सुरक्षा, पेशा, प्रस्थिति आदि से सम्बन्धित मूल्य 'मानवीय मूल्य' हैं क्योंकि इनका उपयोग कतिपय लक्ष्यों व संतोषों की प्राप्ति के साधन के रूप में किया जाता है। सभी मूल्य एक ही स्तर के नहीं होते अपितु उनमें एक संस्तरण देखने को मिलता है। इस संस्तरण का सम्बन्ध मूल्यों के आयामों से होता है।

मूल्यों के तीन आयाम–(1) जैविक, (2) सामाजिक एवं (3) आध्यात्मिक हैं। सामाजिक मूल्य स्वास्थ्य, जीवन–निर्वाह, कुशलता, सुरक्षा आदि से सम्बन्धित होते हैं। सामाजिक मूल्य सम्पत्ति, प्रस्थिति, प्रेम तथा न्याय सम्बन्धी होते हैं तथा अध्यात्मिक मूल्य सत्य, सुन्दरता, सुसंगति तथा पवित्रता विषयक होते हैं। आध्यात्मिक मूल्य का स्तर सबसे ऊँचा होता है क्योंकि इसकी विशेषता आत्म–लोकातीतत्त्व हैं। इसीलिए यह साध्य मूल्य या अन्तर्निष्ट मूल्य या लोकातीत मूल्य का प्रतिनिधित्व करता है। इसके बाद सामाजिक मूल्यों का स्थान होता है जिसका कि उद्देश्य सामाजिक संगठन व सुव्यवस्था को बनाए रखना होता है। इसीलिए इन्हें साधन मूल्य, ब्राह्य मूल्य या क्रियात्मक मूल्य की संज्ञा दी जाती है। अन्त में, जैविक मूल्यों का स्थान है जोकि जीवन को बनाए रखने तथा आगे बढ़ाने के लिए होते हैं और इसीलिए इन्हें भी साधन, ब्राह्य या

क्रियात्मक मूल्य कहा जाता है। इन सभी बातों को मुकर्जी ने एक सारणी के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है। मानव जीवन का आरम्भ, अस्तित्व व निरन्तरता जैविक आधार पर ही निर्भर है–शरीर बना रहेगा, स्वस्थ व उपयुक्त होगा तभी जीवन–निर्वाह एवं उसकी अग्रगति सम्भव होगी। इसीलिए मूल्यों के सोपान या संस्तरण में जैविक मूल्यों का उल्लेख पहले किया गया है। पर जैविक जीवन समाज की सहायता के बिना सम्भव नहीं। इसीलिए जीवन मूल्यों के बाद ही सामाजिक मूल्यों का स्थान है पर जैविक व सामाजिक जीवन की वास्तविक सार्थकता 'सत्यम, शिवम, सुन्दरम की प्राप्ति में ही निहित है जोकि जैविक व सामाजिक स्तर से गुजरते हुए ही सम्भव है। इसीलिए आध्यात्मिक मूल्यों को सबसे अन्त में, मानव–जीवन के अन्तिम लक्ष्य के रूप में रखा गया है।

शिक्षा में मानवीय मूल्यों का महत्व

1. शिक्षा के द्वारा मानवीय मूल्यों के माध्यम से आदर्श नागरिक का विकास होता है।
2. मूल्यों के द्वारा मानव अपने धार्मिक एवं सामाजिक कर्त्तव्यों को पूरा करते है।
3. मानव व्यवहार को समझने के लिए मानवीय मूल्यों का अध्ययन आवश्यक है।
4. मूल्य सामाजिक सम्बन्धों को सन्तुलित करने तथा सामाजिक व्यवहारों में एकरूपता लाने में सहायक होते है।
5. व्यक्ति और समूह की क्षमता का मूल्यांकन मूल्यों के आधार पर ही किया जाता है।
6. मूल्यों द्वारा व्यक्ति में यह जानने की क्षमता उत्पन्न होती है कि दूसरे लोगों की निगाह में उनका क्या स्थान है।
7. मूल्यों द्वारा व्यक्ति सामाजिक न्याय के पक्ष में होता है।
8. मूल्यों के द्वारा भौतिक संस्कृति का महत्व बढ़ता है।
9. सफल सामाजिक जीवन के लिये अनुशासन अनिवार्य है। मूल्यों द्वारा आन्तरिक, आत्मानुभूति, स्वेच्छापूर्ण, स्वीकारात्मक एवं निर्माणात्मक अनुशासन का विकास होता है।

शिक्षा एवं मानवीय मूल्यों में संबंध

शिक्षा वह है जो व्यक्ति को मानवीय बनाये बिना शिक्षा के अभाव में व्यक्ति न तो सामाजिक और न ही व्यवहारिक बन पाता है। शिक्षा के द्वारा बालक का सामाजिक एवं व्यवहारिक विकास कर बालक को विकास की ओर अग्रसर कर सकते है। एक बालक सभ्य समाज का सदस्य य सुनागरिक एवं सुव्यवहार तभी कर पाएगा जब उसने मानवीय मूल्य का समावेश किया हो। ये मानवीय मूल्य बालक में शिक्षा के माध्यम से ही उत्पन्न किये जा सकते है; परन्तु शिक्षा में जब तक नैतिक पक्ष का व्यवहारिक रूप से समावेश नही किया जायेगा तब तक बालक में मानवीय

मूल्य का विकास किया जाना पूर्ण रूप से सम्भव नहीं है। बिना नैतिक शिक्षा के बालक में सामाजिक एवं व्यवहारिक गुणों के प्रति उन्मुख नहीं कर सकते। आज के युग में सर्वाधिक जरूरत इस बात की है कि युवा एवं प्रतिभाशाली बालको के विकास के लिए शिक्षा के पर्याप्त साधन उपलब्ध कराये जाए। तभी उसके अन्दर सीखने की उत्कृष्ठा या भावना जाग्रत होगी और शिक्षा का औचित्य भी प्रासांगिक होगा। यदि हम विधार्थियों को शिक्षा के साथ–साथ मूल्यों की ओर भी प्रेरित करे तो हम अपनी संस्कृति के अस्तित्व को स्थिर बनाये रख सकते है।

शिक्षा के माध्यम से बालकों में मानवीय मूल्य विकसित किये जा सकते है। ये मानवीय मूल्य ही बालक के विकास को महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करते है। जीवन की सफलता का आधार शिक्षा में ही निहित रहता हैं। मूल्यों को विकसित करने हेतु प्रथम केन्द्र परिवार होता है।

स्वामी विवेकानन्द–हमें वह शिक्षा चाहिए जिससे व्यक्ति चरित्रवान बनता है और उसकी प्रतिभा व मन की शक्ति का विस्तार होता है।

मानवीय मूल्य बिना नैतिकता के संभव नहीं है। नैतिकता के बिना न तो बालक में मानवीय मूल्य विकसित किये जा सकते है और न ही उसे मानव बनाया जा सकता है। आज पूरा समाज व राष्ट्र मूल्यहीनता के कारण पतन की ओर बढ़ता चला जा रहा है। आज की शिक्षा केवल बालक को ज्ञान कराती है व विशेष जानकारी उपलब्ध कराती है। वह निर्माणपरक कार्य नहीं करती है तथा व्यक्तित्व निर्माण करने की क्षमता भी विकसित नहीं करती है। आज की शिक्षा के द्वारा बालको में ऐसे आदर्श भाव पैदा नहीं हो पा रहे हैं जो कि वह सर्वजनहित के बारे में सोच सके। नैतिक शिक्षा के द्वारा एक बालक में मानवीय मूल्य अधिक व्यवहारिक रूप से विकसित किये जा सकते है।

मैथिलीशरण गुप्त जी ने कहा, यदि हम वास्तविक रूप में प्रगति करना चाहते है। तो हमें मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना होगा।

मूल्य एक व्यक्ति के जीवन के वे अन्तिम लक्ष्य होते है जिनका चयन एक सतत् प्रक्रिया द्वारा है। एक व्यक्ति के लक्ष्य, आकांक्षा, विश्वास, रूचि, चिन्तन इत्यादि मूल्यों के सूचक होते हैं। जिनके विकास पर मूल्य निर्भर रहते है।

निष्कर्ष

मूल्य–व्यवस्था व्यक्तित्व की संरचना को परिभाषित तथा नियन्त्रित करती है और इसके बदले में व्यक्ति अपने आचरणों द्वारा मूल्यों की गुणात्मक परिशुद्धि व परिमार्जन करता है। व्यक्ति मूल्यों के इस आपसी सम्बन्ध के कारण ही मूल्यों में परिवर्तन, परिवर्धन तथा परिमार्जन होता रहता है। व्यक्ति, समाज और मूल्य में पाए जाने वाले पारस्परिक सम्बन्ध व प्रभाव को दर्शाने के लिए मुकर्जी ने इन्हें एक दीपक की बत्ती, तेल और ज्योति कहा है। सत्य, प्रेम, शांति, सदाचरण शास्वत, मूल्य शिक्षा के आधार होना चाहिए क्योंकि इन नैतिक मूल्यों के बिना कोई भी संविधान

या लोकतन्त्र कारगर नहीं हो सकता। यदि समाज अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्तित्व के परम या सर्वोच्य मूल्यों की नियमित रूप से पूर्ति करता रहे। व्यक्तित्व की सर्वोत्तम खोज सुन्दरता, अच्छाई तथा प्रेम के उच्चतम आध्यात्मिक मूल्य हैं। इसी सुन्दरता, अच्छाई तथा प्रेम के आधार पर सामाजिक सम्बन्धों व संस्थाओं की सृष्टि और पुनःसृष्टि होती है। सम्पूर्ण मानव–समाज के मानव–कल्याण के लिए इन मूल्यों का संरक्षण आवश्यक है।

सन्दर्भ

1. *चतुर्वेदी, एस. एवं मलिक, एस. (2017)शिक्षा के दार्शनिक एवं सामाजिक परिप्रेक्ष्य(द्वितीय संस्करणं), राखी प्रकाशन प्रा. लि. सिकन्दरा, आगरा।*
2. *सिहं, आर. एवं सेवानी ए.(2013) भारतीय समाज तथा शिक्षा(प्रथम संस्करणं), अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।*
3. *शर्मा, आर.(2005) नैतिक मूल्य शिक्षा (प्रथम संस्करणं), विवेक बाहरी पुस्तक सेसार, जयपुर।*
4. *शर्मा, आर. एवंशर्मा, वी. पी. (2017)मूल्य शिक्षा(प्रथम संस्करणं), अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।*
5. *तोमर,नीतू(2016) मानवीय मूल्यों का नैतिक महत्व एक समाजिक विवेचन,पोस्ट डॉक्टोरल फेलो बहादुरशाह जफर मार्ग, नई–दिल्ली–110002.*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

प्रेमलता
एम.एड. चतुर्थ सेमेस्टर छात्रा
महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय कैम्पस बरेली।

''आधुनिक मानव ने पक्षी की तरह उड़ना सीख लिया है, सागर में मछली की तरह तैरना सीख लिया है, लेकिन पृथ्वी पर मनुष्य की तरह चलना भूल गया है।''—डॉ0 राधाकृष्णन

वर्तमान परिपेक्ष्य में मूल्यों की कमी के कारण गम्भीर संकट की स्थिति के लक्षण परिलक्षित हो रहे हैं अपराधों का ग्राफ दिनों दिन बढ़ता जा रहा है शायद ही कोई ऐसा दिना होता होगा जब समाचार पत्रों में हिंसा अराजकता, और भ्रष्टाचार की सुर्खियाँ मुख्य पृष्ठ पर न दिखाई देती हों। आज जीवन के सभी क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों की कमी वर्तमान समय में मूल्यों के संकट के कारण सम्पूर्ण विश्व में शिक्षा में मूल्या परक व मानवीय मूल्यों पर आधिारत शिक्षा की आवश्यकता महसूस की जा रही है। आज भौतिक बादी प्रवृत्ति के कारण हमारे देश में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व मे मूल्यों का ह्रास होता नजर आ रहा है बिना मूल्यों के मनूष्य का व्यवहार निश्चित नहीं हो सकता, नियमित नहीं हो सकता, मनुष्य के आधार विचार को सही दिशा देने के लिए मूल्य शिक्षा की आवश्यकता होती है, आज समाज में साधारणतयः यह धारणा है कि मेहनतकश व ईमानदार लोग पिस रहे हैं और झूठ तथा फरेब का रोजगार करने वाले फल फूल रहे हैं। इस धारणा से समाज में न केवल मानवीय मूल्यों का ह्रास हुआ है वरन शिक्षा के क्षेत्र में अनुशासन हीनता, श्रम के प्रति अनास्था, स्वकर्त्तव्य के प्रति उदासीनता बढ़ी है। प्राचीन काल में आचार्य, शिक्षा में मूल्यों को शामिल कर शिष्यों को शिक्षा प्रदान किया करते थे परन्तु समय–समय में मूल्यों के प्रति इतनी गम्भीर अवहेलना प्रदर्शित की गई है कि आज विद्यार्थी व अध्यापकों में चारित्रिक पतन दिखता नजर आ रहा है जिसके कारण समाज में अनेकोनेक समस्याएँ दिन प्रतिदिन दिखाई दे रही हैं।

शिक्षा

जीवन में सफलता का आधार वास्तव में शिक्षा में ही निहित है। शिक्षा द्वारा ही विकल्पों में से उत्तम को चुनने की कुशलता विकसित होनी चाहिए, शिक्षा उत्तम विकल्प के चयन की प्रक्रिया है। दुनिया में शन्ति, अहिंसा, सहनशीलता, भाईचारे का सन्देश शिक्षा के द्वारा ही प्रसारित प्रचारित किया जा सकता है। शिक्षा ही समस्य मानवीय मूल्यों का संवर्द्धन व संरक्षाण करती है। शिक्षा लोगों के ज्ञान और कौशल उसके जीवन में लागू होता ह। इस बात पर ध्यान देने की जरूरत है कि शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति और तकनीकि दक्षता नहीं हो, हांलाकि आज के जमाने में यह चीजें बहुत ही महत्वपूर्ण हैं लेकिन असल में शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो

उन्हें एक जिम्मेदार नागरिक बना सके, ऐसा शिक्षा में मानवीय मूल्यों के समावेश से ही सम्भव है।

शिक्षा वही जो जीवन मूल्य बन जाये

विविध शिक्षा–विदों के पास रोचक ढ़ंग से छात्रों तक अध्ययन सामग्री व प्रेरक सन्देश पहुँचाने के ढ़ेरों तरीके होते हैं, पर मूल बात यही है कि क्या मौजूदा शिक्षा मानवीय मूल्यों को समूचित महत्व देने को तैयार है? तर्कसंगत बात तो यह है कि यदि शिक्षा ठीक से दी जाये तो यह शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। पर आज जब धर्म अर्जन की क्षमता हासिल करने को सर्वाधिक महत्व दिया जा रहा है, इन मानवीय मूल्यों को शिक्षा में कितना महत्व मिल पायेगा यह सवाल हमारे सामने है।

मूल्य

मानव मूल्य वह सदगुण समूह है या ऐसी आचार सहिंता है जिसे मनुष्य अपने संस्कारों व पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए अपनी जीवन शैली का निर्माण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। यह एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते हैं, तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति व परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत व परिपोषित होते हैं।

मूल्य शब्द अपने आप मूल्यवान है क्योंकि मूल्य श्रेष्ट विचार के रूप में होते हैं और व्यवहार के रूप में प्रकट होते हैं। मूल्य को अंग्रजी शब्द वेल्यू से ही समझा जाता है, जिसका अर्थ किसी वस्तु की कीमत या उपयोगिता से लगाया जाता है। भाग की धर्मग्रन्थों में मूल्यों के लिए शील शब्द का उपयोग किया गया है, जिसका उपयोग चरित्र के लिए किया गया है। अतः मूल्य का सम्बन्ध हमारे आचार व्यवहार से लगाया जा सकता है। आचार व्यवहार में अधिकाधिक अच्छाईयाँ ही मूल्य को प्रदर्शित करती हैं। मूल्य एक मानक है यही मानक व्यक्ति को अच्छे कर्म के लिए प्रेरित करता है। अनेक विद्वानों ने परिभाषाओं को, मूल्य को एक चारित्रित विशेषता बताया अतः मूल्य हमारे आचार व्यवहार के नियामक तत्व हैं, जो हमारे लक्ष्य प्राप्ति की ओर प्रेरित करते हैं। ''मूल्य आदर्श–विश्वास या मानक है, जिन्हें सम्पूर्ण समाज या समाज का एक बड़ा अंश धारण किये हुए है।'' – जॉन

मानवीय मूल्य

इसमें शक की कोई गुंजाईश नहीं है कि 21 वीं सदी में मूल्य आधारित शिक्षा की वेहद आवश्यकता है क्योंकि वर्तमान समय मूल्यों की स्थापना का समय नहीं रहा बल्कि यह समय मूल्य विघटन का समय है। ऐसे समय उम्मीद की एक किरण नजर आती है वह है मानवीय मूल्य आधारित शिक्षा प्रदान करना। मनुष्य जीवन पर्यन्त सीखता रहता है तथा उसकी अनुभवों में निरन्तर अभिवृद्धि होती है। जैसे–जैसे मनुष्य अधिकाधिक सीखता जाता है और परिपक्वता की

ओर बढ़ता जाता है वह ऐसे अनुभव भी प्राप्त करता रहता है, जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं यह निर्देशन जीवन को दिशा प्रदान करता है, इन्हें ही मानवीय मूल्य कहा जाता है। यह मानव जीवन के लक्ष्यों से सम्बन्धित होते हैं, हमारे आचरण को प्रेरित करते है। अतः मानवीय मूल्यों का जिनता अधिक महत्व होगा, उतना ही वेहतर समाज का निर्माण किया जा सकता है।

मानवीय मूल्यों की अर्न्तवस्तु

मानवीय मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छायें एवं लक्ष्य हैं, जिन्हें मानव समाजीकरण के माध्यम से सीखता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अभिलाषायें बन जाती हैं। मानवीय मूल्य ही वह कड़ी है जो व्यक्तिगत अनुभवों और निर्णयों के उद्देश्यों तथा कार्यों को जोड़ता है।

आधारभूत मानवीय मूल्य

यहाँ मानवीय मूल्यों की एक सूची प्रस्तुत की जा रही है जिसके प्रति आम लोग समान रूप से आस्था प्रकट करते हैं अर्थात इन मूल्यों को सार्वभौम व सर्वगत मूल्यों की कोटि में रखा जा सकता है ये हैं–

- सत्यतता (सत्य)
- प्रेम और सेवा भावना
- शान्ति
- अहिंसा
- न्याय
- परोपकारता
- निःस्वार्थता
- मानवता के प्रति आदर
- करूणा व सहानुभूति

सत्यः किसी तथ्य की सत्यता किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा या आकांक्षा पर निर्भर नहीं करती बल्कि इसका अस्तित्व इच्छाओं, हितों एवं विचारों से स्वतन्त्र होता है। केवल सत्य के अस्तित्व का ही नहीं बल्कि सत्य के ज्ञान का भी साध्य मूल्य होता है।

प्रेमः मानवीय मूल्यों में वेहद मौलिक है, जो दूसरों के प्रति आदर व सेवा भावना को व्यक्त करता है। यह मनुष्य के आत्मा की एक अद्भुत विशिष्टता है और सार्वभौमिक सत्य भी।

शान्तिः एक भावात्मक मूल्य है जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक है, यह एक सन्तुलित परन्तु गत्यात्मक मानसिक स्थिति है।

अहिंसाः यह मूल्यों में सर्व महत्वपूर्ण मानी जाती है, इसके बिना सर्वोच्च सत्य की सिद्धि असम्भव है। यह ऐसी मानवीय प्रवृत्ति है, जिसमें व्यक्ति प्राणियों तथा उनके परिवेश को हर प्रकार की हानि से सुरक्षित रखने की चेष्टा करता है जिसके आधार पर ही आदर्श समाज का संगठन किया जा सकता है।

न्यायः सुकरात व प्लेटो ने इसे उच्चतम मानवीय मूल्यों में स्वीकार किया है। न्याय एक सामाजिक मूल्य है जो अहिंसा व स्नेह के नियमों से संचालित होता है इससे ही मानवाधिकारों की संकल्पना का प्रादूर्भाव हुआ।

आज के इस विज्ञान युग में भारतीय मानवीय मूल्य धर्म से प्रभवित न होरक भौतिकता से प्रभावित हैं। वर्तमान युग में प्राचीन मूल्यों पर चलना ''तलवार की धार'' पर चलने के समान है। परम्परागत प्राचीन मूल्यों एवं वर्तमान मानवीय मूल्यों को यर्थाथ के धरातल पर रखकर उनके समन्वय पर बल दिया जाना चाहिए, अन्यथा सम्भव है हमारी गति ''कौऐ और हंस'' वाली कहानी के समान हो जायेगी।

मानवीय मूल्य के खोज के प्रयास

समय के साथ–साथ मूल्य भी बदलते रहते हैं। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक की यात्रा में मूल्यों का आरोहण तथा अवरोहण का क्रम देखा जा सकता है अर्थात कभी मूल्यों के विकास का समय रहा, तो कभी ह्रास का। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में मूल्यों की दिशा तथा दशा देखने पर सन्तुष्टिजनक मत नहीं दिया जा सकता अतः इन्हें पुनः स्थापित करने की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

1951 के अमेरिकी शैक्षिक नीति आयोग ने पब्लिक स्कूलों के लिए कुछ मानवीय मूल्य निर्धारित किये थे। जैसे– व्यक्ति की नैतिक जिम्मेदारी, संस्थाओं का व्यक्ति के अधीन होना, सामान्य सहमति, सत्य निष्ठा, समानता, भ्रातत्व, आनन्द की खोज, आध्यात्मिक संवर्धन, श्रेष्टता के लिए आदर।

रामकृष्ण मिशन संस्थाएँ पूरे देश में मूल्यों की शिक्षा देने के कार्यक्रमों को चलाने में रूचि लेती हैं, वे समाज सेवा, सार्वभौमिक भाईचारा, तार्किक नैतिक संहिता तथा मानव व्यक्तित्व के विकास पर बल देती हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उल्लिखित है कि हमारा समाज सांस्कृतिक दृष्टि से बहुलवादी है तथा शिक्षा से ऐसे सार्वभौमिक व शाश्वत मूल्यों का विकास होना चाहिए, जो लोगों की एकता व उनके समाकलन की ओर अभिमुक्त हो। इस मूल्य शिक्षा से धार्मिक उन्माद, हिंसा, अन्धविश्वास, भाग्यवाद व रूढ़िवादिता समाप्त हो जागी। शिक्षा नीति के अनुच्छेद 84 में शिक्षा के सामाजिक नैतिक मूल्यों के विकास के लिए एक सशक्त साधन बनाने के लिए कहा गया है। शिक्षा नीति की कार्ययोजना में धर्मनिरपेक्ष वैज्ञानिक तथा मानवीय मूल्यों व समाजसेवा, श्रम के प्रति आदर, छोटे परिवार के मानक में आस्था, वातावरण संरक्षण संस्कृति वोध तथा राष्ट्रीय एकता जैसे मूल्यों के विकास पर बल देने की अनुसंशा की गयी है।

शिक्षा एवं मूल्य की संकल्पना

जीवन में सफलता का आधार वस्तुतः शिक्षा में निहित है, क्योंकि शिक्षा व्यक्ति को समाज में अपनी भूमिका अधिक दक्षता से अदा करने की क्षमता प्रदान करते हैं। समय के साथ–साथ शिक्षा के उद्देश्य भी बदलते रहते हैं। एक ओर तो शिक्षा को व्यवसायोन्मुखी बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है, उत्तम सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण व हस्तांतरण पर भी बल दिया जा रहा है, परन्तु दूसरी ओर सार्वजनिक जीवन में नैतिकता व मानवीय मूल्यों की ह्रास के प्रति ध्यान आकर्षित नहीं किया जा रहा है। विज्ञान के उपयोग से मशीनीकनरण और औद्योगीकरण का युग सामने आया। भौतिकवादी, उपभोगतावादी संस्कृति ने श्रेष्ट मानवीय मूल्यों को छिन्न–भिन्न कर दिया है।

शिक्षात्मक मूल्यों का योगदान

शिक्षात्मक मूल्य वे क्रियायें हैं जो शिक्षा की दृष्टि से अच्छी, उपयोगी एवं मूल्यवान हों, शिक्षात्मक मूल्यों से व्यक्तित्व एवं सामाजिक जीवन को निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं–

- व्यावसायिक कुशलता का विकास
- चरित्र का विकास
- स्वस्थ्य एवं सन्तुलित व्यक्तित्व का विकास
- अच्छी नागरिकता का विकास
- पर्यावरण के साथ अनुकूलन और उसका परिष्कार
- व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति
- सामाजिक कुशलताओं का विकास
- राष्ट्रीय एकता एवं विकास
- नेताओं तथा प्रशिक्षित कार्यकर्ताओं के आदेश आदि।

उपरोक्त शिक्षात्मक मानवीय मूल्य जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं इन्हीं के द्वारा व्यक्ति अपना व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन सफलतापूर्वक जीता है।

भारतीय शिक्षा आयोग के विचार

युवा पीढ़ी के सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों के कमजोर होने से पश्चिमी देशों में कई गम्भीर सामाजिक एवं नैतिक विवाद खड़े हो रहे हैं। कई महान पश्चिमी विचारकों में यह इच्छा पनपने लगी है कि विज्ञान व तकनीकी द्वारा लाये गये ज्ञान व कौशल को नीतिशास्त्र तथा धर्म के सर्वोत्तम मूल्य द्वारा सन्तुलित किया जाये। ऐसी स्थिति में हमारे लिए भी महत्वपूर्ण है कि हम अपनी शिक्षा पद्धति को उचित रूप से मूल्य उन्मुख बनायें।

अतः आवश्यकता है कि हम छात्र छात्राओं में उचित मूल्य विचारों, आदर्शों की स्थापना करें, अर्थात उनके लिए मूल्य परक शिक्षा की उचित व्यवस्था करें। ऐसा नहीं की हमारी सरकार का ध्यान इस ओर नहीं गया हो, भारत सरकार द्वारा सभी गठित आयोगों में मूल्यों उन्मुखी शिक्षा की बात किसी न किसी रूप में की गयी है। जितने भी शिक्षा आयोग और समितियों का गठन किया गया है सभी ने किसी न किसी रूप में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया है।

वर्तमान समय में मूल्यों का ह्रास हमारी शिक्षा के लिए एक गम्भीर चुनौती है, जिसे स्वीकार करके शिक्षा द्वारा ही मूल्यों का विकास करना होगा तथा शिक्षा में सुधार द्वारा ही इन मूल्यों के ह्रास को रोका जा सकता है। विद्यालयों में मूल्यों के विकास के दो प्रमुख आधार हैं– विद्यालयी पर्यावरण एवं शिक्षकों की आदर्श प्रस्तुती।

शिक्षा आयोग (1964–66) के अनुसार विद्यालय का वातावरण, अध्यापकों का व्यक्तित्व एवं व्यवहार विद्यालय में उपलब्ध भौतिक सुविधायें विद्यार्थियों को मूल्योंन्मुख बनाने में विशेष भूमिका निभाते हैं।

शिक्षा हमें ऐसा मनुष्य बनाती है जो स्वयं स्वेच्छा से शाश्वत मूल्यों के पालन का प्रयास करे जिससे व्यक्ति, समाज में सभी का कल्याण सम्भव हो। शिक्षाक में यदि स्वयं की अच्छे मूल्य विकसित होंगे तो शिक्षाक छात्र के लिए प्रेरणा बन सकता है, क्योंकि हर छात्र का आदर्श उसका शिक्षाक ही होता है।

विवेकानन्द की कल्पना ऐसे नवीन समाज की थी जिनके हर सदस्य के व्यक्तित्व में ज्ञान, क्रिया, भक्ति और एकाग्रता समन्वित रूप में मौजूद हो।

शिक्षा व्यक्ति में अनुकलनकारी व्यक्तित्व का विकास करके परिवर्तन की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करती है, इसके लिए शिक्षा व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रशिक्षु की स्वायत्तता व स्वतन्त्रता बाधित न हो। यह शिक्षा ही है जिसके माध्यम से समाज उच्च मानवीय मूल्यों का संरक्षण करता है और साथ में उन्हें प्रोत्साहन भी देता है।

शिक्षा और मूल्य विकास

सुकरात का कहना था की ज्ञान ही सदगुण है अर्थात यदि उचित मूल्यों की जानकारी बालको को दी जाये तो बालकों में निःसंदेह सदगुण आ जायेगा। उनका विश्वास था की मूल्यों की शिक्षा देकर व्यक्ति को उत्तम बनाया जा सकता है । यह सब शिक्षालयों में दी गयी शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा कभी भी मूल्य रहित नहीं हो सकती, शिक्षा ही मूल्या सिखाने का उचित माध्यम है जिसके द्वारा हम मूल्यों का विकास तथा समाज में उनका प्रतिबिम्ब देख पाते हैं और विद्यार्थियों का मूल्य प्रधान परिवेश मूल्यों के बीजा रोपण, अनुकरण व वृद्धि में सहायक होता है।

रविन्द्र नाथ टैगोर के अनुसार– मूल्य शिक्षा की महान उपयोगिता केवल तथ्य एकत्र करने में नहीं है, बल्कि मनुष्य को जानना है और मनुष्य को इस योग्य बनाना है कि वह अपने आप को जान सके।

निष्कर्ष

अतः शिक्षा में मूल्यों की शिक्षा को औपचारिक न बनाकर अनिवार्य कर दिया जाए तो हम पतन की ओर जाते समय व राष्ट्र को रोक सकते हैं। देश, समाज व मानव जाति की शान्ति व सुरक्षा और विकास तथा उसकी खुशहाली का एक मात्र विकल्प मानवीय मूल्यों की शिक्षा देना है, जिससे समाज के प्रत्येक वर्ग का दृष्टिकोण सकारात्मक बन सके, क्योंकि हमारे भारत की मिट्टी के अन्दर अद्भुत सांस्कृतिक समन्वय के तत्व प्राकृतिक रूप से मौजूद हैं, इसलिए हम सब को चाहिए कि हम सभी ह्रदय की विशालता का परिचय देते हुए शिक्षा के वैश्वीकरण को अपनायें, उसे स्वयं समाहित कर शैक्षिक जगत में एक अद्भुत समन्वयात्म सूत्र का प्रचार करें।

अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

पार्वती वर्मा
प्रवक्ता, (समाज कार्य विभाग)
दीक्षित कॉलेज, रामपुर (उ0प्र0)

वर्तमान शिक्षा से हमने असंख्य भौतिक उपलब्धियां प्राप्त की हैं, लेकिन वर्तमान संदर्भ में शिक्षा मानवीय मूल्यों परंपरा व आदर्शों की उपेक्षा कर एकांगी व संवेदनहीन होती जा रही है। संवेदनहीनता की स्थितियां पूरे परिवेश में देखी जा सकती हैं। मूल्यों व आदर्शों के अभाव में दिशाहीन विद्यार्थी हिंसक, क्रूर व अमानवीय वृत्तियों की ओर अग्रसर हो रहे हैं। अपने महापुरुषों के संदेशो, अपनी परंपरा व आदर्शों से अन्जान नई पीढ़ी बेलगाम हो रही है। आधुनिकता की चकाचौंध व प्रदर्शन की प्रवृत्ति ने उन्हें घोर अवसरवादी व अनैतिक बना दिया है। हिंसा, बलात्कार, चोरी, डकैती व आतंक की ओर व्यक्ति तभी बढ़ता है जब उसे सही मार्गदर्शन, उचित शिक्षा व स्वस्थ्य वातावरण नहीं मिलता। तात्कालिक लाभ व भोगवादी प्रवृत्ति ने मनुष्य को संवेदनशून्य व हिंसक बना दिया है।

मानवीय मूल्यों की शिक्षा की योजना के तहत परियोजनाओ के लिए सरकारी एजेंसियों, शैक्षणिक संस्थाओं, पंचायती राज, पंजीकृत सोसायटियों और लाभ न कमाने वाली कम्पनियों को और योजना के मापदंडो एवं उपलब्ध वित्तीय परिव्यय के भीतर संस्वीकृत परियोजनाओं पर कार्य करने के लिए एनजीओ को वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। शिक्षा में संस्कृति और मूल्यों के सुदृढ़ीकरण से संबंधित कार्यकलापों के लिए सहायता–अनुदान–समिति द्वारा अनुमोदित वित्तीय सहायता परियोजना लागत की 100 प्रतिशत सीमा (10 लाख रुपए तक सीमित) तक दी जाती है। पंजीकृत सोसायटियों को अनुदान सच्चाई, शांति, प्रेम, सही आचरण, अंहिसा जैसे सार्वभौमिक मूल्यों और भारत के संविधान में निहित मूल्यों के संवर्धन के लिए अध्यापन और शिक्षण सामग्रियों के विकास, दृश्य–श्रव्य सुविधाओं, शिक्षक–प्रशिक्षण, सम्मेलन, कार्यशाला, अभिभावकों/ समुदाय/अध्यापकों के लिए संगोष्ठियां सृजनात्मक कार्यकलापों, स्कूली बच्चों के लिए रंगमंच, प्रदर्शनी आयोजित करने जैसे कार्यों के लिए दिया जाता है। गैर–सरकारी संगठनो (एनजीओ) को अनुदान दिए जाने के अतिरिक्त योजना शिक्षण पद्धति में सभी स्तरों पर पाठ्यचर्या घटकों में मानवीय और सांस्कृतिक मूल्यों को शामिल करने का लक्ष्य रखती है।[1]

नैतिक मूल्यों का संबंध 'स्व' से है। यहां 'स्व' का अर्थ बुद्धि तथा भावना से है जो संयुक्त रूप से आत्मा के अर्थ में समझा जाता है। यह व्यक्ति के लिए मार्गदर्शक का कार्य करता है चूंकि नैतिक मूल्यों की संख्या एक से अधिक है अतः इन्हे समग्र रूप से मूल्य व्यवस्था (मूल्यतंत्र) के

रूप में समझा जा सकता है। मूल्य–तंत्र अथवा मूल्यों की व्यवस्था एक स्थायी संगठन के समान होती है जो मानव अस्तित्व के विभिन्न स्तरों या आयामों के साथ व्यक्ति के अनुकूलन की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण प्रोत्साहन व उनका मार्गदर्शन भी करती है। मूल्यों की इस व्यवस्था में किसी दो मूल्यों की महत्ता के बीच सापेक्ष संबंध होता है उदाहरणस्वरूप 'ईमानदारी' एक व्यक्ति के लिए 'सफलता' के मुकाबले ज्यादा आवश्यक हो सकती है अतः दोनों के बीच सापेक्ष संबंध होता है। उदाहरणस्वरूप 'ईमानदारी' एक व्यक्ति के लिए अधिक वांछनीय हो सकती है, या अन्य व्यक्ति इसके ठीक विपरीत भी सोच सकता है।

शिक्षा का उद्देश्य छात्रों के चरित्र निर्माण से होना चाहिए। जिसमें मानवीय मूल्यों का भरपूर समावेश हो। आज की आधुनिक शिक्षा छात्रों को एकाकीपन की ओर ले जा रही है। वे शिक्षा तो ग्रहण कर ले रहे हैं। लेकिन शिक्षा का उद्देश्य पूरा होता नहीं दिख रहा है। सतीश चंद महाविद्यालय के बीएड विभाग के प्रवक्ता डा. देवेन्द्र सिंह ने दुबहर में आयोजित शिक्षामित्रों के कार्यशाला को संबोधित करते हुए पांचवें दिन कहीं। उन्होंने कहा कि शिक्षा का उद्देश्य संस्कार एवं उपलब्धि होनी चाहिए। दो घंटे के व्याख्यान में श्री सिंह ने शिक्षामित्रों को एक आदर्श शिक्षक के तमाम मानकों को एक–एक करके अवगत कराया। दुबहर शिक्षा क्षेत्र के एबीआरसी एवं अंग्रेजी के प्रशिक्षक डा. अब्दुल अव्वल ने कहा कि शिक्षा मित्र प्रशिक्षण प्राप्त कर निपुण शिक्षक की भांति विभाग को सेवा प्रदान करने जा रहे हैं। ऐसे में उनसे यह अपेक्षा की जानी चाहिए कि वे अपने सेवाकल के दौरान कर्तव्यों का बखूबी निर्वहन करें। इस मौके पर समाजिक विषय के प्रशिक्षक विद्यासागर गुप्ता, विज्ञान के प्रशिक्षक विजय प्रकाश गुप्ता, हिन्दी के प्रशिक्षक ओमप्रकाश राय, गणित के प्रशिक्षक श्रीकांत दूबे, शिक्षा मित्र चंद्रभान सिंह, अजय पांडेय, मदन मोहन पांडेय, पंकज द्विवेदी, सूर्यप्रताप यादव, संतोश उपाध्याय, सुरेन्द्र राम, संतोष यादव, मो. वसीम, सुनील यादव, राजेश कुमार, लल्लन राम, अनिल कन्नौजिया, जनार्दन प्रसाद आदि मौजूद रहे।[2]

वर्तमान शिक्षण संस्थाओं में लिंग व जाति–भेद की स्थितियां तथा गैर बराबरी की घटनाएं अकसर देखी जाती हैं। पूंजीवादी सभ्यता के प्रभाव के कारण समाज में गैर बराबरी की स्थितियां व अन्य आसामाजिक विकृतियां बढ़ रही हैं। संपन्न व अमीर वर्ग के विद्यार्थी अच्छे शिक्षण संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं और गरीब व वंचित वर्ग का विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने में असमर्थ हो जाता है। इन भेदभाव की स्थितियों के कारण वंचित वर्ग के विद्यार्थियों में अलगाव, संत्रास व आक्रोश की भावनाएं पनपती हैं, शिक्षा का उद्देश्य उत्पीड़ित जनता को समान अवसर मिलें और एक गरीब विद्यार्थी भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर मुख्यधारा में शामिल हो सके। जातीय व आर्थिक आधार पर शिक्षा का वर्गीकरण उचित नहीं है। आजकल ऐसे निजी शिक्षण संस्थान खुल रहे हैं जिनका लक्ष्य केवल पैसा कमाना है, उन्हें विद्यार्थियों के भविष्य की चिंता नहीं होती। ऐसी संस्थाओं में स्तरीय व गुणवत्तायुक्त शिक्षा न मिलने पर विद्यार्थियों को रोजगार के लिए

भटकना पड़ता है। शिक्षण संस्थानो की बागडोर शिक्षाविदों के हाथों में होनी चाहिए, तभी विद्यार्थी रोजगारोन्मुख शिक्षा प्राप्त कर समाज के लिए उपयोगी व बेहतर इन्सान सकते हैं। विद्यार्थियों में मानवीय भावनाएं व संवेदनशीलता पैदा करने के लिए उन्हें भारतीय आदर्शों, मानवीय मूल्यों व संस्कारो से जोड़ना आवश्यक है।

शिक्षा यदि विद्यार्थियों में प्रेम, दया, विश्वास, करुणा व त्याग की भावनाएं पैदा नहीं करती, तो ऐसी शिक्षा भविष्य में निरर्थक व अनुपयोगी सिद्ध होती है। शिक्षा के माध्यम से केवल भौतिक संपन्नता प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं होता, शिक्षा द्वारा हम एक अच्छे इन्सान और बेहतर नागरिक भी बनने चाहिए। इसके लिए अपनी परंपरा, आदर्शों व जीवन मूल्यों से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। मानसिक विकास के बिना भौतिक विकास सार्थक नहीं हो सकता है। श्रेष्ठ मूल्यों व नैतिक आदर्शों से जुड़कर भूख, शोषण व भय से मनुष्य को मुक्त करवा सकते हैं। खेलों व अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों से जोड़कर विद्यार्थियों को सही दिशा दी जा सकती है। परंपरागत मूल्यों को आवश्यक संशोधन के साथ स्वीकार कर लेना चाहिए। परंपरा के साथ नवीन ज्ञान–विज्ञान का समावेश शिक्षा को अधिक प्रभावपूर्ण बना सकता है। शिक्षा को अधिक से अधिक रोजगारपरक बनाया जाए, तभी विद्यार्थी अपने भविष्य को सुरक्षित बनाकर बेहतर इन्सान बन सकते हैं। शिक्षक हमारी शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ होते हैं। योग्य समर्पित, ईमानदारी, सहृदय व निष्ठावान शिक्षक वर्तमान शिक्षा के स्वरूप में बदलाव ला सकते हैं। इस सन्दर्भ में शिक्षक का उत्तरदायित्व महत्वपूर्ण है, उसे पूर्ण करने के लिए उसे निरंतर अध्ययन, मनन व कार्यान्वयन की आवश्यकता होती है। वर्तमान संदर्भ में शिक्षा केवल भौतिक उपलब्धियां प्राप्त करने का साधन ही नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के बौद्धिक व मानसिक विकास का भी सशक्त माध्यम होनी चाहिए। वह विद्यार्थियों में नई चेतना, नई उमंगो को जगाते हुए उन्हें मानवीय मूल्यों व आदर्शों से भी जोड़े। शिक्षा में भौतिकवादी दृष्टिकोण विद्यार्थी का अराजक वृत्तियों की ओर ले जाता है। समाज में फैली विकृतियों को मानवीय मूल्यों, आदर्शों व संवेदनशीलता से जोड़ना होगा। टीवी व सोशल मीडिया के माध्यम से फैल रही अपसंस्कृति पर अंकुश लगाना भी आवश्यक है। शिक्षा का लक्ष्य बेहतर इन्सान तैयार करना होना चाहिए। संवेदनशील व उदार व्यक्ति वर्तमान परिदृश्य को बदलने में सक्षम होता है। शिक्षा के माध्यम से समाज में सामंजस्य, समन्वय, सद्भाव, सेवा, समर्पण व त्याग की भावनाएं विकसित होनी चाहिए। इसके लिए व्यवस्था, शिक्षकों की सक्रिय भागीदारी व सद्भावनाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

राजेन्द्र सिंह ठाकुर के अनुसार, शिक्षा के माध्यम से केवल भौतिक संपन्नता प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं होता, शिक्षा द्वारा हम एक अच्छे इन्सान और बेहतर नागरिक भी बनने चाहिए। इसके लिए अपनी परंपरा, आदर्शों व जीवन मूल्यों से जुड़ना आवश्यक हो जाता है। मानसिक विकास के बिना भौकिक विकास सार्थक नहीं हो सकता है। परंपरा के साथ नवीन ज्ञान–विज्ञान का समावेश शिक्षा को प्रभावपूर्ण बना सकता है।[3]

शिक्षा व्यक्ति के मानसिक व बौद्धिक विकास का महत्वपूर्ण साधन होता है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति को कुसंस्कारों व मानसिक गुलामी से बचाया जा सकता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, नई चेतना व जोश पैदा कर सामाजिक विकृतियों, अंधविश्वासों, गैर बराबरी की स्थितियों, क्रूरता व शोषण के विरुद्ध खड़ा किया जा सकता है। आज नई पीढ़ी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नित नई उपलब्धियां प्राप्त कर रही है। अनेक भौतिक उपलब्धियां प्राप्त कर अंतरिक्ष में मनुष्य भेजने की तैयारियां चल रही हैं। मनुष्य में शिक्षा से असीमित संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं, लेकिन आज हम शिक्षा में ऐसी कमी अनुभव करते हैं, जिसका निदान आवश्यक है।

मानव जीवन में शिक्षा के कार्यों से आवश्यकताओं की पूर्ति, आत्मनिर्भरता की प्राप्ति, व्यावसायिक कुशलता की प्राप्ति, भौतिक सम्पन्नता की प्राप्ति, अच्छे नागरिकों का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास चरित्र का विकास, जीवन के लिए तैयारी, अनुभवों का पुनर्गठन, वातावरण से अनुकूलन, वातावरण का रूप–परिवर्तन, कार्य का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है।

आज का भारतीय पाश्चात्य उपभोक्ता संस्कृति का पोषक बन गया है। उसने व्यावसायिक मानव का स्वरूप ग्रहण कर लिया है। वह कर्तव्य प्रधान, आस्था भाव वाली भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधि नहीं बनना चाहता है। वह भौतिकता की चकाचौंध में स्वयं को विदेशी जैसा प्रदर्शित करने में गर्व महसूस करने लगा है। भारतीयता अनैतिकता के माहौल में दम तोड़ रही है और उसकी आध्यात्मिकता निरर्थक सिद्ध हो रही है। उपभोक्ता संस्कृति ने हमारी चेतना को इतना निस्तेज व निष्प्रभ कर दिया है कि आज अच्छे और बुरे का भेद तो छोड़िये जिसे हम ठीक समझते हैं उसे करते हुए कतराते हैं और जिसे हम हेय समझते हैं उसे बड़ी सरलता से बिना किसी आत्मग्लानि के करते जाते हैं। श्रेयस्ते का स्थान उपयोगिता ने ले लिया है। हाँ, अधिक ऊँचा पहुँचने पर इसे कौशल का रूप देकर समाज उसे एक मौन स्वीकृति दे देता है। इस प्रकार इस संस्कृति ने चिन्तन और कर्म में, दूसरे शब्दों में करनी और कथनी के बीच एक चौड़ी खाई उत्पन्न कर दी है। उक्त स्थिति से मुक्ति पाने तथा इस खाई को पाटने के लिए मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की गई।[4]

मानव व प्रकृति का तालमेल जितना बनावटी है उतना ही बोझिल। मूल्यों के अभाव में मानवीय सम्पर्कों में सहजता समाप्त हो गई है। कृत्रिमता का साम्राज्य स्थापित हो गया है। वैज्ञानिकता ने जहां हमारी बौद्धिक शक्ति बढ़ाई है वहीं उसने आध्यात्मिक एवं नैतिक शक्ति को छीन लिया है। सहज जीवन गया और हम बनावटी मुखौटों के सहारे जीने के बाध्य हो गये। जो हम बोलते हैं उसका अभिप्राय वह नहीं हैं जो हम चाहते हैं, जो हम सोचते हैं वह, वह नहीं हैं जो हमारे लक्ष्य हैं। हमारा जीवन तात्कालिकता में बँट गया है। इसमें कोई श्रृंखला क्रम नहीं है। यह छिन्न–भिन्न है। आज जो खतरा है वह यह है कि मानव जाति समाप्त हो न हो, वरन् मानव अवश्य लुप्त हो जायेगा। अतः हमें इसी शिक्षा के बीच ऐसा प्रकाश जगाना होगा जो मानव की गहराईयाँ

छू सके, उसे समझ सके, उसके नजदीक आ सके। उसकी मजबूरियों सीमाओं आदि को रेखांकित कर सके। इसके लिए हमको शिक्षा को मूल्योन्मुखी बनाना होगा।

आज का मानव जातिवादी बन गया है। वह मूल्यवादी होने का दिखावा करता है। वह छल–प्रपंची बन गया है। दूसरों को नीचा दिखाना उसे उपयुक्त लगता है। मानव मन दिग्भ्रमित हो रहा है। वर्तमान प्रतिकूल परिस्थितियाँ 21वीं सदी से हमारे सुनिश्चित करने के लिए मूल्यपरक शिक्षा अपरिहार्य है। नई शिक्षा नीति में यह स्वीकार किया गया है कि आवश्यक मूल्यों के ह्रास तथा समाज में बढ़ रही कटुता के प्रति अधिक चिन्ता के कारण सामाजिक, नैतिक तथा जीवन–मूल्यों को पुनः प्रतिष्ठित करने के लिए शिक्षा को मूल्योन्मुखी बनाना होगा।

मानवीय मूल्यः महान नेताओं के जीवन से शिक्षा– समूचे विश्व में कई महान और युग प्रवर्तक नेता हुए हैं जिनमें कुछ प्रमुख है– महात्मा गांधी, अब्राहम लिंकन, मार्टिन लुथर, नेल्सन मंडेला, वाक्लव हेवेल, मैडम आंग सा सू की तथा मदर टेरेसा। इनका नैतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक उपलब्धियों से जिन मानवीय मूल्यों पर प्रकाश पड़ता है उसकी एक सूची यहां प्रस्तुत की जा रही है। ये हैंः– न्याय के प्रति प्रेम और लगाव, निःस्वार्थता, मानवता के प्रति आदर, प्रत्येक के लिए गरिमा, स्नेहिल और यथोचित व्यवहार, अहिंसा और शान्ति के प्रति आस्था, परोपकारिता, करुणा व सहानुभूति।

महान प्रशासकों के जीवन से शिक्षा– हमें यह स्वीकार करना होगा कि हमारी वर्तमान पीढ़ी सौभाग्यशाली है क्योंकि उसमें विश्व के कुछ सर्वोत्तम प्रशासक पैदा हुए हैं। इनमें वर्गीस कुरियन, एम.एस. स्वामीनाथन, सैम पित्रोदा, ई. श्रीधरन, सी.डी. देशमुख, आई.जी. पटेल, वी.पी. मेनन, तथा जीवीजी कणामति का नाम मुख्य रूप से लिया जा सकता है। इनकी उपलब्धियों से यह स्पष्ट है कि अपने कार्यों में इन्होने मानवीय मूल्यों को सामिकता दी। यहां उन व्यावसायिक एवं मानवीय मूल्यों की एक सूची प्रस्तुत की जा रही है जो इन प्रशासकों के लिए मार्गदर्शक साबित हुए। ये हैं– सत्यनिष्ठता, भेदभाव का विरोध, अनुशासन, एक नागरिक के रूप में कर्तव्यपरायणता, सामाजिक समानता, कानून के प्रति सम्मान, नैतिक जवाबदेयता का बोध, साहस, आदर और भाईचारा।

महान सुधारकों के जीवन से शिक्षा– भारत में कबीर, गुरूनानक देव, राजाराम मोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी विवेकानन्द जैसे कई समाज सुधारक पैदा हुए जिन्होंने समाज मे व्याप्त कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध किया तथा कई सामाजिक धार्मिक मुद्दों पर समाज को पुनर्जागृत किया। उनकी उपलब्धियों से जिन मानवीय मूल्यों पर प्रकाश पड़ता है उसकी एक सूची कुछ इस प्रकार है– मानवता के प्रति आदर, प्रत्येक की गरिमा का ध्यान, मानवतावाद, तर्क और अन्वेषण के सहारे सत्य की खोज, दयालुता और करुणा, आत्मसंतोष, सामाजिक समानता।

मूल्यों के आत्मसातीकरण में शिक्षण संस्थानों की भूमिका– नैतिक मूल्यों के आदान–प्रदान में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा व्यक्ति को इस बात के लिए तैयार करती है कि वह सामाजिक परिवर्तन को नेतृत्व प्रदान करें। शिक्षा व्यक्ति में अनुकलनकारी व्यक्तित्व का विकास करके परिवर्तन की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करती है। यह नवीन मूल्यों एवं विचारों के आत्मसातीकरण में सहायक होती है और व्यक्ति को किसी विशिष्ट दिशा में परिवर्तन हेतु बौद्धिक एवं भावनात्मक रूप से तैयार करती है। शिक्षा समाज एवं संस्कृति की निरन्तरता के साथ–साथ उसमें वांछित सुधार एवं परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

परन्तु इसके लिए शिक्षा–व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रशिक्षु की स्वायत्तता व स्वतंत्रता बाधित न हो। किसी व्यक्ति के शैक्षणिक विकास के कई उद्देश्य हो सकते हैं जिनमें प्रमुख हैं– ज्ञानार्जन, संस्कृति–संरक्षण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक न्याय की प्रगति, वैज्ञानिक मनोदशा का विकास, लोकतंत्र की सफलता तथा धर्मनिरपेक्ष मनोवृत्ति का विकास आदि। ये गुणात्मक रूप से उच्चतर एवं बेहतर जीवन की प्राप्ति में सहायक होते हैं। यह शिक्षा ही है जिसके माध्यम से सामाज उच्च मानवीय मूल्यों का संरक्षण करती है और साथ में उन्हें प्रोत्साहन भी देती है।

उपराष्ट्रपति ने कहा कि शिक्षा ही किसी राष्ट्र की प्रगति की नींव डालती है। उन्होंने यह भी कहा कि सही शिक्षा देने से नागरिकता से जुड़े मूल्य विकसित होंगे, लोगो को अज्ञानता से मुक्ति मिलेगी, लोग ज्ञान, सूचनाओं एवं कौशल से सशक्त होंगे और इसके साथ ही लोग न केवल अपनी, बल्कि राष्ट्र की नियति को भी विशिष्ट स्वरूप प्रदान करने के लिए नई भूमिकाओं और जिम्मदारियों का निर्वहन करने में समर्थ होंगे। उपराष्ट्रपति ने यह राय व्यक्त की कि उच्च शिक्षा से जुड़े शैक्षणिक संस्थानो को एक ऐसी प्रणाली विकसित करनी चाहिए, जो विद्यार्थियों को प्रासंगिक एवं सही शिक्षा प्रदान करे और इसके साथ ही उन्हें कौशल से लैस करे। उन्होने कहा कि देश–विदेश में नजर आ रहे बदलावों को ध्यान में रखते हुए भारत के शैक्षणिक मूल्यों में व्यापक सुधार की जरूरत है।[5]

मानवीय मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएं एवं लक्ष्य हैं जिन्हें मानव समाज के माध्यम से सीखता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अभिलाषाएं बन जाती है। निर्णय मानवीय मूल्यों के भी हो सकते हैं या फिर महत्वपूर्ण निर्णयों में इन मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरे शब्दों में मानवीय मूल्य ही निर्णयों के आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्व हैं। मानवीय मूल्य ही वह कड़ी है जो व्यक्तिगत अनुभवों और निर्णयों, उद्देश्यों तथा कार्यों को जोड़ता है। सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को समझने में भी मानवीय मूल्य इस प्रकार की भूमिका निर्वाह करते हैं। मूल्य व्यक्ति व समाज के व्यवहारों को नियंत्रित व सही मार्ग की ओर निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह एक ओर मनुष्य के मानसिक तनावों व संघर्षों को सुलझाते हुए आंतरिक

संगति व सम्बद्धता को उत्पन्न करता है एवं दूसरी और आदर्श आयाम की ओर वैयक्तिक व सामाजिक जीवन की उन्नति को निर्देशित करता है।

लगभग सभी समाजों में हिंसा, युद्ध, घृणा तथा अपराध का वर्चस्व दिखाई पड़ता है तथा इतिहास के विभिन्न युगों में भी यही प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे मानवीय मूल्यों की सार्वभौमिकता जैसी कोई बात होती ही नहीं। परन्तु मानवीय मूल्यों की परम्परा आदि समाजो एवं धर्मों में भी देखी जा सकती है तथा मूल्यों की यह परंपरा तदन्तर आज भी जारी है। जो सभी युगों एवं सभी संस्कृतियों में दृष्टिगोचर है। इस अर्थ में इन मूल्यों को सार्वभौम कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी।

सन्दर्भ

1. *मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार.*
2. *अमर उजाला (समाचार–पत्र) Wed, 16 May 2012ए बलिया.*
3. *www.mhrd.gov.in*
4. *शिक्षा के सिद्धान्त, डॉ0 पी0डी0 पाठक, पृष्ठ–414*
5. *Press Information Bureau, Government of India. mijk'Vªifr lfpoky;*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

योग, आध्यात्म, स्वास्थ्य एवं मानवीय मूल्य

डॉ. रजनी रानी अग्रवाल
एसो. प्रो. अर्थशास्त्र
राज. म. स्ना, महाविद्यालय, रामपुर।

शिक्षा समाज व देश की रीढ़ है। आज मूल्यों एवं आध्यात्मिकता की सभी को आवश्यकता है। इसी से सुख शांति की प्राप्ति होती है यह विचार केन्द्रीय मानव संसाधन मंत्री डा0 रमेश पोखरियाल के है। उन्होंने भारत सरकार की नई शिक्षा नीति में मूल्यनिष्ठ शिक्षा एवं आध्यात्मिक चरित्र उत्थान प्रणाली को शामिल करने के साथ साथ हर शैक्षणिक संस्थान मे आत्मचिंतन, प्रभुचिंतन और मेडिटेशन की चिंतन प्रयोगशाला होने पर जोर दिया। जीवन प्रबंधन विशेषज्ञा– शिवानी का कहना है कि स्कूल कॉलेजों मे पहला आधा धंटा आध्यात्मिक शिक्षा का होना चाहिये क्योंकि जो पढ़ते हैं, देखते हैं, सुनते हैं, उसी से हमारे संस्कार बनते है और संस्कार से ही हमारा संसार बनता है। यू0जी0सी0 के अध्यक्ष प्रो0डी0पी0 सिहं का कथन है कि शिक्षा में अध्यात्म और ध्यान बच्चों को सही दृष्टिकोण, जीवन जीने की कला और श्रेष्ठ संस्कार सिखायेगा जिससे उनका सर्वागीण विकास होगा। आध्यात्मिक ज्ञांन में ही वो शक्ति है जो विश्व को एकता के सूत्र में बाँध शांति और सद्भाव का वातावरण बनाए रख सकती है।

योग शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के (युज) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है जोड़ना अर्थात अपने शरीर और मन को जोड़ना। आज सभी योगासन प्राणायाम द्वारा अपने मन को शांत करने हेतु बहुत प्रयासरत है, फिर भी असंतुष्ट तथा अस्वस्थ है, कारण जो मन को चाहिये, वह नहीं मिल रहा है। योगासन करते समय बीच–बीच में हमारा मन कहीं न कहीं चला जाता है। अतः सबसे पहले तो अपने आप अर्थात् अपने मन से जुड़ना होगा। उसे सही दिशा देनी होगी।

इस संसार में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होगा जो जी भरकर जीना न चाहता हो। राजयोग जी भरकर जीने की जड़ी बूटी है। जब हम योग को अच्छी तरह से जान जायेगे, तब ही योगी– बन सकते है। योगी वह है, जिसमें सद्भावना हो स्व के लिये, औरों के लिये और प्रकृति के लिये। योग इंद्रियो को नियंत्रित करता है और हमारे दैहिक एहसास को परिवर्तित करता है। इससे हमें पता चलता है कि शरीर एक साधन है परमात्मा को अनुभव करने का। जब हम परमशक्ति से जुड़ जाते है तो हमारे अंदर सकारात्मक ऊर्जा प्रबल हो जाती है जो हमारे जीवन में झलकती है। योग एक प्रबल व सबल ऊर्जा की अवस्था है।

योग हमारी मानसिक क्षमता को बढ़ता है। आज जहाँ समाज में एक ओर लोग डायबिटीज़, हाइपरटेशन, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियो का इलाज ढूँढ रहे हैं, वहीं दूसरी ओर ये बीमारिया

लाइलाज बनती जा रही है। समाज में बढ़ता तनाव युवा पीढ़ी झेल नहीं पा रही है। उससे मुक्त होने के लिये शराब, ड्रग्स आदि का सहारा ले रही है। वास्तव में इन बीमारियों का एक ही इलाज है—राजयोग व मेडिटेशन। यह हमारी मानसिक स्थिति को संतुलित करेगा। अगर शरीर मनाबुद्धि का मंदिर है तो राजयोग उस मंदिर को बहुत खूबसूरत बनाता है। योग बहुत ही फायदेमंद है, बशर्ते उसे सही तरीके से और अनुशसित रूप से किया जाये। योग हमारे गुणो का विकास कर हमे तनावमुक्त करता है।

प्रत्येक मनुष्य सुख—शांति व धनसंपत्ति चाहता है। इसके लिये विशेष अटेशन व योग की आवश्यकता हेगी। मनुष्य स्वंय को एक आत्मा समझकर परमात्मा से प्रेम करे और वसुधैव कुटुम्बकम के स्तर पर प्रेमपूर्ण संबंध बनाकर अपने जीवन को सार्थक करे। योग एक जीवन पद्धति है। हम सभी को अपनी दिनचर्या मे योग को शामिल करना चाहिये। मानव के शरीर और चेतना को जोड़ने के बाद ही मानव सम्पूर्ण माना जाता है। आज हम होलिस्टिक हेल्थ की बात करते है। योग मन व शरीर विचार व कर्म समय व उपलब्धि की एकात्मकता तथा मानव व प्रकृति के बीच सांमजस्य का मूल रूप है। यह स्वास्थ्य एवं कल्याण का समग्र दृष्टिकोण है। इससे हमारी पूरी जीवन शैली एक नये रूप से उभरकर सबके सामने प्रत्यक्ष होती है और हम सारे संसार में उन्ही तरंगो के साथ जीने लग जाते है, जो परमात्मा से जुड़ी हुई है।

प्रधानमंत्री श्री— नरेन्द्र मोदी जी कहते हैं की कहीं न कहीं मानव आज सब कुछ प्राप्त करना चाहता है। सुख—शंति—संम्पत्ति सब कुछ मेरे पास हो, उसे प्राप्त करने के लिये वो अपनी समझ से प्रयासरत रहता है। पर उसे सही मायने में उसकी विधि पूर्णतः ज्ञांत न होने के कारण अंसतुष्टि और अतृप्ति रहती है। मात्र स्वास्थ्य के लिये ही वो योग करता है तथा योग को सिर्फ अंगमर्दन की प्रकिया तक ही सीमित कर देता है। वैसे तो योग का व्यापक अर्थ है मन की शंाति, खुशी और संतुष्टता हमारे पास एक भाग्यदायिनी, संजीवनी बूटी, राजयोग है जो सभी रोगो का एकमात्र इलाज है। इससे मनशां जीवन संतुष्ट और कायापलट हो जाती है। यह कुछ नहीं, बल्कि सबकुछ बदल देगा। इसी से ही हम सही अर्थ मे योग का न्याय कर पायेंगे। योग श्वास शरीर और मन के बीच एक कड़ी की तरह है। इससे थकान, तनाव नकारात्मक, भावनाएं क्रोध आदि नष्ट हो जाती है तथा हम एक अच्छे जीवन की ओर बढ़ते जाते है। ऐसा कोई काम नहीं करना है जो दिल को दुखी करे। आराम की नींद न आये इसलिये कोई भी काम सिर्फ अपनी खुशी के लिये न कर सबको खुश करने के लिये करना चाहिये। हम बहुत बार अपने स्वास्थ्य के लिये दवाइयो पर निर्भर होते हैं लेकिन स्वास्थ्य के लिये दवाइयो की जगह अगर ध्यान और योग का प्रयोग किया जाए तो हमारा शरीर ज्यादा स्वस्थ रहेगा। मेडिकल सांइस भी कहता है कि स्वस्थ रहने के लिये दवाई से ज्यादा खुश रहना जरूरी है। जैसे—जैसे हमारी खुशी शांति बढ़ती है, मानसिक रूप से, तो हम शारीरिक रूप से स्वतः ही स्वस्थ होते जाते है।

आत्मा के निजी सात गुण है और उनका हमारे शरीर पर प्रभाव पड़ता है। ज्ञान, पवित्रता, शांति, सुख, प्रेम, आनंद और शक्ति। अगर गुणों की ऊर्जा सकारात्मक है तो उसका प्रभाव शरीर पर सकारात्मक पडता है। तमाम हथकंडे अपनाकर लोग जीवन में सुख ढूंढते हैं लेकिन सुख कहीं नसीब हेाता नज़र नहीं आता। योग से ही सुख शंति संभव है। योग किसी धर्म की विरासत नहीं बल्कि समग्र मानवता के कल्याण, सर्वागीण स्वास्थ्य, शांति सुख एवं समृद्धि के लियेएक विज्ञान है, एक सकारात्मक स्वस्थ और सरल जीवन शैली है। योग केवल आसन प्राणायाम आदि द्ष्टयोग का नाम नहीं बल्कि ये साधक की मानसिक, नैतिक, भावनात्मक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास के लिये है।

योग से मानव व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इससे जीवन में शांति आती है और ऊर्जा बढ़ती है। जहाँ विज्ञान समाप्त हो जाता है वहॉ पर योग काम करता है। ओम शब्द प्रदर्शित करता है कि ईश्वर एक ही है वह किसी एक धर्म के लिये अलग नहीं है। योग के बल पर धर्म और मजहब के मकड़जाल से छूट समाज एकजुट हो सकता है। आध्यात्म और योग से जुड़कर ही शांति का अनुभव हो सकता है। योग और व्यायाम से जीवन में सकारात्मक बदलाव आते है। योग जीवन जीने की एक शैली है। खेल कूद से शरीर शक्तिशाली बनता है। लेकिन स्वस्थ तन के साथ स्वस्थ मस्तिष्क होना भी जरूरी है। मन को भी शक्तिशाली बनाना पडेगा। मन की शाक्ति योग से ही आयेगी। मन को शक्तिशाली बनाने के लिये हमें साइलेस में बैठना पड़ेगा। मन चंचल है हमें उसे कट्रोल करना पड़ेगा। हमे अपने संकल्प पर ध्यान देकर कार्य करना पड़ेगा। जब हम किसी एक संकल्प पर कार्य करते है तो उस पर हमारी सारी इंद्रिया एकाकार होकर एक ही दिशा मे कार्य करती है। जब हमें किसी कार्य में सफलता मिलती है तो ऐसा इसलिये हुआ कि उसको करने के लिये हमने काफी समय दिया तथा समय समय पर अपने को बदला, इंप्रूव किया। हमें सकारात्मक संकल्प करने होंगे जो हमारे मन को मजबूत बनायेगें। इसके लिये तप, त्याग, तपस्या और दृढ़ संकल्पित होना जरूरी है।

योग और आध्यात्म को जीवन में अपनाने से कर्म करने की भावना विकसित होती है। खुशी उमंग उत्साह से मन हर समय परिपूर्ण रहता है। वासना, क्रोध, नफरत, बुराई, भष्टाचार, जिद, वैमनस्य से मनुष्य कोसों दूर चला जाता है।

कहीं मिलेगी जिंदगी में प्रशंसा तो कहीं नाराजगियों का बहाव मिलेगा। कहीं मिलेगी सच्चे मन से दुआ, तो कही भावनाओ में दुर्भाव मिलेगा, चलाचल राही अपने कर्मपथ पर जैसा तेरा भव वैसा प्रभाव मिलेगा।

हमें रोज अपने मन को ज्ञांन की बातों से स्वच्छ करते रहना चाहिये। इससे मन सुंदर निर्मल और पवित्र होने लगेगा। जिस प्रकार गंदे पानी से भरे मटके में साफ पानी लगातार डालते रहने से एक समय ऐसा आता जब उसकी सारी गंदगी खत्म हो जाती और साफ पानी रह

जाता। इसी प्रकार नकारात्मकता से भरी बुद्धि को ज्ञान की बातो के ज्ञानामृत से सीचते जाओ तो सब कीचड़ निकल जायेगा और एक दिन मन बुद्धि दोनों स्वच्छ और निर्मल बन जायेगे। हमे ज्ञान की बातों से अपने मन को निरतर सुविचारों से भरते हुए अपने जीवन को सुदर सुगंधित, खुशबूदार और सुखमय बनाना है। राजयोग की शक्ति से ही ऐसा सभंव है। योग जीवन जीने की शैली है, कला है।

जैसा हम प्रकृति को देंगे वैसा ही प्रकृति हमें लौटाएगी। श्रेष्ठ जीवन शैली और उच्च मानसिकता से ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त होगा। शरीरिक स्वास्थ्य जितना जरूरी है उससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण है मानसिक स्वास्थ्य। हमारी बीमारी हमारी जीवन शैली और मानसिकता के ऊपर निर्भर करती है। भारतीय शास्त्रों के अनुसार जब हमारे आहार, विहार, विचार और व्यवहार ठीक रहेंगे तभी हम सम्पूंर्ण स्वास्थ्य को प्राप्त करेंगे। जब हम सम्पूर्ण स्वस्थ होंगे तभी सुखी रहेंगे। भारतीय पारंपरिक जीवन शैली में तन के साथ–साथ मन की शुद्धता महत्वपूर्ण है राजयोग की अनुभूति एंव शुद्ध आहार से शुगर व ब्लडप्रेशर को नियंत्रित कर सकते है।

ब्रहाकुमरीज पीस ऑफ माइंड राजयोग द्वारा स्वस्थ एवं सुखी जीवन के लिये पूरे विश्व में कार्य कर रही है। माउंटआवू से आये डा0 वल्सलन नायर का कहना है कि हमारी बीमारी हमारी जीवन शैली और हमारी मानसिकता के ऊपर निर्भर करती है। भारतीय शास्त्रों के अनुरूप जब हमारे आहार, विचार, विहार और व्यवहार ठीक रहेंगे तभी हम संम्पूर्ण स्वस्थता को प्राप्त करेंगे। उनके निर्देशानुसार राजयोग की अनुभूति एवं शुद्ध आहार के माध्यम से 12 घंटे में अनेक लोगों के शुगर नियंत्रित हुए। (पहला सुख निरोगी काया), जब हम सम्पूर्ण स्वस्थ होंगे तभी सुखी रह सकते है। स्वस्थ रहने में उपवास की महत्वपूर्ण भूमिका है। हम बहुत बार अपने स्वास्थय के लिये दवाइयों पर निर्भर होते है लेकिन यदि योग और ध्यान किया जाये तो हमारा शरीर ज्यादा स्वस्थ रहेगा। मेडिकल साइंस भी कहती है। कि जब कोई दवा खाते है तो ये जरूरी है ही, लेकिन उससे ज्यादा जरूरी है खुश रहना। जैसे–जैसे हमारी खुशी शांति बढ़ती है मानसिक रूप से, तो हम शारीरिक रूप से स्वतः ही स्वस्थ हो जाते हैं। स्वर्णिम समाज के निर्माण में मीडिया की भूमिका अहम है। सकारात्मक समाचार से लोगों के मन भी सकारात्मक होंगे।

राजयोग मेडिटेशन व्यक्ति को हर परिस्थिति में अपने आपको समायोजित कर सरल, सहज और खुशहाल तनावमुक्त जीवन जीने का विश्वास प्रदान करता है। सुप्रसिद्ध जीवन प्रबधंन विशेषज्ञा शिवानी कहती है। कि हम जो धन कमाते हैं उसका सात्विक होना जरूरी है। उन्होंने कहा कि हमारा उद्रेश्य मात्र धन कमाना नहीं बल्कि दुआएँ कमाना होना चाहिये। जो दुआएँ कमाता है वह अपनी क्षमता से भी अधिक धन कमाता है। जीवन में सदा दूसरों को देने की स्वाभाविक स्वरूप वास्तव में शांति प्रेम और आंनद से भरपूर है। जितना हम अपने को ही समय व नियम से चलाते हैं। उतनी ही चीजें हमारे कट्रोल में आने लगती हैं। दूसरों के साथ व्यवहार करते समय हमें केवल उनकी अच्छाईयों पर ही ध्यान देना चाहिये। योग ही इसका एकमात्र

साधन है। अतः हमें योग को अपने जीवन का अभिन्न अंग बनाना होगा। आज विश्व मे मानवीय मूल्य निंरतर गिरते जा रहे है इन मूल्यों को प्रतिस्थापित करना बड़ी चुनौती है। युवाओं को जगाने की जरूरत है। युवा जागेगा तो देश जागेगा।

स्वस्थ रहने के लिये–' भूख से आध खाये प्यास से दोगुना पिये तीन गुणा कसरत करे, चार गुणा है पाचॅ गुणा मेहनत करे छः गुणा विक्षाम करे सात गुणा परमात्मा का ध्यान करे।

जीवन को सुखमय बनाने के लिये छोटी–छोटी बातों को चित्त का हिस्सा न बनने दें। डिटैच होकर कर्म करेंगे तो सबके प्रिय बन जायेंगे। हेल्थ , बेल्थ और हेप्पीनैस जिंदगी के तीन मूलमंत्र हैं। सरल चित्त, आत्मा सहज ही सबकुछ स्वीकार कर लेती है। हम सरल होंगे तो हमारी समस्याएं भी सरल होगी। जीवन में हमे उन बातों को स्वीकार करना ही चाहिये जिन्हें हम बदल नहीं सकते। जीवन में मानवीय मूल्यों को अपनाने के लिये मेडिटेशन बहुत जरूरी है। माफ करके आगे बढ़ें, शुभ भावना और शुभकामना मन मे बनाये रखे। शांत होकर बात करें गुस्से से नहीं नफरत को प्रेम से जीता जा सकता है। वर्तमान समय में सुखमय जीवन यापन के लिये शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, शक्ति के साथ–साथ आध्यात्मिक शक्ति की बहुत आवश्यकता है। मानवीय मूल्य जैसे शांति, आंनद, प्रेम, खुशी, सुख, संतुष्टि, त्याग, तप, दया मनुष्य को आध्यात्म से ही प्राप्त होते है। धर्म की राह पर चलकर ही इंसानियत कायम रह सकती है।

शिक्षा जीवन का शाश्वत मूल्य है

डॉ. राम किशोर सागर[1], महेंद्र सिंह सागर[2]

[1]असि. प्रो. (अर्थशास्त्र विभाग)
राजकिय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय रामपुर।
[2]असि. प्रो. (मनोविज्ञान विभाग)
दीक्षित कॉलेज ऑफ हायर एजुकेशन रामपुर।

शिक्षा मानव जीवन के विकास का मेरुदंड है जीवन के सर्वागीण विकास के लिए शिक्षा परम आवश्यक है मानवीय चेतना जगाने के लिए शिक्षा एक आवश्यक यंत्र है शिक्षा को मानव मस्तिष्क रुपी स्विच भी कहा जा सकता है शिक्षा का शाब्दिक अर्थ है सीखना, यह सीखने की प्रक्रिया चाहे गुरुकुल में हो, घर में हो या विद्यालय में हो, शिक्षा ही कही जाएगी। मानव आदि काल से ही कुछ न कुछ सीखता ही रहा है। कुछ उसने परिस्थितियों से सीखा, कुछ प्रकृति से तथा बहुत कुछ अपने इस समाज से सीखा है। मानव की प्रथम पाठशाला उसका घर परिवार और समाज होते हैं। इसी विकास क्रम में मानव अपने समाज, राष्ट्रीय, ज्ञान विज्ञान के विकास के लिए अपने नागरिकों के मस्तिष्क की चेतना को प्रबुद्ध करने के लिए शिक्षा का प्रतिबंध करता है। यही शिक्षा आगे चलकर मानव जीवन का शाश्वत मूल्य बन जाती है। शिक्षक के दो पक्ष हैं, एक आंतरिक पक्ष जिसमें पाठ्यक्रम शामिल है और दूसरा बाहय पक्ष है जिसमें शिक्षण पद्धति आती हैं। अर्थात पाठ्यक्रम से शिक्षण पद्धति निर्धारित होती है। शिक्षा पर विचार करने से पहले पाठ्यक्रम पर विचार करना परम आवश्यक है। हमें शिक्षा, हमें शिक्षक क्यों चाहिए? हम शिक्षित होकर क्या करेंगे? शिक्षा से हमारे अंदर बदलाव कैसे होगा? शिक्षा से हमारी कौन सी समस्याओं का समाधान होगा? यह सभी सवाल आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने कि जिस दिन पहली बार किसी ने शिक्षा की आवश्यकता को महसूस किया होगा, उस समय थे।

शिक्षा मनुष्य को विकसित करती है शिक्षा व्यक्ति को सभ्य और सामाजिक बनाती है। शिक्षा मानव को सही ढंग से जीने की कला सिखाती है। लोगों को अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा प्रदान करना हमारी सरकार के लिए आवश्यक है। परंतु समाज को भी इसे प्राप्त करने के लिए वैसे ही दायित्व निभाना होगा।

शिक्षा के मौलिक अधिकार को व्यवहारिक बनाने के लिए अनिवार्य और निशुल्क शिक्षा कानून 2009 पारित किया गया है। जिसमें 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को अनिवार्य रूप से निशुल्क शिक्षा देने का प्रावधान है। इस अधिनियम में अनेक क्रांतिकारी उपाय किए गए हैं जैसे गरीबों के बच्चों के लिए 25 प्रतिशत सीट का आरक्षण, बच्चों को परीक्षाओं के बोझ से मुक्त रखना, सभी विकलांग बच्चों की शिक्षा का प्रबंध, यदि कोई बच्चा 6 साल की आयु पर विद्यालय

में प्रवेश नहीं ले पाता है तो वह बाद में अपनी उम्र के अनुरूप कक्षा में प्रवेश ले सकता है। कोई भी स्कूल किसी भी बच्चे को प्रवेश देने से मना नहीं कर सकता है।

केंद्र सरकार राष्ट्रिय पाठ्यक्रम का एक प्रारूप तैयार करेगी जिसमें शिक्षकों के प्रशिक्षण के मानदंड लागू होंगे। नवाचार अनुसंधान नियोजन और शिक्षक की क्षमता विकास को प्रोत्साहित करने के लिए राज्य सरकार को तकनीकी सहायता, संसाधनों का प्रबंध करना होगा। सरकार प्रत्येक बच्चे का प्रवेश, उपस्थिति और बुनियादी शिक्षा पूरी कराएगी। बच्चे के पड़ोस में विद्यालय की सुविधा उपलब्ध कराई जाएगी। कमजोर और गरीब बच्चों के साथ होने वाले भेदभाव को दूर किया जाएगा। विद्यालय भवन शिक्षक और प्रशिक्षण सामग्री सहित आधारभूत संरचना तैयार की जाएगी। बच्चों को गुणवत्ता युक्त शिक्षा प्रदान की जाएगी। निजी और विशेष श्रेणी वाले विद्यालय को आर्थिक रूप से कमजोर बच्चों के लिए कक्षा एक में 25 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था की गई है। इन बच्चों को प्रवेश देने के लिए कोई भी धन नहीं मांगेगा, यदि कोई मांगता है तो उसे इस राशि का 10 गुना अर्थदंड देना होगा। चयन प्रक्रिया प्रणाली अपनाने के लिए पहली बार ऐसा करने पर 25000 उसके बाद अपनाई गई हर प्रक्रिया पर 50000 का दंड देना होगा।

शिक्षकों के लिए न्यूनतम योग्यता का निर्णय केंद्र सरकार द्वारा निर्धारित एक शिक्षा प्राधिकरण करेगा जो शिक्षक इस योग्यता से संपन्न नहीं हैं, उन्हें 5 वर्ष के अंदर योग्यता प्राप्त करनी होगी। शिक्षकों के वेतन भत्ते और सेवा शर्ते भी निर्धारित की गई है, शिक्षकों को नियमित रूप से विद्यालय आना होगा, निर्धारित समय सीमा में पाठ्यक्रम पूरा करना होगा। प्रत्येक बच्चे की योग्यता का आंकलन कर उसे आवश्यकतानुसार अतिरिक्त शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। बालक की प्रगति अभिभावकों को बतानी होगी। दोषी पाए गए शिक्षकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई का प्रावधान है। अधिनियम 2009 में शिक्षक और छात्रों के बीच आदर्श अनुपात का प्रावधान किया गया है। अध्यापकों को जनगणना, आपदा राहत अथवा निर्वाचन के अतिरिक्त किसी भी गैर शैक्षणिक कार्य में नहीं लगाया जाएगा। किसी भी शिक्षक को निजी स्तर पर ट्यूशन देने की अनुमति नहीं दी जाएगी। इसके बावजूद भी शिक्षा अपने लक्ष्य को पूरा नहीं कर पा रही है। क्योंकि उसको प्राप्त करने वाले छात्रों का मूल उद्देश्य शिक्षा प्राप्त करने की बजाय परीक्षा को उत्तीर्ण करना हो गया है। ऐसी स्थिति में हमें परिवर्तन लाना होगा। सरकार को दोहरी शिक्षा नीति को समाप्त कर शिक्षा को केंद्र का विषय बनाना होगा। शिक्षा के लिए पर्याप्त बजट आवंटित करना होगा, तभी शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। देश की सभी बालक बालिकाओं के लिए अच्छी गुणवत्ता युक्त शिक्षा के प्रबंध के लिए देश में समान शिक्षा प्रणाली लागू कर सभी स्थानीय बच्चों को अनिवार्य रूप से एक जैसे स्कूल में पढ़ाना होगा।

शिक्षा के व्यवसायीकरण और शिक्षा में मुनाफाखोरी पर प्रतिबंध लगाना होगा। देशी–विदेशी शिक्षण संस्थानों पर रोक लगाकर हमें विदेशी ज्ञान शोध शिक्षण पद्धतियों का आदान–प्रदान अपनी जमीन पर खड़ा करना होगा। शिक्षा को भेदभाव मुक्त बनाना होगा। पूर्व प्राथमिक से लेकर इंटरमीडिएट तक की शिक्षा का संपूर्ण खर्चा सरकार को उठाना चाहिए। स्कूलों में पर्याप्त शिक्षक, भवन, शौचालय, पेयजल, खेल का मैदान, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, शिक्षण सामग्री, खेल सामग्री, उपकरण, छात्रावास ,छात्रवृत्ति के लिए सरकार को पूरे संसाधन उपलब्ध कराने चाहिए। शिक्षकों को स्थाई नौकरी, पर्याप्त वेतन और प्रशिक्षण सुनिश्चित कर की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। मिड डे मील की व्यवस्था का कार्य शिक्षकों को नहीं सौंपना चाहिए। शिक्षा का माध्यम छात्र की मातृभाषा होना चाहिए। शिक्षा और सार्वजनिक जीवन में अंग्रेजी का वर्चस्व समाप्त करना होगा। विद्यार्थियों को शिक्षा के साथ–साथ प्रशिक्षण एवं रोजगार के अवसर प्रदान किए जाने चाहिए। शिक्षा को मानवीय, आनंद दायक, संपूर्ण, सर्वांगीण, बहुमुखी, समानता पूर्ण एवं संवेदनशील बनाने के लिए शिक्षा प्रणाली में बदलाव की आवश्यकता है। बस्ते का बोझ कम करके रटन्त विद्या को व्यवहारिक श्रम और कुशल प्रधान जीवन से जोड़ना होगा। शिक्षा से मनुष्य में जिज्ञासा, तर्कशक्ति विश्लेषण, शक्ति और ज्ञान जगाने में सहायता करती है। शिक्षा से बच्चे के अंदर छिपी प्रतिभा, क्षमता की पहचान होती है। शिक्षा का मूल स्थानीय समाज संस्कृति एवं परंपराओं के अनुकूल होना चाहिए। संविधान के लक्ष्य के अनुसार समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक भारत के प्रबुद्ध एवं जागरूक नागरिक तथा एक अच्छे इंसान के निर्माण का काम शिक्षा के माध्यम से पूरा किया जा सकता है। हमारी वित्त मंत्री श्रीमती निर्मला सीतारमण ने लगातार दूसरा वजट पेश करते हुए शिक्षा पर 4500 करोड़ रु की वृधि कर शैक्षणिक वातावरण सुधारने की कोशिश की है। अंत में कहा जा सकता है कि–

अंधकार को क्यों धिक्कारे
अच्छा हो एक दीपक जलाएं।

अर्थात अंधकार को धिक्कारने से अच्छा है, कि एक दीपक जला दिया जाए, शिक्षा ही एक ऐसा दीपक है जो अज्ञानता रूपी अंधकार को हमेशा के लिए मिटा सकती है। शिक्षा रूपी दीपक जलाने की जिम्मेदारी केवल शिक्षक को ही नहीं बल्कि स्वयं छात्र परिवार एवं वातावरण तीनों को समान रूप से उठानी होगी। यह सर्व विदित सत्य है कि शिक्षा के बिना विकास संभव नहीं है। यही कारण है कि आजादी के 70 वर्ष बाद देश के नागरिकों को शिक्षित करने के अनवरत प्रयास किए गए हैं। मानव जीवन में शिक्षा के महत्व को देखते हुए कहा गया है, कि शिक्षा जीवन का मूल्य है।

संदर्भ

1. *यादव राधा भारतीय शिक्षा का विकास एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2016*
2. *जनक ए जनरल की उम्र में 90 2 सितंबर 2016 प्र0 संख्या 1 से 5 तक*
3. *पराशर डॉ. मधु एवं सिंह, दीपा शिक्षाशास्त्र एम बी पी डी पब्लिकेशन, आगरा*
4. *शर्मा बालेन्दु श्रीवास्तव डॉ. पी0के0 एवं रविकांत शिक्षा उच्च शिक्षा में अधिगम एवं समानता बनाम गुणवत्ता एवं प्रासंगिकता, प्रकाशन राजकीय रजा पी0जी0 कॉलेज रामपुर जनवरी 13.14.2007 प्र0संख्या 189 से 191*
5. *शर्मा राम अवतार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हेतु किए गए प्रयास भारत में उच्च शिक्षा वर्तमान परिदृश्य भविष्य पूर्वेक्षण रजा पी0जी0 कॉलेज, रामपुर, सितंबर 18.19. 2011 प्र0 संख्या 229 से 231*
6. *दैनिक समाचार पत्र एवं पत्रिकाएं।*
7. *आकाशवाणी।*
8. *दूरदर्शन।*
9. *इंटरनेट।*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के समायोजन पर सैद्वान्तिक व आर्थिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन (सहारनपुर जनपद के विशेष सन्दर्भ में)

डॉ. रतन सिंह
स. प्रोफेसर – बी.एड.
कु.मायावती राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बादलपुर, गौतमबुद्धनगर

वैदिक काल से लेकर वर्तमान तक औपचारिक शिक्षा हेतु विद्यालय एक सशक्त माध्यम के रूप में विधमान है। माध्यमिक शिक्षा, प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा के मध्य एक कड़ी का काम करती है। माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले छात्र, छात्राएं किशोर अवस्था में होते हैं। किशोरावस्था को आंधी–तूफान कि अवस्था कहा जाता है, ऐसी अवस्था में अध्यापकों का परम दायित्व होता है कि वे छात्रों के समायोजन करने में सहायता करें तथा उन्हें मूल्यपरक् शिक्षा प्रदान करें।

अध्यापको की समस्याओं को दूर कर सरकार, प्रबंध तंत्र, समाज, अध्यापकों को अपने विद्यालय एवं परिवेश में समायोजन करने में सहायक होगा। भारत सरकार द्वारा माध्यमिक शिक्षा समीक्षा हेतु गठित ताराचंद समिति" (1948), 1952 में "माध्यमिक शिक्षा आयोग", 1965–66 में "राष्ट्रीय शिक्षा आयोग" (कोठारी आयोग) ने भी अपनी सिफारिशो में अध्यापक समायोजन पर विशेष बल दिया है।

भारतीय समाज ने वैदिक काल से ही मूल्य शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हुए शिक्षा में अनेक प्रयास किये गये शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न समय पर गठित आयोगो एवं समितियों ने मूल्य शिक्षा को प्रस्तवित करने हेतु अपनी सिफरिसें प्रस्तुत की।

आधुनिक काल में भारत सरकार ने सर्वप्रथम 1948 में विश्वविद्यालय आयोग (राधाकृष्णन कमीशन) का गठन किया, जिसने अपनी रिपोर्ट में एक सुझाव यह भी दिया की विश्वविधालयी शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए यह आवश्यक है, कि उसके पूर्व की माध्यमिक शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाया जाये। 1948 में ही भारत सरकार ने माध्यमिक शिक्षा की समीक्षा हेतु "ताराचंद समिति" का गठन किया था। इस समिति द्वारा शिक्षाको के सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया कि शिक्षाको के वेतनमान और सेवाशर्ते "केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड के प्रस्तावों के अनुकूल हो।

भारत सरकार के द्वारा 1952 में "माध्यमिक शिक्षा आयोग " का गठन किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा शिक्षको की नियुक्ति के लिए उचित मानदंडो की सिफारिश की गयी, साथ ही माध्यमिक शिक्षको के शिक्षक प्रशिक्षण हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए गए। शिक्षको के वेतनमान निश्चित करने के लिए एक विशेष समिति का गठन करने की सिफारिश की गयी जो समय–समय पर महंगाई को ध्यान में रखकर निश्चित स्तर के शिक्षको के वेतनमान निश्चित करे तथा समान योग्यता और समान कार्य करने वाले शिक्षको के वेतनमान समान हो चाहे वो किसी भी प्रकार के विद्यालय में कार्यरत हो। ताकि उनके समायोजन में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग (कोठारी आयोग) 1965–66 द्वारा भी शिक्षको के समायोजन हेतु महत्वपूर्ण सुझाव दिए गये।

समाज के विकास में विद्यालयों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। इसी प्रकार विद्यालयों में शिक्षको की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। विद्यालयों में शिक्षा प्रक्रिया द्वारा बालक का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया जाता है। समाज में नित नये परिवर्तन दृष्टिगोचर होते रहते है। नवीन परिस्थितियों, आवश्यकताओं एवं अन्वेषणों के तदनुरूप बदलते समय एवं ज्ञान के साथ समाज में तादात्मय स्थापित करना होता है, साथ ही समाज को यह व्यवस्था करनी होती है कि परिवर्तनशील दशाओं में उसकी भावी पीढ़ी जो उसका भविष्य है, मूल्यहीन व कुसमयोजित होकर अनुपयोगी न हो जाये। इस हेतु ही शिक्षण व्यवस्था की रचना कर समाज ने उसे शिक्षको के हाथों में सोंप दिया है। शिक्षा व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने हेतु शिक्षको का समायोजित व मूल्यवान होना भी अति आवश्यक है। मूल्य के दो पहलू होते है प्रथम विषय–वस्तु दूसरा तीव्रता। जो मूल्य व्यक्ति में अधिक होगा उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्व के शील गुणों पर पड़ेगा, मूल्य कुछ अंश तक आंतरिक भाव होते है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित होते है।

भारत सरकार द्वारा भारतीय संविधान में अनुच्छेद–21ए जोड़कर बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। भारत सरकार द्वारा शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु समय–समय पर कई शैक्षिक कार्यक्रम जैसेः– शिक्षा गारंटी योजना, मध्याह्न भोजन योजना, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम आदि चलाये गये। इस प्रकार के कार्यक्रमों की सफलता एवं क्रियान्वयन हेतु सरकार द्वारा भरसक प्रयास किया गया, परन्तु इनमें पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। इन योजनाओं के पूंर्ण हो पाने या न हो पाने में अन्य कारणों के साथ–साथ अध्यापको के समायोजन की भी भूमिका होती है। अध्यापको का सही रूप से समायोजित न हो पाना, जहाँ उनकी कार्य क्षमता पर प्रभाव डालता है, वहीं दूसरी और छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को भी प्रभावित करता है।

उद्देश्यः– प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य– माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के समायोजन पर सैद्वान्तिक व आर्थिक मूल्यों के प्रभाव का अध्ययन" करना।

न्यादर्श– प्रस्तुत अध्ययन की समष्टि के रूप में सहारनपुर जनपद के माध्यमिक विद्यालयों को लिया गया है। इस समष्टि में से न्यादर्श के रूप में माध्यमिक विद्यालयों के 150 अध्यापकों (75 ग्रामीण व 75 शहरी) का उद्देश्यपरक न्यादर्श के रूप में चयन किया गया है।

सीमांकन– प्रस्तुत अध्ययन को सहारनपुर जनपद के माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षको तक सिमित किया गया है।

उपकरण– प्रस्तुत अध्ययन हेतु डॉ0 एस0 के0 मंगल द्वारा निर्मित "मंगल शिक्षक समायोजन परिसुची (लघुरूप)" तथा डॉ0 (श्रीमती हरभजन एल0 सिंह व डॉ0 एस0 पी0 अहलूवालिया द्वारा निर्मित शिक्षक मूल्य परिसूची का प्रयोग प्रदत्तों के संकलन हेतु किया गया है।

प्रदत्तो का विश्लेशण, परिणाम एवं विवेचना

डॉ0 एस0 के0 मंगल द्वारा निर्मित "मंगल शिक्षक समायोजन परिसुची (लघुरूप)" तथा डॉ0 (श्रीमती हरभजन एल0 सिंह व डॉ0 एस0पी0 अहलूवालिया द्वारा निर्मित शशिक्षक मूल्य परिसूची को माध्यमिक स्तर के 150 अध्यापकों पर प्रसारित किया गया। प्राप्त आंकड़ो का विश्लेशण सांख्यिकीय प्रविधियों द्वारा करने पर प्राप्त परिणामो को तालिका क, ख, ग, घ में प्रदर्शित किया गया है।

अध्यापको का समायोजन प्रदर्शित करती तालिका

तालिका "क"

समायोजन का विवरण	अध्यापको का प्रतिशत
बहुत अच्छा	35 प्रतिशत
अच्छा	47 प्रतिशत
औसत	14.5 प्रतिशत
निम्न	3.5 प्रतिशत
अत्यधिक निम्न	0 प्रतिशत

अध्यापकों के सैद्वान्तिक व आर्थिक मूल्यों का मध्यमान प्रर्दशित करती तालिका

तालिका ''ख''

	सैद्वान्तिक मूल्य	आर्थिक मूल्य
M	91.48	83.13
SD	15.55	18.95

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षको के सैद्वान्तिक मूल्य का मध्यमान उनके आर्थिक मूल्य के मध्यमान से अधिक है। जिससे स्पष्ट है कि इन अध्यापकों में सैद्वान्तिक मूल्य अधिक पाया जाता है।

अध्यापकों के समायोजन व सैद्वान्तिक मूल्य व समायोजन में सह सम्बन्ध प्रर्दशित करती तालिका

तालिका ''ग''

प्रथमचर x	द्वितीयचर y	N	Σx^2	$\sum_{y^2}$	Σxy	r	परिणाम
समायोजन	सैद्वान्तिक मूल्य	150	6810.77	3608.42	2230.80	+0.45	धनात्मक

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के समायोजन एवं सैद्वान्तिक मूल्य में धनात्मक (+0.45) सह सम्बन्ध है अर्थात अध्यापको के सैद्वान्तिक मूल्यों का उनके समायोजन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिन अध्यापकों में सैद्वान्तिक मूल्य अधिक है उनका अपने विद्यालय में समायोजन भी उच्च है।

अध्यापकों के समायोजन व आर्थिक मूल्य व समायोजन में सह सम्बन्ध प्रर्दशित करती तालिका

तालिका ''घ''

प्रथमचर x	द्वितीयचर y	N	Σx^2	$\sum_{y^2}$	Σxy	r	परिणाम
समायोजन	आर्थिक मूल्य	150	6810.77	2112.42	896.67	+0.16	धनात्मक (नगण्य)

उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के समायोजन एवं आर्थिक मूल्य में धनात्मक (+0.16) सह सम्बन्ध है परन्तु मान अतयन्त कम होने के कारण नगण्य है अर्थात अध्यापको के आर्थिक मूल्यों का उनके समायोजन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

विवेचना

तालिका "क" में स्पष्ट है कि ग्रामीण अध्यापको में 30 प्रतिशत अध्यापको का समायोजन अपने शैक्षिक परिवेश में बहुत अच्छा पाया गया। 50 प्रतिशत अध्यापको का समायोजन अच्छा, 16 प्रतिशत अध्यापको का समायोजन औसत स्तर का पाया गया तथा 4 प्रतिशत अध्यापक निम्नस्तर पर समायोजित पाए गए। कोई भी ग्रामीण परिवेश का अध्यापक निम्नस्तर पर समायोजित नहीं पाया गया।

तालिका "ख" से से स्पष्ट है कि माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षको के सैद्वान्तिक मूल्य का मध्यमान उनके आर्थिक मूल्य के मध्यमान से अधिक है। जिससे स्पष्ट है कि इन अध्यापकों में सैद्वान्तिक मूल्य अधिक पाया जाता है।

तालिका "ग" उपरोक्त सारिणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के समायोजन एवं सैद्वान्तिक मूल्य में धनात्मक (+0.45) सह सम्बन्ध है अर्थात अध्यापको के सैद्वान्तिक मूल्यों का उनके समायोजन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जिन अध्यापकों में सैद्वान्तिक मूल्य अधिक है उनका अपने विद्यालय में समायोजन भी उच्च है।

तालिका घ से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के अध्यापकों के समायोजन एवं आर्थिक मूल्य में धनात्मक (+0.16) सह सम्बन्ध है परन्तु मान अतयन्त कम होने के कारण नगण्य है अर्थात अध्यापको के आर्थिक मूल्यों का उनके समायोजन पर बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष

उपरोक्त आंकड़ो से स्पष्ट होता है कि अधिकतर ग्रामीण व शहरी परिवेश के विद्यालयों के अध्यापको ने अपने–अपने में सही प्रकार से समायोजन कर रखा है तथा जिन अध्यापको का समायोजन कम आया है।उसका कारण विद्यालयों में प्रयाप्त संसाधन उपलब्ध न होना है।

विद्यालय प्रबंधन तथा ग्रामवासियों का विद्यालय में अनावश्यक दखल देना, कुछ अध्यापको का अन्तर्मुखी होना, अपने समान के प्रति संदेहप्रद रहना, विद्यालयों का मुख्य मार्ग से दूर होना (महिला अध्यापको के सम्बन्ध में) आदि प्रमुख है। इनके अतिरिक्त अध्यापको द्वारा छात्र–वृत्ति, मिड–डे–मिल (कक्षा 6 से 8) विद्यालय रख–रखाव आदि के कारण भी अध्यापको को समायोजन में कठिनाई होती है। छात्र–छात्राओं की कम उपस्थिति, विद्यालयों में शौचालयों का अभाव, विद्यालयों में विधुत का अभाव, पर्याप्त संख्या में शिक्षको का न होना, अभिभावकों का सक्रिय सहयोग न मिलना भी समायोजन को प्रभावित करने वाले कारक पाए गये जिनके कारण अध्यापको का समायोजन प्रभावित होता है।

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि जिन अध्यापकों का सैद्वान्तिक मूल्य उच्च है उनका समायोजन भी उच्च है क्योंकि मूल्य अमूर्त होते है तथा सीखें जातें हैं, एक अध्यापक के जीवन में सैद्वान्तिक, सामाजिक, नैतिक मूल्यों जैसे उच्च मूल्यों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। जिसके कारण वह स्वंय को अपने समाज, विद्यालय, परिवार, कक्षा–कक्ष में समायोजन करते हुए अपने छात्रों को मूल्यपरक व जीवन उपयोगी शिक्षा प्रदान कर उनकी उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

सन्दर्भ

1. *रायजादा रमाकर,2010 –"नवनियुक्ति शिक्षको को शैक्षिक समझ व प्रशिक्षण प्राथमिकताएं– प्राथमिक शिक्षको के विशेष सम्बन्ध में" भारतीय आधुनिक शिक्षा 2010 संस्करण एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।*
2. *यादव, सतीश कुमार (2009) –"अध्यापक शिक्षा . समस्या व चुनोतियां" भारतीय आधुनिक शिक्षा 30(2) 79–85, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।*
3. *माथुर एस.एस. (2000) – "शिक्षा मनोविज्ञान" विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा*
4. *सिंह अरुण कुमार (2010) –"शिक्षा मनोविज्ञान" बनारसी दास मोतीलाल प्रकाशन ,पटना*
5. *कपिल एच.के. (2012) –"अनुसन्धान विधियाँ .व्यवहारपरक विज्ञानों में" एच.पी. भार्गव बुक हॉउस, आगरा*
6. *मंगल एम.के. (2007) –"एडवांस एजुकेशन साईकोलॉजी" प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया प्रा. लि., नई दिल्ली*
7. *गैरेट, हेनरी ई. (1995) –"शिक्षा और मनोविज्ञान में सांख्यिकी के प्रयोग"–कल्याण पब्लिशर्स नई दिल्ली*
8. *प्रो. लाल रमन बिहारी व डॉ. कान्त कृष्ण (2014) – "समकालीन भारत और शिक्षा"– आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

धर्म एवं मानवीय मूल्य

डॉ. रेखा शर्मा
पोस्ट डॉक्टरल फैलो
एन.एम.एस.एन. दास पी.जी. कॉलेज, बदायूँ

मानव जीवन मनुष्य के लिये ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक अतुलनीय, अनुपम एवं अमूल्य उपहार स्वरूप है। मानव जीवन के चार प्रमुख पुरुषार्थ माने गये हैं–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों का ही महत्व मानव जीवन में लक्षित होता है। इनमें प्रथम पुरुषार्थ धर्म है। धर्म ही वह मूल तत्व है, मानव जीवन का, जिसके कारण मनुष्य, मनुष्य बन पाता है और अपने वास्तविक स्वभाव में स्थित हो पाता है। यह धर्म की ही देन है कि जिसके कारण मनुष्य आकृति के साथ–साथ प्रकृति से भी मनुष्य बन पाता है। धर्म के अभाव में मनुष्य, मनुष्य जैसा दिख तो सकता है किन्तु मनुष्य हो नहीं सकता। धर्म को धारण करने वाला व्यक्ति सदा सर्वदा के लिए भयमुक्त एवं विजयी हो जाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में मानवीय मूल्यों को दैवीय सम्पदा के नाम से अभिहित किया गया है। ये मानव जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखते हैं, इस कारण इन्हें मानवीय मूल्य कहा जाता है।

ये मानवीय मूल्य ही आध्यात्मिक विकास का द्वार खोलते हैं, हमारे भीतर स्थित देवत्व को स्वतः जाग्रत करते हैं और परम सत्य की ओर अग्रसारित भी करते हैं। आध्यात्मिक विकास के द्वारा ही व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक शंकाओं व समस्याओं को दूर कर सकता है। इसी कारण आध्यात्मिक विकास ही नैतिक जीवन को व्यवहारिक बनाता है। परिवार मानव की प्रथम पाठशाला है। बालक परिवार से ही संस्कार अर्जित करता है। माता पिता के पश्चात् बालक विद्यालय में गुरुवरों के श्री चरणों में बैठकर सदाचार की शिक्षा प्राप्त करता है। अतः शिक्षालयों में पाठ्यक्रम और आचरण के माध्यम से शिक्षकों को मानवीय मूल्यों की शिक्षा देनी चाहिये। विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न विषयों के माध्यम से बालकों में नैतिक गुणों का आविर्भाव सम्भव होता है। नैतिक मूल्यों की शिक्षा द्वारा अनुशासन, शारीरिक श्रम, सहकारिता तथा भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित किया जाये। संस्कार शिविरों तथा समूह भाव को उद्वेलित करने वाले आयोजन अधिकाधिक हों, ताकि आज का बालक संस्कारवान् नागरिक बन सके और मानवीय मूल्यों की स्थापना से राष्ट्रीय चरित्र का सतत् उत्थान हो सके।

मानव जीवन प्राप्त करना अति दुर्लभ है। मानव जीवन में ही रहकर जीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। अतः मानव जीवन मनुष्य के लिये ईश्वर द्वारा प्रदत्त एक अतुलनीय, अनुपम एवं अमूल्य उपहार स्वरूप है। इसके अतिरिक्त एकमात्र मानव जीवन है, जिसमें भोग

नहीं, अपितु योग की प्रबल सम्भावना मानी जाती है और जीवन के अन्तिम लक्ष्य (मुक्ति) को पाने का अलौकिक अवसर भी प्राप्त है, किन्तु ऐसा होने के लिए आवश्यक है—मानव जीवन में पुरूषार्थ का होना। मानवीय मूल्य सनातन एवं चिरन्तन हैं।

मानव जीवन के चार प्रमुख पुरुषार्थ माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चारों का ही महत्व मानव जीवन में लक्षित होता है। ये क्रमशः चार सोपान हैं—जीवन के चरम के स्पर्श का। इनमें प्रथम पुरुषार्थ धर्म है, जिसका अर्थ है धारण करना। अर्थात् जिस प्रकार कोई विशाल वटवृक्ष अपनी मजबूत जड़ के कारण लम्बे समय तक धरती पर मजबूती से टिका रहता है। ठीक उसी प्रकार धर्म भी मानव जीवन की जड़ अथवा नींव है और उसी धर्मरूपी जड़ से ही मनुष्य को मानवीय गुणों का, संस्कारों का खाद—पानी मिलता है। इसी कारण उसमें मानवीय मूल्यों (संस्कारों व सद्गुणों) के मधुर पुष्प पल्लवित होते हैं।

धर्म ही वह मूल तत्व है, मानव जीवन का जिसके कारण मनुष्य, मनुष्य बन पाता है और अपने वास्तविक स्वभाव में स्थित हो पाता है। जिस प्रकार सूर्य का स्वभाव तपना व जल का स्वभाव बहना है, उसी प्रकार मनुष्य का स्वभाव व स्वधर्म है—मानवता। व्यापक अर्थ में यह भी कहा जा सकता है कि स्वयं के प्रति व समाज, राष्ट्र के प्रति हमारा कर्तव्य ही हमारा स्वधर्म कहलाता है। यह धर्म की ही देन है कि जिसके कारण मनुष्य आकृति के साथ—साथ प्रकृति से भी मनुष्य बन पाता है। सत्य, प्रेम, करूणा, सेवा, संवेदना, क्षमा आदि मानवीय गुण उसके आभूषण बन जाते हैं।

धर्म के अभाव में मनुष्य, मनुष्य जैसा दिख तो सकता है किन्तु मनुष्य हो नहीं सकता। धर्म को धारण करने वाला व्यक्ति सदा सर्वदा के लिए भयमुक्त एवं विजयी हो जाता है। दुर्गुणों की दलदल को लाँघकर वह व्यक्ति पुण्यमयी एवं प्रकाशमयी आभा वाला हो जाता है। ऐसा व्यक्ति चाहे अध्यापक, चिकित्सक, कलाकार, उद्योगपति व किसान कुछ भी हों, इनकी अद्भुत प्रतिभा व पुरुषार्थ से सारी धरती धन्य हो जाती है। वे व्यक्ति व समाज को ऊँचा उठाने में अपनी सम्पूर्ण शक्तियाँ लगा देते हैं।

विश्व इतिहास के इन श्रेष्ठ व दिव्य पुरुषों के चरित्र का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि व्यक्ति एवं समाज की उन्नति के लिए कतिपय गुण आवश्यक हैं। ये गुण ही मानवता की कसौटियाँ साबित होते हैं। इन्हीं गुणों को मानवीय मूल्य कहा जाता है। मूल्य से यहाँ तात्पर्य है जीवन में सत्य—असत्य, व ग्राह्य—त्याज्य—सम्बन्धी विश्वास। मानवीय मूल्य सनातन एवं चिरन्तन हैं। नाना धर्मावलम्बियों, दार्शनिकों, चिकित्सकों, शिक्षाशास्त्रियों व समाजशास्त्रियों ने इन मूल्यों को आध्यात्मिक, बौद्धिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक श्रेणियों में विभक्त कर इन्हें समझने व प्रेषित करने के सम्बन्ध में अपने विभिन्न मत व विचार प्रस्तुत किये हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इन मानवीय मूल्यों को दैवीय सम्पदा के नाम से अभिहित किया गया है। ये मानव जीवन को मूल्यवान बनाने की क्षमता रखते हैं, इस कारण इन्हें मानवीय मूल्य कहा जाता है।

अतः मानवीय मूल्य वे हैं, जो सम्पूर्ण मानवजाति ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण प्राणिसमुदाय की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की संतुष्टि करते हैं। मूल्य मानव जीवन को आदर्श बनाने के प्रयासों के लिए दीपस्तम्भ का कार्य भी करते हैं। सभ्यता और संस्कृति का जीवन–मूल्यों से सम्बन्ध अनुलोम है, जीवन–मूल्य जितने उच्च होंगे, सभ्यता और संस्कृति भी उतनी ही महान् होगी।

व्यक्ति के आन्तरिक विकास के अनुरूप ही उसका जीवन और आचरण नियन्त्रित होता है। इसी में नैतिक व मानवीय मूल्यों का महत्व है और मानव विकास की आदर्श व परम स्थिति तक पहुँचने के लिए यह नियन्त्रण है भी आवश्यक। इसी नैतिक शक्ति के बल पर सत्य, अहिंसा, भ्रातृत्व, न्याय, स्वतंत्रता जैसे सामाजिक मूल्यों के साथ–साथ प्रेम, सुख, शान्ति व निःस्वार्थता की भी अभिव्यक्ति होती है।

ये मानवीय मूल्य ही आध्यात्मिक विकास का द्वार खोलते हैं, हमारे भीतर स्थित देवत्व को स्वतः जाग्रत करते हैं और परम सत्य की ओर अग्रसारित भी करते हैं। आध्यात्मिक विकास के द्वारा ही व्यक्ति अपनी व्यक्तिगत और सामाजिक शंकाओं व समस्याओं को दूर कर सकता है। इसी कारण आध्यात्मिक विकास ही नैतिक जीवन को व्यवहारिक बनाता है। हमारे भीतर स्थित विशुद्ध आत्मा ही हमें ज्ञान, आनन्द, पूर्णता, शुद्धता एवं उत्कृष्टता का दिग्दर्शन कराती है। हमारी आत्मचेतना के विकास का स्तर ही हमारी इच्छा निर्धारित करता है। यदि हमारी आत्मचेतना हमारी देह एवं मन तक सीमित है तो जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण आत्मकेन्द्रित होकर हमें उन इच्छाओं की ओर प्रेरित कर अग्रसर करता है, जिनकी कभी तृप्ति हो ही नहीं सकती। परिणामस्वरूप हमारा जीवन तनाव, चिन्ता व विसंगतियों से भर उठता है। किन्तु जब हमें इन सभी की निस्सारता का ज्ञान होता है तो हम सर्वत्र समभाव का दर्शन करने लगते हैं। इसी कारण हमारे सामाजिक व्यवहार में खुलापन आ जाता है और हमें एक–दूसरे के सुख–दुःख की चिन्ता होने लगती है। यहीं से सामाजिक, नैतिक व मानवीय मूल्यों का जन्म होता है और समाज का उत्थान होने लगता है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति को सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय बनने का प्रयास करना चाहिए, इन्हीं के अन्तर्गत ये सभी गुंण आ जाते हैं।

इस प्रकार किसी भी राष्ट्र की पहचान उसकी संस्कृति एवं सभ्यता से होती है। भारतीय संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है–आस्थावाद, अध्यात्मवाद व मानव कल्याण के लिए सनातन एवं श्रेष्ठतम जीवनमूल्यों की स्थापना। भारतीय चिंतन सदा से ही मूल्यपरक जीवन का पक्षधर रहा है। भारतीय परम्परा में सदैव ही एक ऐसे आदर्श जीवन एवं समाज की अवधारणा की गई है, जिसमें जीवनोपयोगी मूल्यों का स्थान सर्वोपरि हो।

मूल्यों का प्रयोजन व्यक्ति के जीवन की सार्थकता के लिए आवश्यक है। जन्म से मृत्यु तक ही यात्रा में जिन–जिन संस्कारों एवं व्यवहारों के द्वारा व्यक्ति जीवन के महत्वपूर्ण सोपानों

को प्राप्त करता हुआ चरम लक्ष्य के समक्ष पहुँचता है–वे संस्कार ही जीवनमूल्य कहलाते हैं। सत्य, दया, धैर्य, शील, संतोष, विनय, ईमानदारी, अनुशासन आदि वे जीवनमूल्य हैं, जो मनुष्य की भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। भारतीय चिंता परंपरा में मूल्यों को मुख्यतः चार भागों में विभाजित किया गया है–(1) नैतिक या मानवीय मूल्य, (2) सौन्दर्यपरक मूल्य, (3) सामाजिक मूल्य एवं (4) धार्मिक मूल्य। नैतिक मूल्यों के द्वारा ही व्यक्ति शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित, भले–बुरे, कर्तव्य–अकर्तव्य आदि का स्वेच्छापूर्वक निर्धारण कर पाता है।

परिवार मानव की प्रथम पाठशाला है। बालक परिवार से ही संस्कार अर्जित करता है। परिवार में ही बालक में दया, ममता, उदारता, क्षमा, सहनशीलता, स्नेह, प्यार और सेवा–भावना के भाव स्फुरित होते हैं। अतः परिवारजनों का नैतिक चरित्र अनुकरणीय होना आवश्यक है। परिजन ही बालक के लिए नींव के पत्थर हैं, जिस पर बालक का भावी भवन स्थित होता है। माता पिता के पश्चात् बालक विद्यालय में गुरुवरों के श्री चरणों में बैठकर सदाचार की शिक्षा प्राप्त करता है। अतः शिक्षालयों में पाठ्यक्रम और आचरण के माध्यम से शिक्षकों को मानवीय मूल्यों की शिक्षा देनी चाहिये।

विद्यालयी शिक्षा के विभिन्न विषयों के माध्यम से बालकों में नैतिक गुणों का आविर्भाव सम्भव होता है। रामायण, महाभारत,लोककथाओं और बोधकथाओं के पात्र बालक की मानवीय संवेदनाओं को उद्वेलित करते हैं, अतः शिक्षक का दायित्व है कि वह ऐसे प्रसंगों का शिक्षण–मूल्यों के अभिवर्धन की दिशा में सफलतापूर्वक उपयोग करे जिससे ज्ञात–अज्ञात में कथा–प्रसंगों के पात्रों से बालक के चरित्र पर पूर्ण प्रभाव पड़ सके।

प्राचीनकाल में भी पथभ्रष्ट राजकुमारों में नेतृत्व क्षमता तथा मानवीय मूल्यों के विकास हेतु विष्णु शर्मा एवं नारायण पण्डित जैसे शिक्षकों का सानिध्य मिला है। समाज में व्याप्त बुराइयों के निदान तथा शासकों एवं सामाजिकों के नैतिक उत्थान हेतु चारण, भाट आदि को ओजमयी वाणी द्वारा जनजागरण का प्रयास निरन्तर जारी रहा है। रामलीला, हरिश्चन्द्र नाटक तथा कथा उपकथा वाचकों द्वारा लोकधुनों के आधार पर जनजीवन में जागरण उत्पन्न हुआ है।

इसी प्रकार विराट भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठतम मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हुए आदिकवि वाल्मीकि ने रामायण द्वारा मानवीय एकता, समता, विश्वबंधुत्व, आपसी भाईचारे की भावना को उभारा और आदर्श पन्नों के माध्यम से मर्यादित, नैसर्गिक और मूल्योन्मुख जीवन की दिशाधारा प्रवाहित की। रामायण में आगत राम, सीता, भरत, लक्ष्मण, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण आदि के आदर्श चरित्र की विस्तृत विवेचना की है। आदिकाव्य रामायण मर्यादा का महाकाव्य है, उसके महानायक श्रीराम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं और वे एक आदर्श चरित्र हैं। आदर्श चरित्र एक ऐसे व्यक्तित्व को कहा जाता है, जिसमें मानवोचित गुणों की पराकाष्ठा हो, जो किसी समाज व उसके लोगों के सर्वश्रेष्ठ एवं शाश्वत मूल्यों का सर्वोत्तम वाहक हो तथा जिसमें समाज की

समस्त अपेक्षाएँ मूर्तिमान होती हों। रामायण में जितने आदर्श चरित्र हैं, वे सभी मानवता की रक्षा के व्रत से ओतप्रोत हैं।

रामायण के राम एक ऐसे राजा का आदर्श प्रस्तुत करते हैं, जो अत्यन्त उदार हैं, परदुःखकातर हैं, प्रजावत्सल हैं, सहानुभूतिपूर्ण और दीनों के उद्धारक हैं। शासक के रूप में ऐसे राजा राम की अनिवार्यता प्रत्येक युग को रहेगी। रामकाव्य की प्रासंगिकता आज के मानव समाज में इस दृष्टि से भी है कि वह धार्मिकता के वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है। रामायण में वर्णित मूल्यों, मानवीय सम्बन्धों, सामाजिक व नैतिक आदर्शों से परिचित होकर नवयुग की पीढ़ी का किंचित परिष्कार संभव है। रामकथा के पात्रों की प्रेम–भावना तथा मानवीय मूल्य आज के युग की महती आवश्यकता है।

इसी क्रम में श्री हनुमान् जी का चरित्र–सेवा व आत्मसमर्पण का प्रत्यक्ष निदर्शन है। आदिकाव्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि हनुमान् जी शास्त्र–मर्मज्ञ और अपूर्व विद्वान् थे। विद्या और बुद्धि के निधान होते हुए भी उन्होंने श्रीराम की सेवा सुश्रूषा में स्वयं को समर्पित कर दिया। वे सदा धर्मपरायण और असहाय जनों के रक्षक रहे। अखण्ड ब्रह्मचर्य के वे प्रतीक ही बन गये। इतने महान विद्वान और बलवान होने पर भी वे सदा निरीह भक्त के रूप में कार्य करते रहे।

भारतीय समाज ने हनुमान् जी की पूजा सदा धर्म–रक्षक एवं असुर–निकन्दन के रूप में की है। वस्तुतः उनका अवतार 'रामकाज' के लिए हुआ था। गीता में भी कहा गया है कि जब–जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म का उत्थान होता है, तब–तब साधु–संतों की रक्षा हेतु एवं दुर्वृत्तों का विनाश करने के लिए प्रभु इस धरती पर अवतार धारण करते हैं, यही रामकाज है और इसी कार्य में पूर्ण सहायक होने के कारण हनुमान् जी सदा पूज्य बने रहे हैं। मानवीय मूल्यों के मूर्तिमान रूप हनुमान् जी भगवान् के एकनिष्ठ उपासक हैं, इसीलिये समस्त जगत् के कष्ट को दूर करने के लिए सदा उद्यत रहते हैं। भारतीय साहित्य और साधना में ऐसे परोपकारी एकनिष्ठ भगवत्–सेवक का चरित्र दुर्लभ ही है।

इस प्रकार इतिहासपुरूष महामानवों की जीवन–शैली से बालकों को अवगत कराया जाना चाहिए। नैतिक मूल्यों की शिक्षा द्वारा अनुशासन, शारीरिक श्रम, सहकारिता तथा भाईचारे की भावना को प्रोत्साहित किया जाये। संस्कार शिविरों तथा समूह भाव को उद्वेलित करने वाले आयोजन अधिकाधिक हों, ताकि आज का बालक संस्कारवान् नागरिक बन सके और मानवीय मूल्यों की स्थापना से राष्ट्रीय चरित्र का सतत् उत्थान हो सके।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

शिक्षक एवं व्यावसायिक नैतिकता

कु. समृद्धि सिंह
सहायक प्रोफेसर (बी.एड)
शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, छपरा, बिहार।

''शिक्षण एक ऐसा व्यवसाय है, जो सभी व्यवसायों की नींव रखने में सक्षम होता है।'' इसी कारण शिक्षक को भविष्य तथा राष्ट्र का निर्माता कहा जाता है।

शिक्षक के व्यवसाय में मूल्य एवं विश्वास के लिये सिद्धान्तों की आवश्यकता हेाती हैं। जो निम्न है :–

1. उसके बालकों में बौद्धिक एवं चरित्र निर्माण के विकास के लिए प्रेरणा प्रदान करनी चाहिए।
2. उसको स्वयं को उन नियमों एवं आदर्शो में स्थापित करना चाहिए कि विद्यार्थी उन्हें आदर्श मानें।
3. उसको शिक्षण कौशलों एवं ज्ञान जो कि उसके विषय के अनुरूप होने का सम्पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।
4. वह शिक्षण कार्य की गुणवत्ता का पालन करने वाला है एवं उसकी गुणवत्ता बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए।
5. उसको न सिर्फ अपने संस्थान बल्कि समाज के लिए उत्तरदायी होना चाहिए।

विद्यार्थियों के सर्वागीण विकास के लिए प्रेरित करना उसका लक्ष्य होना चाहिए। उपर्युक्त के बाद हम भली प्रकार से यह कह सकते हैं कि शिक्षण एक व्यवसाय है और सभी व्यवसायों में आदर्श स्थान रखता है। क्योंकि यह समाज के निर्माण तथा उसके विकास से प्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। इसके लिए शिक्षक में विभिन्न दक्षताओं की भी आवश्यकता होती है।

नियम एवं सिद्धान्त होने से किसी भी व्यवसाय को एक आधार प्राप्त होता है जिस पर चलकर व्यक्ति अपना विकास करता है। नियम एवं सिद्धान्त सभी व्यावसायिक कार्यो में एकरूपता लाने में सक्षम होते हैं। यह व्यवसाय की प्रकृति भी एक सीमा एक नियंत्रित करते हैं। अतः किसी भी व्यवसाय में नियमों एंव सिद्धान्तों का बहुत महत्व होता है।

शिक्षक को मनुष्यों का निर्माता, राष्ट्र–निर्माता तथा शिक्षा पद्धति की आधारशिला माना जाता है। प्राची काल से शिक्षक ब्रह्मा, विष्णु महेश सदृश पूज्य रहा है परन्तु इस भौतिकवादी युग में उसकी प्रतिष्ठा में कमी आयी है। फिर वर्तमान समय में शिक्षक को अपने अतीत से प्रेरणा लेते हुए कार्य करना चाहिए। वर्तमान शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक, शिक्षार्थी एवं पाठ्यक्रम तीन ध्रुव हैं

इनमें शिक्षक का स्थान सर्वोपरि है, जो अन्य दोनों को प्रभावित करता है। रॉस के अनुसार, ''शिक्षक अपने प्रयासों से विद्यार्थी को जो अपनी प्रकृति के नियमों के अनुसार विकसित होता है, उस उच्चता पर पहुँचने में सहायता देता है, जिस पर वह अपने आप नही पहुँच सकता है।'' शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा–पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है। यह सत्य है कि पाठ्यक्रम पाठ्य–सहगामी क्रियाएँ, पाठ्य–पुस्तकें आदि सभी शैक्षिक कार्यक्रम में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं परन्तु जब तक उनमें अच्छे शिक्षकों द्वारा जीवन–शक्ति प्रदान नहीं की जाती तब तक वे सब निरर्थक हैं। शिक्षक को यह शक्ति उसके व्यावसायिक आचार नीति के पालन एवं आचरण से प्राप्त होती है। अन्य व्यवसायों की भाँति शिक्षण व्यवसाय की अपनी व्यावसायिक आचार नीति तथा विशिष्ट आचरण होता है, जिसकी अपेक्षा प्रत्येक शिक्षकों से की जाती है। शिक्षण व्यवसाय समाज द्वारा विशिष्ट व्यक्तियों को दिया गया विशिष्ट कार्य है। शिक्षक का सम्पूर्ण व्यक्तित्व विद्यार्थियों के जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। अतः इस व्यवसाय में व्यवसायगत मूल्य तथा उनके अनुरूप आचरण एक शिक्षक के लिए परम आवश्यक हो जाता है।

शिक्षकों की व्यावसायिक आचार नीति/संहिता के बारे में प्रसिद्ध विद्वान लॉरी ने लिखा है, ''यदि अध्यापक के पास सच्चा आदर्श प्राप्त नहीं है, उसे शीघ्र ही दुकानदार बन जाना चाहिए, वहाँ उसे अपनी योग्यता के अनुसार निस्सन्देह आदर्श प्राप्त होगा।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के शब्दों में, ''वे अपने कार्य को जीविकोपार्जन का अरूचिकर साधन नहीं समझेंगें, वरन् उसे समाज–सेवा करने का एक महत्वपूर्ण मार्ग समझेंगें, साथ ही उसे आत्मसिद्धि एवं आत्माभिव्यक्ति का उपाय समझेंगें।''

शिक्षक को अपने व्यवसाय/वृत्ति के महत्व को समझना चाहिए। इस व्यवसाय के महत्व के कारण ही शिक्षक को राष्ट्र निर्माता कहा जाता है। वह अपने व्यवसाय के प्रति अन्याय तथा विश्वासघात करता है यदि वह एक बार इस वृत्ति को अपनाकर दूसरे कार्यो में वयस्त रहता है। अपने व्यवसाय/वृत्ति के प्रति निष्ठावान हुए बिना वह अपने विद्यार्थियें को वास्तविक एंव उचित मार्ग दर्शन कदापि नहीं कर सकता। अपने विद्यार्थियों का मार्ग–दर्शन करने एवं उन्हें विकासोन्मुख बनाने के लिए शिक्षक को आवश्यकता है कि वह अपने व्यवसाय या वृत्ति से सम्बन्धित मानदण्डो, मूल्यों को अपने में विकसित कर उसका पालन करें।

शिक्षण व्यवसाय से सम्बन्धित मूल्य

शिक्षण व्यवसाय को प्रभावशाली बनाने के लिए शिक्षक से निम्नलिखित मूल्यों की अपेक्षा की जाती है।

1. मानवीय मूल्य– शिक्षण कार्य व्यक्ति निर्माण का कार्य है। शिक्षक सम्पूर्ण शिक्षण प्रक्रिया की गत्यात्मक शक्ति है। विद्यार्थियों के उच्च मानवीय मूल्यों के विकास के लिए आवश्यक

है कि शिक्षक में सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, नैतिकता, आदर्शवादिता, सहानुभूति आदि मानवीय मूल्य विद्यमान हो।

2. मानवाधिकार– शिक्षक को शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थियों को बाल्यावस्था में ही मानवाधिकारों से अवगत करा देना चाहिए। ऐसी अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा शिक्षक से की गयी है। ऐसे में शिक्षक को स्वयं मानवाधिकारों का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए।

3. कर्तव्यपरायणता– शिक्षण का कार्य एक विशिष्ट कार्य है, जिसे शिक्षक की कर्तव्य परायणतासे और अधिक प्रभावी बनाया जा सकता है।

4. निजता का सम्मान– शिक्षक को अपने शिक्षण कार्य के दौरान विद्यार्थियों के साथ अच्छे पारस्परिक सम्बन्ध विकसित करने के लिए आवश्यक है कि वह विद्यार्थियों की निजता का सम्मान करें तथा विद्यार्थियों को ऐसा विश्वास भी कराने में सक्षम हो।

5. समयनिष्ठता– अपने छात्र–छात्राओं में समय निष्ठता का विकास करने के लिए शिक्षक को अपने कार्यो में इसे समाहित कर प्रदर्शित करना होगा। जो उसके विद्यार्थियों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है।

6. समानता– शिक्षक को अपने शैक्षिक जीवन में सभी विद्यार्थियों के साथ समान व्यवहार करना चाहिए। उसका व्यवहार सभी के प्रति पक्षपात रहित होना चाहिए।

7. सम्मान एवं आत्मसम्मान– शिक्षक को आत्मसम्मान से परिपूर्ण होना चाहिए ताकि वह विद्यार्थियों में आत्म–सम्मान का भाव विकसित कर सके। साथ ही वह दूसरे के प्रति भी सम्मान का भाव रखें।

8. परानुभूति एवं शिक्षण कुशलता– शिक्षक में अपने कक्ष के विद्यार्थियों के संवेगों को ठीक से समझने और नियंत्रित करने के लिए परानुभूति होना आवश्यक है। शिक्षक को शिक्षण कौशलों में कुशल होने पर अपने शिक्षण को प्रभावी बनाने में सहायता मिलती हैं।

शिक्षक के उत्तरदायित्व

इस सच्चाई से इंकार नहीं किया जा सकता कि शिक्षा की किसी भी योजना के क्रियान्वयन में शिक्षकों की ही निर्णायक भूमिका रहती है। यदि किसी भी देश के भाग्य के निर्माण में उसके बालकों की दी जाने वाली शिक्षा का हाथ माना जाता है तो इस भाग्य का निर्माता कोई और नहीं बल्कि उस देश के शिक्षक ही होते हैं। बच्चों को सामाजिक प्राणी के रूप में रहना सिखाने तथा अच्छे नागरिक के रूप में अपना, अपने देश और सारी मानवता का कल्याण करने में योगदान देने की बात शिक्षकों के प्रयासों का ही प्रतिफल होती हैं।

कुशल और प्रभावशील शिक्षक अपनी योग्यताओं, क्षमताओं तथा गुणों के कारण जहाँ विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का सर्वागीण विकास करने की दिशा में वरदान सिद्ध हो सकते हैं वहीं

अक्षम एवं अयोग्य अध्यापक विद्यार्थियों के भविष्य को बिगाड़ भी सकते हैं पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है अतः एक शिक्षक से उम्मीद की जाती है कि वह अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन भली प्रकार करें क्योंकि शिक्षक का प्रभाव उसके विद्यार्थियों पर प्रत्यक्ष रूप से पड़ता है अतः उससे समाज को विभिन्न उम्मीदें होती हैं।

शिक्षक पूरे शिक्षण तंत्र की नींव होता है, जिस प्रकार एक भवन को स्थिर एवं दृढ़/मजबूत बनाए रखने की जिम्मेदारी नींव होती है, ठीक उसी प्रकार किसी देश की अखण्डता और विकास की जिम्मेदारी शिक्षक के कंधों पर होती है उस देश का भविष्य शिक्षक पर निर्भर करता है। जिस कारण एक शिक्षक से समाज के विभिन्न वर्गो की आशाएँ बंधी होती हैं। फलतः देश अथवा समाज के प्रति उसकी जिम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं।

शिक्षक न केवल अपने शिक्षण कार्य के प्रति वरन् कई अन्य पक्षों के प्रति भी जिम्मेदार होता है। इन जिम्मेदारियों का विवरण निम्नवत् प्रस्तुत है–

पेशेवर जिम्मेदारियाँ

एक शिक्षक की अपने पेशे के प्रति भी कुछ जिम्मेदारियाँ होती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. छात्रों के प्रति अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का पालन करना।
2. स्कूल योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों के विकास में सहयोग करना।
3. वसीयत और दस्तावेज शिक्षण और सीखने के कार्यक्रमों का विकास करना उचित मूल्यांकन तंत्र के लागू करना।
4. विकलांग या अन्य विशेष जरूरतों वाले छात्रों सहित सभी छात्रों के साथ न्याय संगत व्यवहार करना, उनके उपचार की आवश्यकता के प्रति सचेत होनाय छात्रों की व्यक्तिगत सीखने की जरूरतों को पूरा करना और उनके या उसके सीखने के परिणामों को अधिकतम करने के लिए प्रत्येक छात्र की सहायता करना।

शिक्षक के व्यावसायिक विकास में दक्षताओं की आवश्यकता होती है जिससे शिक्षक में व्यावसायिक नैतिक्ता आती है और शिक्षक को विकास के अक्सर प्राप्त होते हैं। ये दक्षताएँ अग्र प्रकार हैं–

1. विषयवस्तु सम्बन्धी दक्षताएँ– किसी भी अध्यापक को अपने पढ़ाये जाने वाले विषय में पूरा अधिकार हो। यही नहीं, उसे सम्बन्धित विषयों का भी ज्ञान हो। सामान्य ज्ञान तो होना ही चाहिए। अध्यापक जितना ही विषय पर अधिकार रखना होगा वह छात्रों के लिए उतना ही प्रिय बन जाता है। विषय में मास्टरी रखने वाला व्यक्ति ही अधिगम कराने में सक्षम होगा। यह क्रिया उसके लिए आनन्द की क्रिया हो जाती है। इस हेतु अध्यापक को एक अच्छा पाठक, एक अच्छा अधिगमकर्ता होना चाहिए। पाठ्य–योजना बनाते समय भी छात्राध्यापकों/

छात्राध्यापिकाओं को सन्दर्भ पुस्तकों का उल्लेख करने से आधुनिक एवं परिवर्द्धित ज्ञान का विकास होता है।

2. सम्प्रेषण सम्बन्धी दक्षता– शिक्षक कार्य के लिए सबसे मुख्य कार्य जो अध्यापक को करना होता है वह है विषयवस्तु (ज्ञान) का सम्प्रेषण करना अर्थात् ज्ञान को छात्रों तक पहुँचाना, जिससे वे ज्ञान को आत्मसात् कर सकें। तभी अधिगम का स्तर भी बढ़ता है। ज्ञान स्मृति–पटल से चिन्तन–पटल तक ले जाता है, जहाँ सम्प्रेषण मनोवैज्ञानिक विधियों का भी ज्ञान होना जरूरी है। उसे अपनी योग्यता, क्षमता के अलावा छात्र की रूचि, योग्यता, पूर्वज्ञान एंव उन परिस्थितियों को जानना भी आवश्यक होता है, जो सम्प्रेषण को बढ़ाती हैं।

अध्यापाक का सम्प्रेषण उसकी प्रभावशीलता के द्वारा परखा जा सकता है। कक्षा में यही अवयवों पर निर्भर करता है, जैसे–1. अधिगमकर्ता के गुणात्मक स्थिति, 2. कक्षागत वातावरण, 3. अध्यापक की संलिप्तता, 4. अधिगमकर्ता का प्रति उत्तर, व्यक्तिगत विकास एंव बालक की मन स्थिति, रूचि, वातावरण, ध्यान इत्यादि।

3. अन्य शैक्षिक क्रियात्मक दक्षताएँ– विषयवस्तु का सम्प्रेषण करने के लिए पाठ्येत्तर क्रियाओं की आवश्यकता होती है। हाथों द्वारा बनाये गये उपकरण, इधर–उधर फैले संसाधनों का उपयोग, वैज्ञानिक विधियों का उपयोग, सामाजिक पर्वो का आयोजन, जिससे हम भ्रमण, श्रमदान, सहयोग, विचार–चिन्तन, आपसी भाईचारा सीखते हैं, वहीं छात्राध्यापक/छात्राध्यापिकाएँ अन्य गुणों को भी सीखते हैं जो भावात्मक प्रशिक्षण के रूप में उपयोगी होता है।

4. शिक्षण–अधिगम सामग्री निर्माण में दक्षताएँ– अधिगम के सम्प्रेषण के लिए आवश्यक है कि छात्राध्यापक/छात्राध्यापिकाएँ ऐसे उपकरण बनाने में दक्ष हों, जिससे बालक विषयवस्तु को शीघ्रता से सीखें, जैसे–घड़ी न होने पर नाड़ी की धड़कन से समय का मापन करना।

भास्मिक एव अम्लीय मूलकों का गुणात्मक परीक्षण हेतु किप के उपकरण की आवश्यकता होती है। उपकरण काफी बड़ा होता है। प्रायः एक ही कक्षा के लिए एक उपकरण में इतनी भीड़ हो जाती है कि अनावश्यक स्तर इन्तजार में ही लग जाता है। शिक्षक ने एक Handy kipp"s apparatus विकसित किया था, जिसे प्रत्येक सीट पर रखा जा सकता है। वह पूरी तरह बड़े किप की तरह ही कार्य करता है। कार्य के पश्चात् वह स्वतः ही बंद हो जाता है।

अर्द्धसूक्ष्म विधि द्वारा जो हायर सेकेण्डरी एवं इण्टरमीडिएट कक्षाओं के लिए विकसित की गयी, उसमें परखनली के स्थान पर टाइल्स में परीक्षणीय पदार्थ की एक बूँद रखकर ड्रॉपर Reagent की बूँद द्वारा अवक्षेप देखते हैं।

हस्त निर्मित सौर ऊर्जा सेल, विद्युतीय उपकरण, वाटर हीटर (जो पानी गर्म करता है) तथा हीटर आदि देखे जा सकते हैं।

एक दक्ष अध्यापक अपने छात्रों को हाथ से बनाये गये अनेक उपकरण बनाने की प्रेरणा दे सकता है। घरेलू सामग्री से मोटर आदि के मॉडल बनाये जा सकते हैं। जल विश्लेषण या जल–अपघटन का उपकरण आसानी से बन सकता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सब्जियों, फलों एवं खाद्य को सुरक्षित रखने के लिए देशी कुलर बनाये गये हैं जो बिना बिजली के आवश्यक ठण्डक देकर खाद्य पदार्थो को सुरक्षित रखते हैं।

अध्यापन के समय बाजार निर्मित उपकरणों की जगह पर अध्यापक या छात्रों द्वारा स्वनिर्मित उपकरण अधिक प्रभावी रहते हैं।

लैंस पर आधारित दूरबीन, सौर ऊर्जा के उपयोग सम्बन्धी उपकरण, गुरूत्वाकर्षण सम्बन्धी खिलौने छात्रों को प्रेरणा द्वारा बनवाये जा सकते हैं। छात्र निर्मित विज्ञान कॉर्नर में छात्र निर्मित उपकरणों, चाटों एवं संगृहीत वस्तुओं को रख सकते हैं।

विद्यालय में विज्ञान मेले का आयोजन, विज्ञान प्रदर्शनी एवं संग्रहालयों का अवलोकनार्थ भ्रमण वैज्ञानिक सोच उत्पन्न करने हेतु लाभदायक होता है।

5. सन्दर्भगत दक्षताएँ– सभी विषय परन्तु विशेष रूप से विज्ञान जैसे विषयों को पढ़ाते समय मूलभूत या आधारभूत प्रत्यय स्पष्ट करने हेतु सन्दर्भगता दक्षता प्राप्त करना आवश्यक है।

यह दक्षता इस बात पर जोर देती है कि हम जब तक पाठ्यवस्तु के सन्दर्भ बिन्दुओं को समझ नही लेते, तब तक विषय वस्तु भी समझ में नहीं आती। किसी घटना को तब ही हम भली–भाँति समझ सकते हैं जब हम उस सन्दर्भ की परिस्थितियों (आर्थिक, सामाजिक या सांस्कृतिक) को समझ लेते हैं, जैसे वैदिक काल में अध्यापक ब्राह्मण ही हुआ करते थे। अब हर जाति और धर्म के व्यक्ति अध्यापकीय कार्य में लगे हुए हैं। लोकतंत्र में सभी को अध्यापकीय व्यवसाय में आने का हक है। देश, काल, पात्र आदि के परिवर्तन से तथ्य एवं अर्थ भी बदल सकते हैं।

अध्यापकीय शिक्षा समाज से सम्बन्धित होती है, जिसका काम समाज के उच्चतर मूल्यों को स्थापित करना है इसलिए समाज के मूल्य, सामाजिक–आर्थिक स्थिति एवं सांस्कृतिक मूल्यों का जानना जरूरी है।

विज्ञान के मामले में भी ऐसा ही है। अध्यापक ने कुछ विज्ञान के छात्राध्यापकों से प्रश्न किया कि शक्कर पानी में घुल जाती है, रेत क्यों नहीं? इसका उत्तर केवल घुलनशील एवं अघुलनशील मात्र कहने से पूरा नहीं हो जाता। घुलनशील से सम्बन्धित निहित बिन्दुओं का जानना जरूरी है। हाइड्रोजन बॉण्ड से सम्बन्धित कर उत्तर की पूर्ति होती है न कि केवल घुलनशील कह देने से। प्रश्न का उत्तर कक्षा 11 की विज्ञान की पुस्तकों में मिल जाएगा। तात्पर्य यह है कि अध्यापक को पाठ्यवस्तु के बिन्दुओं को समझना जरूरी है।

आजादी प्राप्ति के समय हमारे देश में जो शिक्षा पद्धति चल रही थी वह अभी भी चल रही है। वैज्ञानिक प्रगति के साथ नये–नये विषय आ रहे हैं, मूल्य भी बदल रहे हैं। एक अध्यापक को नवीनतम जानकारी तथा मूल भावना से परिचित होना चाहिए। आधुनिक काल में कम्प्यूटर विषय के सम्बन्ध में जानकारी होना हमारी आवश्यकता हो गयी है।

इसलिए सन्दर्भगत दक्षता प्राप्त करना प्रत्येक अच्छे एवं सफल अध्यापक/अध्यापिका को जानना जरूरी है। वैश्वीकरण, उदारीकरण, ज्ञान के प्रसंग तथा परिवर्तन सम्बन्धी चुनौतियों के बारें अपने अध्यापक को जानना जरूरी है। सफल अध्यापक वही है जो लगातार अध्ययनरत रहता है और अपने ज्ञान की क्षुधा को शांत करने में लग जाता है।

6. संकल्पना को स्पष्ट करने की दक्षता–आध्यापक के लिए आवश्यक है कि उसमें जटिल संकल्पनाओं को सरल ढ़ंग से स्पष्ट करने की दक्षता होनी चाहिए। रॉकेट, एवं मिसाइल चलाने संबंधी संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए दीपावली में चलाये जाने वाले आकाशवाण (जिन्हें बच्चे पटाखानों के रुप में छुड़ाते हैं) से न्यूटन की गति के तृतीय नियम से प्रारम्भ करते हुए रॉकेट के चालन सिद्धान्त को स्पष्ट करें।

7. मूल्यांकन आधारित दक्षताएँ

8. समुदाय एवं अन्य संगठन सह–कार्य दक्षताएँ

9. प्रबन्ध सम्बन्धी दक्षताएँ

10. अभिभावक सह–कार्य दक्षताएँ

11. अधिगमकर्ता (सीखने वाले छात्र/छात्राओं) के प्रति प्रतिबद्धता

12. आजीविका के प्रति प्रतिबद्धता

13. भाषायी प्रतिबद्धता

14. मूलभूत मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता– आजकल सामाजिक क्षेत्र में मूल्यों का क्षरण हो रहा है। घोटाला, घूसखोरी, बेईमानी, यौन शोषण जैसी गन्दगी हमारे समाज में तेजी से फैल रही है। ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, सेवाभाव, समयबद्धता का आम जीवन में अभाव हो रहा है।

अध्यापक को अप्रत्यक्ष रूप से इन गुणों को बालकों में सम्प्रेषित करना चाहिए। इसके लिए जो सबसे जरूरी गुण है वह है समयबद्धता। अध्यापक कक्षा में नियमित रूप से समय पर पहुँचे। तभी छात्र भी समय पर कक्षाओं में पहुँचेंगें।

मूल्यों के सम्बन्ध में प्रशिक्षण अध्यापकों को सेवापूर्व एवं सेवाकालीन दोनों ही स्तरों पर अनिवार्यतः दिया जाये।

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

डिजीटल इंडिया एवं मानवीय मूल्य

डॉ. शैलेन्द्र कुमार
प्राचार्य, सैयद डिग्री कॉलेज, सैदपुर, बदायूँ।

डिजिटल इंडिया भारत सरकार की एक पहल है जिसके तहत सरकारी विभागों को देश की जनता से जोड़ना है। इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बिना कागज के इस्तेमाल के सरकारी सेवाएं इलेक्ट्रॉनिक रूप से जनता तक पहुंच सकें। इस योजना का एक उद्देश्य ग्रामीण इलाकों को हाई स्पीड इंटरनेट के माध्यम से जोड़ना भी है। डिजिटल इंडिया के तीन मुख्य घटक हैं–

1. डिजिटल आधारभूत ढाँचे का निर्माण करना,
2. इलेक्ट्रॉनिक रूप से सेवाओं को जनता तक पहुंचाना,
3. डिजिटल साक्षरता।

योजना को 2019 तक कार्यान्वयित करने का लक्ष्य है। एक टू–वे प्लेटफॉर्म का निर्माण किया जाएगा जहाँ दोनों (सेवा प्रदाता और उपभोक्ता) को लाभ होगा। यह एक अंतर–मंत्रालयी पहल होगी जहाँ सभी मंत्रालय तथा विभाग अपनी सेवाएं जनता तक पहुंचाएंगें जैसे कि स्वास्थ्य, शिक्षा और न्यायिक सेवा आदि। चयनित रूप से पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (पीपीपी) मॉडल को अपनाया जाएगा। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय सूचना केंद्र के पुनर्निर्माण की भी योजना है। यह योजना मोदी प्रशासन की टॉप प्राथमिकता वाली परियोजनाओं में से एक है। यह एक सराहनीय और सभी साझेदारों की पूर्ण समर्थन वाली परियोजना है। जबकि इसमें लीगल फ्रेमवर्क, गोपनीयता का अभाव, डाटा सुरक्षा नियमों की कमी, नागरिक स्वायत्तता हनन, तथा भारतीय ई–सर्विलांस के लिए संसदीय निगरानी की कमी तथा भारतीय साइबर असुरक्षा जैसी कई महत्वपूर्ण कमियाँ भी हैं। डिजिटल इंडिया को कार्यान्वयित करने से पहले इन सभी कमियों को दूर करना होगा।

डिजिटल भारत के प्रमुख स्तम्भः डिजिटल इंडिया के 9 स्तंभ हैं–

1. ब्रॉडबैंड हाईवे
2. सबको फोन की उपलब्धता
3. इंटरनेट तक सबकी पहुंच
4. ई–शासन (टेक्नालॉजी की मदद से शासन)
5. ई–क्रांति (इलेक्ट्रॉनिक सेवाएं)
6. सभी के लिए सूचना

7. इलेक्ट्रॉनिक मैन्युफैक्चरिंग
8. आईटी के जरिए रोजगार
9. भविष्य की तैयारी के कार्यक्रम

डिजिटल इंडिया के सामने चुनौतियाँ

भारत सरकार की संस्था 'भारत ब्रॉडबैंड नेटवर्क लिमिटेड' नेशनल ऑप्टिकल फाइबल नेटवर्क जैसी परियोजना को कार्यान्वयित करेगी जो डिजिटल इंडिया कार्यक्रम की देखरेख करेगा। बीबीएनएल ने यूनाइटेड टेलीकॉम लिमिटेड को 250,000 गाँवों को एफटीटीएच ब्रॉडबैंड आधारित तथा जीपीओएन के द्वारा जोड़ने का आदेश दिया है। यह 2017 तक (अपेक्षित) पूर्ण होने वाली डिजिटल इंडिया परियोजना को सभी आधारभूत सुविधाएं मुहैया कराएगी।

डिजिटल इंडिया भारत सरकार की आश्वासनात्मक योजना है। कई कम्पनियों ने इस योजना में अपनी दिलचस्पी दिखायी है। यह भी माना जा रहा है कि ई–कॉमर्स डिजिटल इंडिया प्रोजेक्ट को सुगम बनाने में मदद करेगा। जबकि, इसे कार्यान्वयित करने में कई चुनौतियाँ और कानूनी बाधाएं भी आ सकती हैं। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि देश में डिजिटल इंडिया सफल तबतक नहीं हो सकता जबतक कि आवश्यक बीसीबी ई–गवर्नेंस को लागू न किया जाए तथा एकमात्र राष्ट्रीय ई–शासन योजना (National e & Governance Plan) का अपूर्ण क्रियान्वयन भी इस योजना को प्रभावित कर सकता है। निजता सुरक्षा, डाटा सुरक्षा, साइबर कानून, टेलीग्राफ, ई–शासन तथा ई–कॉमर्स आदि के क्षेत्र में भारत का कमजोर नियंत्रण है। कई कानूनी विशेषज्ञों का यह भी मानना है कि बिना साइबर सुरक्षा के ई–प्रशासन और डिजिटल इंडिया व्यर्थ है। भारत ने साइबर सुरक्षा चलन ने भारतीय साइबर स्पेस की कमियों को उजागर किया है। यहाँ तक कि अबतक राष्ट्रीय साइबर सुरक्षा योजना 2013 अभी तक क्रियानवयित नहीं हो पायी है। इन सभी वर्तमान परिस्थियों में महत्वपूर्ण आधारभूत सुरक्षा का प्रबंधन करना भारत सरकार के लिए कठिन कार्य होगा। तथा इस प्रोजेक्ट में उचित ई–कचरा प्रबंधन के प्रावधान की भी कमी है।

Digital India Program भारत को डिजिटल तौर पर सशक्त बनाने के लिए कार्यक्रम है...

डिजिटल इंडिया प्रोग्राम भारत को डिजिटल तौर पर सशक्त बनाने के लिए शुरू किया गया कार्यक्रम है। इस अभियान के तहत शिक्षा, अस्पताल समेत सभी स्वास्थय सेवाओं और

सरकारी दफ्तरों को गांव से देश की राजधानी से जोड़ा जाएगा। जिसके लिए 2019 तक 2.5 लाख गांवों में ब्रॉडबैंड सेवा उपलब्ध होगा। जिसके माध्यम से आम आदमी सरकार से प्रत्यक्ष तौर पर जुड़ेगा। सके अलावा सरकार देशभर में वाई–फाई की सुविधा उपलब्ध कराएगी। ताकि आम आदमी को किसी भी काम के लिए इंतजार न करना पड़े। इसके साथ ही सारे काम ऑनलाइन होने से कागज की भारी बचत होगी जिससे पर्यावरण को भी फायदा होगा।

डिजीटल इंडिया के लिये इन नौ क्षेत्रों पर ध्यान देना होगा–

1. सड़क हाइवे की तर्ज पर ब्रॉडबैंड हाइवे से शहरों को जोड़ना।
2. सभी नागरिकों की टेलिफोन सेवाओं तक पहुंच
3. सार्वजनिक इंटरनेट ऐक्सेस कार्यक्रम के तहत इंटरनेट सेवाएं मुहैया कराना।
4. ई–गवर्नेंस के तहत तकनीक के माध्यम से शासन प्रशासन में सुधार लाना।
5. ई–क्रांति के तहत विभिन्न सेवाओं को इलेक्टॉनिक रूप में लोगों को मुहैया कराना।
6. इंफॉर्मेशन फॉर ऑल यानी सभी को जानकारियां उपलब्ध कराना।
7. भारत में इलेक्टॉनिक उत्पादों के लिए कल–पुर्जों के आयात

डिजीटल इंडिया एवं मानवीय मूल्य

पिछले तीन दशकों में दुनिया भर में गुड गवर्नेंस और सरकार के बेहतर परफॉरमेंस को लेकर आम राय सी बन गई है। प्रत्येक व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधि को इन्हीं पैमानों पर मापा जाने लगा हैः उसकी उपयोगिता क्या है और उसका समाज के लिए उत्पादकता में क्या योगदान है।

इतना ही नहीं, कोई व्यक्ति समाज में सहयोग (विशेष तौर पर आर्थिक सहयोग) का कितना अधिकारी है इसका पैमाना भी अब ये दो मूल्य– उपयोगिता और उत्पादकता हो चुके हैं। भारतीय नीतिगत समझ में भी क्रमशः इसी मॉडल को पिछले तीन दशकों से लागू किया जा रहा है।

वास्तव में ये प्रक्रिया सामाजिक परिवर्तन की ठीक वैसी ही प्रक्रिया है जैसी अठाहरवीं सदी और उन्नीसवीं सदी के यूरोप में आधुनिकरण के नाम पर और अच्छे प्रशासन के नाम पर हो रहा था। इन पूरे परिवर्तनों के पीछे इसी प्रकार की उपयोगितावादी सोच की भूमिका थी।

वास्तव में उस समय के यूरोप में ऐसा दो कारणों से हो रहा था– एक, ऐसे समाज का निर्माण जो औद्योगिक आवश्यकताओं के अनुसार हो और दूसरा एक ऐसा व्यक्तिपरक समाज जो राज्य के अनुसार और उसके निर्देशों के अनुसार चले।

जेरेमी बेन्थम का नाम ऐसे विचारकों की श्रेणी में सबसे ऊपर आता है। इस प्रकार की व्यवस्था ने एक ऐसे समाज और ऐसी राजनैतिक व्यवस्था को पैदा किया जिसमें उत्पादकता

पहला नैतिक मूल्य थी। उपनिवेशवाद और औद्योगिक शोषण भी इसी विचारधारा के परिणाम थे। और अंतत इसने एक अत्यंत असमान समाज व्यवस्था को मजबूत किया जिसमें मानवीय नैतिक मूल्यों के लिए कोई स्थान नहीं था, और आज भी इसी व्यवस्था को आंकड़ों और वेबसाइट से प्रचारित प्रसारित किया जा रहा है। इसी प्रचार प्रसार का परिणाम है कि इसके नकारात्मक रूप देखने के बावजूद भी भारत जैसे देश में ऐसी ही व्यवस्था लागू करने का प्रयास हो रहा है। खतरनाक ये है कि ऐसे संरचनात्मक बदलाव के पीछे नैतिकता सहारा लिया जाता है।

सरसरी तौर पर तो लगता है कि इसमें बुरा क्या है? आखिर प्रत्येक व्यक्ति समाज से ही तो अपना अस्तित्व जानता है, तो ऐसे में उस व्यक्ति को भी उस समाज के प्रति उत्तरदायी होना चाहिए। पर ये मुद्दा यहीं समाप्त नहीं हो जाता।

अगर सवाल केवल समाज के प्रति उत्तरदायित्व और कर्तव्यों के रूप में कुछ मूल्यों को लेकर हो तो इस पर बात होनी भी चाहिए पर अगर इन्हें प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के आधारभूत मूल्यों तथा उसके सामाजिक अस्तित्व का आधार मान लिया जाये तो ये अत्यंत विध्वंसक हो सकता है। खतरा ये है कि उत्पादकता और उपयोगिता दोनों ही आर्थिक आधार पर परिभाषित किए जाते हैं। उपयोगिता और उत्पादकता दोनों ही मूल्य किसी व्यक्ति के महत्व को आर्थिक तत्वों तक सीमित कर देते हैं। अर्थात, ये बहस कर्तव्यों तक सीमित नहीं बल्कि मानवीय अस्तित्व को ही पुनर्भाषित करने का प्रयास है।

इन्हें पुनर्भाषित करने का एक महत्वपूर्ण प्रयास जो पिछले तीन दशक में हुआ है वो है उपयोगिता और उत्पादकता की वैज्ञानिक और ऑब्जेक्टिव व्याख्या। अर्थात कुछ ऐसे संगणिकीय और गणितीय मॉडल का विकास जिससे इनको नापा जा सके। किसी भी प्रकार की गणना के लिए मूल्यों को संख्याओं में बदलना आवश्यक है। अन्य शब्दों में, उपयोगिता और उत्पादकता की भी गणितीय व्याख्या। गणितीय और आर्थिक व्याख्याओं के साथ दो चीजें और जुडी होती हैंः पहला इनमें मानवीय सरोकारों के लिए कोई स्थान नहीं होता और दूसरा इनसे जुड़ी हुई गतिविधियां एक मशीनी रूप ले लेती हैं जिसमें नियमों के अक्षरसः अनुपालन पर बल दिया जाता है।

ऐसे में समाज और समुदाय जैसे शब्द महत्वहीन होने लगते हैं। साथ ही संस्थाओं का मशीनीकरण और नौकरशाहीकरण हो जाता है। संस्थाएं ऐसे में व्यक्तियों के विकास और समाज के विकास का स्वरूप नहीं रह जातीं अपितु केवल साल भर में दिए गए कुछ टारगेट को पूरा करने वाली कंपनी बन जाती हैं उसमें काम करने वाले लोग केवल उन टारगेट को पूरा करने रहने वाले एजेंट मात्र रह जाते हैं। एक मनुष्य होने के नाते उनका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता क्योंकि उनकी रोजमर्रा की गतिविधियों को उपयोगिता और उत्पादकता से मापा जाता है। और इसे भी अंतत संख्याओं में बदल दिया जाता है। अर्थात आपके प्रत्येक काम में आपको कितने

स्टार मिले वो महत्वपूर्ण है। पर उन कामों का क्या जो लीक से हटकर हों और या फिर जिनके बारे में समाज में जानकारी न हो, या फिर या फिर वो किसी नए अनुसंधान या विचार से जुड़ा हो। प्रेम विवाह को जो कि सामाजिक नियमों के खिलाफ किया गया हो, में कैसे हम स्टार देकर उसकी उपयोगिता और उत्पादकता को माप सकते हैं? इसी प्रकार समाज में वृद्ध माता पिता या फिर किसी बीमार सदस्य को इन मूल्यों से कैसे देखेंगे?

किसी अन्य समाज के लिए की गई कोई भी सहायता या फिर किसी अन्य शक्ति में विश्वास के साथ की गयी प्रार्थना को समझने के लिए उपयोगिता और उत्पादकता के मॉडल में कोई स्थान नहीं रह जाता। ये कुछ सवाल हैं जो किसी भी संवेदनशील व्यक्ति को झकझोर देंगे।

सवाल केवल ये नहीं है कि क्या इन सब के लिए भी उत्पादकता और उपयोगिता के यही नियम लागू होंगे जो अन्य लोगों के लिए होंगे। सवाल ये है कि जब अन्य लोग एक ऐसी व्यवस्था में उलझे होंगे जहां प्रत्येक क्षण उन्हें अपनी उत्पादकता, अपने काम की उत्पादकता और वो कैसे समाज या किसी संस्थान में उत्पादकता बढ़ाने में योगदान दे सकता है, तो ऐसे में बुजुर्गों, बीमार व्यक्तियों या बच्चों और प्रेम के लिए समय ही कहां बचेगा, क्योंकि ये सब तो किसी उत्पादकता के नियम के अनुसार समाज में संख्याओं में कुछ जोड़ते नहीं। हां, भावनाओं के तौर पर, मानसिक संतोष के तौर पर अवश्य योगदान करते हैं। पर आप जब एक ऐसी व्यवस्था में हैं जहां संस्थान का प्रमुख (पुरुष या महिला) कहती है कि वो आपकी समस्या समझते हैं पर मजबूर हैं क्योंकि संख्याओं में आपने कुछ भी नहीं किया, तो आप क्या करेंगे।

वास्तव में जिस प्रकार के संस्थागत परिवर्तन आज हो रहे हैं और जिस प्रकार का नीतिगत ढांचा सरकार बनाने का प्रयास कर रही है, विशेष तौर पर शिक्षण संस्थानों में, उसके इसी प्रकार के विध्वंसक परिणाम होंगे। उपयोगिता एक ऐसी राजनीतिक संकल्पना है जो आधुनिक मशीनी युग की देन है। इसमें व्यक्ति को केवल उसकी शारीरिक, मानसिक योग्यताओं के आधार पर देखा जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के साथ कुछ ऐसे गुण जोड़ दिए जाते हैं जिस पर खरा उतरने पर ही उसका समाज में अहमियत को, या किसी संस्था में आवश्यकता को सही माना जाता है।

इन गुणों को निर्धारित कौन करता है, ये एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है। इन्हें निर्धारित करने का काम शासक वर्ग करता है। संस्थाओं में ये काम संस्था प्रमुख करते हैं।

संरचनात्मक परिवर्तन के बाद इस तरह की उपयोगितामूलक निर्धारण की प्रक्रिया छोटे से लेकर बड़े स्तर तक होती है। अर्थात संस्थाओं की कड़ी में प्रत्येक व्यक्ति उपयोगिता के तर्क से संचालित होता है और वो दूसरों को भी इसी तर्क से देखे ये उसकी मजबूरी भी होती है।

अन्य शब्दों में इस पूरी प्रक्रिया में आर्थिक आधार, संख्याएं और शासकीय व्याख्याएं महत्वपूर्ण हो जाती हैं और मानवीय मूल्य धीरे–धीरे ऐसे अवधारणा में तब्दील हो जाते हैं जिनके बारे में प्रत्येक व्यक्ति को सहानुभुति तो होती है पर उस पर कोई गौर नहीं करना चाहता।

प्रत्येक व्यक्ति की नागरिकता की परिभाषा अब उसकी सामाजिक और व्यक्तिगत उपयोगिता से ही निर्धारित होगी। उनके कार्यों और सेवाओं को इस आधार पर नापा जायेगा की वो अगर किसी भी मायने में कुछ ऐसा योगदान करते हैं जिसे संख्याओं में बदलकर किसी कम्प्यूटर प्रोग्राम पर ग्राफ बनाकर देखा जा सके। अगर ग्राफ की लाइन ऊपर जा रही है तो उसका अर्थ होगा आप उपयोगी हैं और उत्पादकता बढ़ने में योगदान दे रहे हैं। किन्हीं कारणों से अगर आप ऐसा नहीं कर पाए या फिर इन सब टेक्निकल चीजों में माहिर नहीं है तो इस उत्पादकता, उपयोगिता फ्रेमवर्क में उनके लिए कोई जगह नहीं।

अधिकतर कलाकार इन श्रेणियों में नहीं समा पाते और न ही वैज्ञानिक और विचारक। और विशेष तौर पर किसान और मजदूर का योगदान तो संख्याओं में मापा ही नहीं जा सकता। पर क्या किसानों, मजदूरों, कलाकारों, वैज्ञानिकों और विचारकों के बिना कोई समाज तरक्की कर सकता है? अधिकांश संस्थाओं में लागू की जा रही नीतियां: जैसे की बैंकिंग सेक्टर में या नौकरशाही में और या फिर शिक्षा संस्थानों में ऐसे ही संरचनात्मक परिवर्तनों को लागू किए दिशा में कदम बढ़ाये जा रहे हैं या कुछ हद तो तो ऐसा किया ही जा चुका है।

बैंकिंग सेक्टर तो पूरी तरह कंपनी और कॉर्पोरेट मॉडल पर बदल दिया गया है। अब एक बैंक और साहूकार में तुलना करें तो शायद साहूकार कहीं मानवीय गुणों के बारे में संवेदनशील सकता है, बैंक मैनेजर चाहकर भी ऐसा नहीं कर पायेगा। इसी प्रकार स्कूल शिक्षा में भी ऐसा ही मॉडल लागू किया जा चुका है। अब धीरे–धीरे इसे उच्च शिक्षा में भी लागू करने की तैयारी है। अगर ये संस्थागत परिवर्तन समाज के लिए नहीं हैं तो आखिरकार ये सब पैमाने किसके लिए हैं? वास्तव में ये सरकारों की सहूलियत के लिए हैं जिन्हें उत्तरदायित्व के नाम पर लागू किया जाता है। विचारणीय ये है कि उत्तरदायित्व की मांग सरकारों के लिए होती है जिसे नागरिकों का उत्तरदायित्व निर्धारित करके सरकार ये दिखाती है कि उसने उत्तरदायी व्यवस्था बना दी।

ये उत्तरदायित्व संख्याओं, आंकड़ों, ग्राफ के द्वारा वेबसाइट और फेसबुक द्वारा बार–बार दिखाया जाता है बताया जाता है, पर रोजमर्रा के जीवन में वास्तव में सरकार में निर्णय निर्माण करने वाले जनप्रतिनिधि अपने उत्तरदायित्व के लिए पांच साल (अन्य देशों में अलग अलग) बाद के चुनावों का इंतजार करते हैं।

इसके अलावा जन–प्रतिनिधि संस्थानों की कार्य प्रणाली में नैतिक पैमानों की बात की जाती है। अर्थात उत्तरदायित्व नागरिकों का और नैतिकता और उससे जुड़े अधिकार सरकार के। जरा गौर कीजिये क्या हम लोकतंत्र के युग में हैं?

शिक्षा तथा मानवीय मूल्य

सिम्मी गुप्ता[1], डॉ. प्रवीण कुमार तिवारी[2]

[1]शोध छात्रा (शिक्षाशास्त्र)
एम.जे.पी.आर.यू.(बरेली)
[2]एसो. प्रो., बी.एड./एम.एड. विभाग
एम.जे.पी.आर.यू.(बरेली)

हमारा देश भारत अपनी कला, संस्कृति, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर सदैव गर्व करता रहा है, परन्तु आज अनास्था तथा पारस्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परंपरा एवं मूल्य धूमिल हो रहे हैं, यदि वर्तमान भारतीय समाज को देखें तो निम्न बातें स्पष्ट रूप से सामने आती हैं, प्रथमतः यह समाज अपने अंदर विरोधाभासों एवं द्न्दो के चरम ज्वार को समेटे जी रहा है, दूसरी भारतीय संस्कृति में सांस्कृतिक सहनशीलता की जगह लेती असहनशीलता की संस्कृति का बढ़ना, तृतीय लैंगिक असमानता से हमारा समाज मुक्त नहीं हो सका है, आज के बच्चे इन कड़वी सच्चाईयों के साथ बड़े हो रहे है, बच्चों को हम एक नई दुनिया देना चाहते हैं तो हमें एक ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी जो प्रगतिशील तथा उदारवादी मूल्यों के द्वारा निर्देशित, समानता व विविधता के प्रति संवेदनशील हो,सामंजस्यपूर्ण जीवनशैली को बढ़ावा देने वाली हो तथा साथ ही साथ शाश्वत मूल्यों को संरक्षित करती हो, इस लेख में शिक्षा एवं मानवीय मूल्य के सम्बन्धमें विचार व्यक्त किये गए हैं।

मानव मूल्य, शिक्षा

मानव प्रकृति की सर्वोत्तम कृति है, नीत्शे का यह कथन उल्लेखनीय है कि मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो हमेशा अपने आप में शर्मिंदा होता है, वह मौलिक रूप से आदर्शवादी है और सदा आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास करता रहता है। वह जितना अपने आस–पास की वस्तुओं से असंतुष्ट रहता है उतना ही अपने आप से भी और हमेशा इन दोनों की वृद्धि में संलग्न रहता है। वही केवल ऐसा प्राणी है जिसमें तर्क है,कारण और परिणाम का सम्बन्धीकरण है। उसमें ही केवल यह योग्यता है कि वह अपने आपकी आलोचना कर सकता है। यही कारण है कि मनुष्य अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ट है।

आज मानव जहाँ भौतिक/तकनीकी विकास के नित नए प्रतिमान स्थापित करता हुआ निरंतर प्रगति पथ पर अग्रसर है,वहीं दूसरी तरफ व्यक्तिगत, सामाजिक दोनों ही स्तरों पर वह असन्तोष घुटन का अनुभव भी कर रहा है,व्यक्ति दिन–प्रतिदिन तनावग्रस्त होता जा रहा है,समाज भी इसके दुष्प्रभाव से अछूता नहीं है।

अतिशय भौतिकवादिता ने हमारे जीवन दर्शन की दिशा ही परिवर्तित कर दी है, मानवीय मूल्यों का निरंतर अवमूल्यन जारी है। अब प्रश्न उठता है कि मानवीय मूल्यों का ह्रास किस प्रकार रोका जाए तथा सर्वश्रेष्ठ प्राणी की श्रेष्ठता कैसे न सिर्फ कायम रखी जाए वरन उसे किस प्रकार उत्तरोतर श्रेष्ठतम बनाया जाय, इसका सर्वाधिक सशक्त साधन है–शिक्षा।

शिक्षा स्वयं अपने आप में एक मूल्यपरक अवधारणा है, व्यापक अर्थो में शिक्षा आजीवन चलने वाली एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति को उसके नैसर्गिक शक्तियों के विकास में सहायता पहूँचाती है तथा उसे अपने वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने की योग्यता प्रदान करती है। दूसरे शब्दों में शिक्षा वातावरण से समायोजन स्थापित करने वाली प्रक्रिया है। स्वामी विवेकानन्द के अनुसार "शिक्षा वही है,जिससे चरित्र का निर्माण होता है, मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है, बुद्धि का विकास होता है, मनुष्य अपने पैरों पर खड़ा होता है, इस अर्थ में लिखने पढ़ने का ज्ञान देने के साथ ही शिक्षा व्यक्ति के आचरण विचार और दृष्टिकोण में ऐसा परिवर्तन करती है जो समाज, राष्ट्र, तथा संपूर्ण मानवता के लिए लाभदायक होती है।

मानव मूल्यों की चर्चा के पूर्व संक्षेप में यह उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है कि मूल्य क्या है? मूल्य मानव जीवन में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, इनका सम्बन्ध आस्था और विश्वास से होता है। यह एक आदर्श इच्छा है जिसे पूरा करने के लिए व्यक्ति जीता है एवं आजीवन प्रयासरत रहता है, संक्षेप में व्यक्तिगत तथा सामाजिक स्तर पर जीवन के निर्देशक तत्व मूल्य कहे जा सकते हैं, मानवता के विकास एवं मानव कल्याण से जुड़े मूल्य मानवीय मूल्यों की श्रेणी में आते हैं, जिनका दायरा अत्यंत व्यापक है, अब प्रश्न उठता है कि इन मानवीय मूल्यों के विकास में शिक्षा की क्या भूमिका है अथवा हो सकती है।

शिक्षा तथा मूल्य अन्योन्याश्रित है, किसी भी समाज का निर्माण उस समाज के प्राचीन तथा नवीन मूल्यों के संश्लेषण द्वारा होता है, समाज के जीवन मूल्य प्राचीन मूल्यों पर आधारित होते है। शिक्षा के माध्यम से प्राचीन एवं नवीन मूल्यों में समन्वय स्थापित किया जाता है। आज निश्चितरूप से यह समन्वय उचित ढंग से नहीं हो पा रहा है, परिणामस्वरुप हमारे नैतिक एवं मानवीय मूल्य छिन्न–भिन्न होते जा रहे हैं।

जब भी हम मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में शिक्षा की बात करते है तो इससे तात्पर्य उस शिक्षा से होता है जो व्यक्ति/बालक में नैतिक, मानवीय मूल्यों का विकास करे और इस प्रकार उसे समाज का एक उपयोगी सदस्य बनने में योगदान दे, यह कार्य शिक्षा के सैधांतिक पक्ष की अपेक्षा उसके व्यावहरिक पक्ष पर विशेष रूप से निर्भर करता है, आज हम शिक्षा के सैधांतिक पक्ष पर ही विशेष बल देते हुए ज्ञानार्जन को प्राथमिकता दे रहे हैं। शिक्षा का अर्थ अच्छी आदतों और सद्प्रवार्तियों का विकास नहीं बल्कि डिग्री प्राप्ति और उसके माध्यम से नौकरी प्राप्त करना प्रमुख हो गया है। व्यक्तित्व के नैतिक, मानवीय, सामाजिक पक्ष, दूसरे शब्दों में सर्वांगीण विकास

का पक्ष व्यावहारिक स्तर गौण हो गया है, आज जब मानवीय मूल्यों का अवमूल्यन जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में दृष्टिगोचर होने लगा है तो मानव समाज इसकी पुनःप्रतिष्ठा, संरक्षण एवं विकास हेतु नए सिरे से सोचने को बाध्य हो रहा है निसंदेह यह आज के समय की मांग भी है।

किसी भी व्यक्ति/समाज/राष्ट्र को तीन चीजें महान बनती हैं, इनका सम्बन्ध भी मूल्यों से ही है–

1. अच्छाई की शक्ति में विश्वास
2. ईश्रया और संधेह की अनुपस्थिति
3. उन लोगों की सहायता करना जो अच्छा करना, अच्छा बनना चाहते है

व्यक्तिगत/सामाजिक स्तर पर हमारे व्यवहार का यह आधारभूत सिद्धान्त होना चाहिए, इसके साथ ही आवश्यक है–परिवार, विद्यालय, समाज के लोगों का मूल्य आधारित व्यवहार क्योंकि मूल्य पढ़ाये नहीं जाते। डॉ.एच.एस.बैस के शब्दों में "मूल्यों की शिक्षा सिखाकर नहीं बल्कि उन मूल्यों को अनुभूत कराकर, मूल्यों को जीकर आस्था, विश्वास, मान्यता में बदला जा सकता है।

अतः यदि वास्तव में हम चाहते कि आने वाला कल सुखद हो, भावी एवं वर्तमान पीढ़ी स्वस्थ रूप से विकसित, पुष्पित, पल्लवित हो तो उसकी पहली शर्त होगी हमारा अर्थात् माता–पिता, अध्यापक–अभिभावक का मूल्य आधारित अनुकरणीय व्यवहार, दूसरी शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष को विशेष मजबूती प्रदान करनी होगी, सिद्धान्त एवं व्यवहार में सामंजस्य तथा संतुलन स्थापित करना होगा।

वर्तमान में विद्यालय मूल्यों की शिक्षा के प्रति सचेष्ट नहीं है। विद्यालीय पाठ्यक्रम में मूल्यों की शिक्षा के प्रति यथेष्ट सामग्री नहीं है। शिक्षक एवं अभिभावक बालकों के मूल्यों की शिक्षा के प्रति उदासीन है, विद्यालीय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा में मूल्य शिक्षा पर बल दिया गया है, लेकिन राष्ट्रीय पाठ्यचर्या को सभी राज्य अनिवार्य रूप से लागू नहीं करते है, परिणामतः विद्यालय एवं परिवार द्वारा मूल्यों की शिक्षा के प्रति सचेष्ट न होने के कारण भी मूल्यों का क्षरण हो रहा है। मूल्यों के क्षरण को रोकने के लिए परिवर्तित होते मूल्यों के साथ हमें यह देखना है कि जो हमारे शाश्वत मूल्य है वे बनें रहें तथा वांछित सामाजिक मूल्यों का विकास हो सके।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

पर्यावरण संरक्षण में मानवीय मूल्यों का योगदान

सोमेन्द्र सिंह[1], कामेश राणा[2]
[1]असि. प्रोफेसर बी.एड. विभाग
[2]छात्र बी0एड0 प्रथमवर्ष
राजकीय रज़ा पीजी कॉलेज, रामपुर

पर्यावरण शब्द परि तथा आवरण के संयोग से बना है 'परि' का आशय चारों ओर तथा 'आवरण' का आशय परिवेश है। दूसरे शब्दो मे कहें तो पर्यावरण वनस्पतियों, प्राणियों और मानव जाति सहित सभी जीवो और उनके साथ संबंधित भौतिक परिसर को पर्यावरण कहते है। वास्तव में पर्यावरण मे वायु, जल, भूमि, पेड़–पौधे, जीवजन्तु, मानव और उनकी विविध गतिविधयों आदि का समावेश होता है।

पर्यावरण एक बहुत व्यापक क्षेत्र है। मनुष्य जिन प्राकृतिक, भौगोलिक, सामाजिक इत्यादि परिस्थितियों में रहता है वह सब उसका पर्यावरण होता है परंतु पर्यावरण सुरक्षा एंव सरंक्षण के संदर्भ में पर्यावरण का अर्थ केवल प्राकृतिक पर्यावरण से होता है। इस पर्यावरण में मुख्य रूप से जल स्रोत, भूमि, वायुमंडल, जीव–जन्तु, पेड़ पौधे, एंव खनिज पदार्थ आते हैं, अर्थात कहा जा सकता है कि पर्यावरण मनुष्य के दायरे से बढ़कर अन्य जीव जन्तुओं को भी इसमें सम्मिलित करता है। इसका प्रभाव अन्य विषयों जैसे भूगोल, पारिस्थितिकी, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि पर भी पड़ता है। हम पर्यावरण से संबंधित कई नैतिक निर्णय लेते हैं। जैसे–

1. क्या हमें मानव आवश्यकता के लिये जंगलों व पेड़ पौधे को काटते रहना चाहिए?
2. क्या हमें पेट्रोलियम चलित वाहनों का निर्माण करते रहना चाहिए? भविष्य की पीढ़ियों के लिये हमारे पर्यावरणीय दायित्व क्या हैं?
3. क्या यह उचित है कि मानव सुविधा के लिये अन्य जातियों को विलुप्त कर देना चाहिए?

आज संसार में प्राकृतिक पर्यावरण दूषित हो रहा है। बस्ती से निकलने वाले कचरे और फैक्ट्रियों से निकलने वाले दूषित पदार्थो से भूमि और जल स्त्रोत प्रदूषित हो रहे हैं। जलने वाले पदार्थो, तेल से चलने वाले वाहनों, फैक्ट्रियों से निकलने वाली दूषित गैसों से वायु प्रदूषित हो रही है। वाहनों में लगे भोपू, घर घर चलने वाले रेडियों, टेलीविजनों और जगह–जगह लगे लाउडस्पीकरों आदि से ध्वनि प्रदूषण हो रहा है। वृक्ष संसाधन और जीव–जन्तुओं की घटती संख्या से परिस्थितिकी संतुलन गड़बड़ा रहा है। दूसरी ओर प्राकृतिक संपदा के अत्यधिक प्रयोग से प्राकृतिक संपदा दिन प्रतिदिन कम हो रही है। यदि इन सबका प्रयोग इसी गति से होता

रहा तो एक दिन ऐसा आयेगा कि आने वाली मानव पीढ़ी को यह पदार्थ सुलभ नहीं होंगे, तब मानव जीवन की दशा कितनी विषम व जटिल होगी इसकी कल्पना हम कर सकते हैं। अतः आज प्राकृतिक पर्यावरण को बचाने की आवश्यकता है। इस स्थिति में कहा जा सकता है कि पर्यावरण संरक्षण से तात्पर्य प्राकृतिक पर्यावरण को प्रदूषण से बचाने और प्राकृतिक संपदा को आगे की पीढ़ी के लिये सुरक्षित रखने से है फिर चाहे यह निजी हो, संगठनात्मक हो या फिर राज्य स्तर पर हो किंतु यह कार्य प्राकृतिक पर्यावरण और मानव के लिये लाभकारी होना चाहिए। अतः पर्यावरण संरक्षण कुशल प्रबंधन द्वारा प्राकृतिक स्त्रोतो को बचाने का कार्य है। इसका अभिप्राय है कि हमें प्राकृतिक स्त्रोतो का उपयोग बहुत बुद्धिमानी तथा उत्तरदायित्वता से करना चाहिए। उदाहरण के लिये वृक्षों को बचाना चाहिए, नवीकरणीय स्त्रोतों का प्रयोग करना चाहिए। गत 5 शताब्दियों में मानव सभ्यता का विकास बहुत तेजी से हुआ है और उसकी भौतिक आवश्यकताओं में भी तेजी से वृद्धि हुई। बढ़ती जनसंख्या के कारण और पेड़ पौधों के काटे जाने से प्रदूषण बढ़ रहा है।मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्राकृतिक संसाधनों का बहुत ही तेजी से दोहन हो रहा है। यदि संसार में प्राकृतिक संसाधनों का दोहन इसी तेजी से होता रहा तो मानव की आने वाली पीढ़ियों के लिये कुछ भी शेष नहीं रहेगा।

पर्यावरण प्रदूषण से मनुष्य सहित संसार के सभी जीवों के जीवन को खतरा पैदा हो रहा है। विज्ञान के आविष्कारों ने मनुष्य के जीवन को बदल दिया है। दुनिया भर में औद्योगिकरण हो रहा है, तेल से चलने वाले वाहनों मे दिन–प्रतिदिन वृद्धि हो रही है, और रासायनिक पदार्थो का प्रयोग बढ़ रहा है। किसी भी प्राणी के जीवन का मूल आधार स्वस्थ वातावरण होता है। जीवन और पर्यावरण घनिष्ठ संबंध रखते है, पर्यावरण को हानि पहुचाना स्वंय को हानि पहुँचाना है। ऋग्वेद में भी प्रकृति, जीव–जंतुओं और वनस्पतियों में घनिष्ठ संबंध बताया है। पर्यावरण एक अनुशासन है जो मनुष्य के पर्यावरण में मधुर संबंध का समर्थन चाहता है। पर्यावरण संरक्षण मनुष्य के नैतिक और सामाजिक व्यवहार को पर्यावरण के साथ बनाये रखने का प्रेरक है किंतु जब हम पर्यावरण नैतिकता पर दृष्टि डालते हैं तब मानव मूल्य इसके प्रमुख तत्व के रूप में सामने उभरकर आते हैं और कहा जा सकता है कि मानव मूल्य वातावरण के प्रति निश्चित होते हैं। मानव मूल्य प्रत्येक व्यक्ति के लिये हैं। देखा जाता है कि प्रत्येक व्यक्ति जीवन में प्रत्येक वस्तु को बराबर महत्व नहीं देता है। हम स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि पर्यावरण बहुमूल्य अलग–अलग अनुशासन के सहयोग से बनता है।

ऑल्टोलियोपोल्ड के अनुसार सभी संसाधनों पौधे, पशु, प्रथ्वी, मेटेरियल को अपने अस्तित्व का अधिकार है। मनुष्य को एक रक्षक के रूप मे कार्य करना चाहिए न कि विजेता के रूप में, हम पर्यावरण के प्रति व्यक्तियों समुदायों के व्यवहार के लिये उत्तरदायी हैं। प्रकृति को सतत टिकाऊ बनाना अपने लिये और भावी पीढ़ी के लिये हमारी नैतिक जिम्मेदारी है।

All resources (plants, animals, earth, materials) have right to exist. Human should act as protectors not comquers of the planet.

We are responsible for other individual/ societies behaviours toward environment it is moral responsibility to sustain nature for our selves and future generations)

मूल्य का अर्थ होता है उपयोगिता, वांछनीयता और महत्व। साधारणतया किसी भी समाज में जिन आदर्शो को मूल्य दिया जाता है तथा जिनसे उस समाज के प्राणियों का व्यवहार नियंत्रित व अग्रसारित होता है उन्हें उस समाज विशेष का मूल्य कहा जाता है। वैदिक युग से ही पर्यावरण के प्रति यह सजगता रही है कि प्राकृतिक स्त्रोतो का अनियंत्रित प्रयोग करने से मनुष्य जाति के साथ–साथ संपूर्ण जीवजगत का अहित होगा इसलिये जो भी प्राकृतिक स्त्रोत है उनका उपयोग अधिक व अनावश्यक रूप से नहीं करना चाहिए। प्रकृति के सिद्धांत से समस्त जीवधारियों को स्वच्छ व स्वस्थ वातावरण में जीने का अधिकार है। क्योंकि मनुष्य प्रथ्वी पर सबसे बुद्धिमान प्राणी है अतः मनुष्य जाति को पार्यावरण संरक्षाण में अपना योगदान देना चाहिए। अनेक पेड़–पौधे तथा वनस्पति, जीवन के लिये कितने आवश्यक व महत्वपूर्ण है इसका वर्णन करना कठिन है। प्राकृतिक स्त्रोतो का अच्छे स्वास्थ्य हेतु विशेष महत्व है।

वैज्ञानिक दृष्टि से कुछ पेड़–पौधे व पशुओं को भी देवी देवताओं से जोड़ा गया है संसार की सभी सभ्यताएं नदियों के किनारें विकसित हुई है क्योंकि जीव धारियों के लिये पानी का अपना विशेष महत्व है। वेद पुराणों में भी गंगा, गोदावरी, कावेरी, यमुना आदि नदियों को जीवनदायिनी की तरह माना गया तथा इनके प्रति श्रद्धा तथा विश्वास स्थापित किया गया। कुछ नदियों की पूजा का उल्लेख भी वेद पुराण आदि में मिलता है। पर्यावरण संरक्षाण को नर्क और स्वर्ग से जोड़कर जल स्त्रोतो का सरंक्षाण करने पर बल दिया गया और कहा गया है कि ऐसे मनुष्य जो तालाबों व जलाशयों नदियों झरनों आदि के पानी को दूषित करता है उनको नर्क भोगना पड़ता है और जो तालाब आदि का निर्माण करता है या करवाता है मृत्यु के पश्चात उसे स्वर्ग प्राप्त होता है। ऐसी ही बात पेड़–पौधों के संरक्षाण के लिये भी कही गयी है। पेड़–पौधे और पशु–पक्षी मानव जीवन के पूरक हैं इसलिये इनकी रक्षा करना भी मनुष्य का धर्म है यही कारण है कि अहिंसा सबसे बड़े धर्म की तरह मानी जाती है। हवन, यज्ञ आदि से पर्यावरण प्रदूषण थोड़ा नियंत्रित रहता है मक्खी मच्छर तथा हानिकारक जीवाणु नष्ट होते हैं तथा पर्यावरण में स्थिरता आती है। प्राचीन समय में पर्यावरण मानव जीवन का अभिन्न अंग माना जाता था तथा प्रत्येक प्रकार से उसका संरक्षाण किया जाता था,जो पर्यावरण के संतुलन को बनाये रखता था किंतु वर्तमान समय में मानव की कार्यशैली ने पर्यावरण को विघटन की और धकेला है। यही कारण है कि वर्तमान समय में पर्यावरण की गुणवत्ता धीरे–धीरे समाप्त हो रही है तथा अनेक तकनीक भी पर्यावरण को प्रदूषित होने से नहीं बचा पा रही है। भारतीय पर्यावरणवेत्ताओं के

अनुसार पर्यावरण प्रदूषण सभी क्षेत्रो मे तेजी से बढ़ रहा है। पर्यावरण के दुश्मनों की संख्या निंरतर बढ़ रही है। समुद्र का पानी विषाक्त हो रहा है। उद्योग धंधे जल, वायु दोनो को प्रदूषित कर रहे हैं। कृषि, कीटनाशक, उर्वरकों व रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से भूमि की उपजाऊ क्षमता कम हो रही है। भोजन के नाम पर जहर खाया जा रहा है। शहरों में भी नालों, अपशिष्ट पदार्थ आदि से पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है जिसका प्रभाव स्वशन तंत्र पर हो रहा है। इन बढ़ते जहरीले खाद्य पदार्थो का सर्वाधिक प्रभाव स्त्रियों एंव बच्चों पर पड़ रहा है। इसके प्रभाव से पुरूष वर्ग भी अछूता नहीं है। इस खतरे से बचने के लिये गठित केंद्रिय पर्यावरण और वन मंत्रालय संघर्षरत हैं पर्यावरण सरंक्षण को ध्यान में रखते हुये पर्यावरण और वन मंत्रालय विभिन्न नीतियों को संचालित कर रहा है।

पर्यावरण को हानि मनुष्य के गतल आचरण से ही हुई है किंतु कुछ अच्छे व सुधार कार्यो के आधारपर यह उम्मीद मनुष्य में दिखती है कि नैतिक उन्नति की दृष्टि से निम्नलिखित कुछ क्रिया–कलाप किये जा सकते हैं–

- बढ़ते ग्रीन हाउस प्रभाव को रोकने के लिये मानव वैकल्पिक ऊर्जा स्त्रोतों का उपयोग कर सकता है। दंडविधान के द्वारा पर्यावरण प्रदूषण पर रोक लगाई जा सकती है।
- मनुष्य दैनिक जीवन में लकड़ी, कोयला, पेट्रोल, डीजल जैसे इंधनों का प्रयोग कम करें तथा वैकल्पिक स्त्रोत का प्रयोग पर्यावरण संरक्षण में सहयोग दे सकता है।
- ओजोन परत को हानि पहुँचाने वाली गैस सीएफसी से चलने वाले उपकरणों का प्रयोग कम करें तथा नई तकनीकी पर आधारित पर्यावरण को कम से कम हानि पहुचाने वाले उपकरणो का प्रयोग किया जाए।
- बढ़ती जनसंख्या को रोकने में सहयोग करना चाहिए ताकि आवास व दैनिक उपयोग की वस्तुओं की पूर्ति के लिये पेड़ पौधों तथा जंगलो को बड़े पैमाने पर नहीं काटना पड़े।
- ध्वनि प्रदूषण को रोकने के लिये यंत्रो का प्रयोग धीमी आवाज में करना चाहिए।
- बढ़ते शहरीकरण पर रोक लगाने के लिये ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन यापन की उत्तम सुविधांए उपलब्ध कराई जानी चाहिए।
- भूमिगत जल के स्वतंत्र उपयोग पर प्रतिबंध लगाना चाहिए और गंभीर परिस्थितियों में दंड विधान सख्ती से लागू होना चाहिए।
- ऊर्जा के वैकल्पिक स्त्रोत सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, जल ऊर्जा आदि का प्रयोग किया जाये तथा इनका दुरूपयोग रोका जाना चाहिए।
- प्राकृतिक संसाधन जो कि बहुत ही सीमित मात्रा में है का प्रयोग समझदारी से किया जाना चाहिए।

- कचरे आदि का रूपांतरण वैज्ञानिक विधि से होना चाहिए। पेड़–पौधो को न काटें, यदि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें काटना भी पड़े तो उतने ही या अधिक संख्या में वृक्ष लगाए जायें।
- यद्यपि पर्यावरण प्रदूषण संरक्षण संबंधी अनेक कानून हैं परंतु उनका पालन सही ढंग से नहीं हो रहा है। अतः आवश्यकता है कि नियमों को कठोरता से लागू किया जाये।
- शिक्षा द्वारा बच्चों मे आरंभ से ही पर्यावरण संबंधित जागरूकता पैदा की जाये।

सन्दर्भ

1. ***https://www.google.com/url?sa=kt&source=kweb&rct=kj&url=khttps://hi.m.wikipedia.org/wiki/%25E0%25A4%25AA%25E0%25A4%25B0%25E0%25A5%258D%25E0%25A4%25AF%25E0%25A4%25BE%25E0%25A4%25B5%25E0%25 A4%25B0%25E0%25A4%25A3%25E0%25A5%2580%25E0%25A4%25AF_%25E0%25A4%25A 8%25E0%25A5%2580%25E0%25A4%25A4%25E0%25A4%25BF&ved=k2ahUKEwja1tL_v9rnAhXG7XMBHXzCBeQQFjA FegQIBxAB&usg= kAOvVaw2fgM7q0dUWTiXlSqccqDz M&cshid=k158200 8298919***
2. *Tomar, Dr. Gujendra Singh(Environmental Education)*

भारतीय संस्कृति में विद्यमान मानवीय मूल्यों की विवेचना

अंकित पाठक[1], सोमेन्द्र सिंह[2]

[1]बी.एड. प्रथम वर्ष छात्र

[2]असि. प्रोफेसर शिक्षक शिक्षा विभाग,

राजकीय रज़ा पीजी कॉलेज रामपुर।

साहित्य समाज का दर्पण होता है किसी भी समाज की वास्तविक वस्तु स्थिति वहां के लियें साहित्यिक ग्रन्थों के माध्यम से प्राप्त होती है। इन्हीं साहित्यिक ग्रन्थों में भारतीय संस्कृति तथा नैतिक मूल्य एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप मे उल्लेखित होता है। भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत प्राचीन धरोहर, स्मारक, स्थापत्य कला, शिल्प, नाटक, रंगमंचन इत्यादि को समाहित किया जाता है। तथा वहीं पर संस्कृति के अन्तर्गत रहन–सहन, रीति–रिवाज, खान–पान बोली, भाषा, व्रत, त्यौहार इत्यादि पहलुओं पर ध्यान आकृष्ट किया जाता है।

सभ्यता एंव संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं अर्थात दोनों ही मानव के सर्वांगीण विकास में सहयोग प्रदान करते हैं। किसी भी देश की संस्कृति एंव सभ्यता वहां की भौगोलिक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक रीति रिवाजों के अनुसार निर्धारित होती है। यह समय एंव काल के अनुसार सदा ही परिवर्तनशील रही है। इस प्रकार से हम कह सकते है कि भारतीय संस्कृति एक जीवन्त संस्कृति का अनुठा उदाहरण प्रस्तुत करती है। विभिन्न समाज सुधारकों शिक्षाविदों, साहित्याचार्यो, लेखकों इत्यादि के द्वारा इसके विकास में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया गया है। नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत विचार, विश्वास, धर्म, जीवन जीने की आदर्श दशायें, नियम मूल्य, इत्यादि का उल्लेख किया जाता है कोई भी सशक्त समाज इन्ही नैतिक मूल्यों के आधार पर अपना तथा अपने समाज राष्ट्र के निर्माण में भागीदार होता है। जबकि संस्कृति के अन्तर्गत गीत संगीत, नाटक अनुष्ठान इत्यदि को समाहित करता है तथा अपनी संस्कृति को सुदृढ़ बनाता है।

किसी भी समाज के आंकलन को हम तत्तकालीन नैतिक मूल्यों के आधार पर ही जान सकते हैं अर्थात देश के सर्वागीण विकास में नैतिक मूल्यों का सर्वोपरि स्थान है नैतिक रूप से सशक्तमान वही एक प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण की आधार शिला है। किसी भी देश की नैतिकता इस बात में निहित होती है कि वहां पर मानव का मानव के साथ, मानव का पर्यावरण के साथ तथा मानव का पशु पक्षियों के साथ किस प्रकार का संबंध पाया जाता है इस प्रकार से समरसता की भावना भी हमारे नैतिक मूल्यों का एक महत्वपूर्ण पहलू है। इसके साथ–साथ भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में अनकेता में एकता के सिद्धान्त को प्रतिपादित करने के लिये हमारे नैतिक मूल्यों का अद्वितीय योगदान है। भारतीय संस्कृति की एक अनोखी पहचान उसकी कला एंव

स्थापत्य भी है, भारतीय संस्कृति के विकास के योगदान के क्रम मे अनेक ऐतिहासिक तथा आधुनिक साहित्यों का अमूल्य योगदान है इस क्रम मे वेद, ब्राहमण, आरण्य तथा उपनिषदों में वर्णित नैतिक मूल्य का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है। क्योंकि हमारे मनीषीगंण नैतिक मूल्यों पर अत्यधिक बल प्रदान करते थे उनका मानना था कि नैतिकता ही मानव जीवन को सफल एंव सरस बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती है।

इसके अतिरिक्त उत्तरवैदिककालीन सभ्यता एंव संस्कृति के माध्यम से भी इसके योगदान को देखा जा सकता है। जैन एंव बौद्ध ग्रन्थों के माध्यम से भी हमें हमारे नैतिक मूल्यों पर एक विशेष अध्ययन सामग्री प्राप्त होती है। पुरातन शिक्षाविदों के माध्यम से भी मानवीय मूल्यों का ज्ञान प्राप्त होता है। किसी भी देश की प्रगति तथा विनाश के बारे मे जानने के लिये वहां की सभ्यता व संस्कृति को जानना अत्यंत आवश्यक हो जाता है।

जैन धर्म में नैतिकता के लिये आवश्यक पहलूओं पर चर्चा क गयी है जैसे–

अंहिसा– व्यक्ति को किसी भी जीवन को शारीरिक, मानसिक रूप से चोट न पहुचांने की बात कही गयी है।

सत्य– व्यक्ति को हमेशा सत्य बोलना चाहिए किन्तु ऐसा सत्य नहीं बोलना चाहिए जिससे किसी अन्य व्यक्ति की जान का खतरा है।

अस्तेय– चोरी और इस प्रकार की भावना से दूर रहना चाहिए।

ब्रह्मचर्य– कामवासना का परित्याग करने पर बल दिया जाता है।

अपरिग्रह– अवश्यकता से अधिक किसी भी प्रकार की सामग्री नहीं रखना।

जैन धर्म में तीन नियम मुख्य रूप से बताये गये हैं। सम्यक दर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चरित्र।

इसी प्रकार बौद्ध धर्म में भी हत्या न करना, चोरी न करना, झूठ न बोलना, नशे से दूर रहना, आदि बातों पर बल दिया गया है।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं किसी भी देश की भौगोलिक, सांस्कृति सामाजिक, स्थिति को जाने बिना हम उसकी संस्कृति का सही ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं। संस्कृति शब्द से तात्पर्यवहां की तत्कालीन रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज इत्यादि विषयों की चर्चा की जाती है जबकि सभ्यता के अन्तर्गत वहां के मानवीय जीवन को सुगम बनाने के लिये उपलब्ध नगरीय तथा ग्रामीण संसाधनों पर बल दिया जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सभ्यता और संस्कृति दोनो ही मानव मात्र के कल्याण के लिये निर्मित किया गया है अतः किसी देश की उन्नति, प्रगति, नैतिक उत्थान, विकास,पतन इत्यादि बातों की जानकारी के लिये वहां की सभ्यता और संस्कृति की जानकारी का होना नितान्त आवश्यक है। जिस प्रकार से हम सैन्धव

घाटी सभ्यता, तथा मिश्र की सभ्यता, बेबीलोन की सभ्यता, के माध्यम से तत्कालीन समय की प्रगति तथा विनाश की जानकारी प्राप्त करते हैं। जैसे की यह सर्वविदित है कि परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है ठीक उसी प्रकार सभ्यता एंव संस्कृति में भी निंरतर परिवर्धन एंव परिवर्तन चलता रहता है, इस बात की पुष्टि सती प्रथा जैसी कुरीतियों के माध्यम से हम समझ सकते हैं क्योंकि एक समय शांति प्रथा सभ्यता एंव संस्कृति का एक आवश्यक अंग हुआ करती थी लेकिन कालान्तर में राजा राममोहन राय जैसे तमाम समाज सुधारकों ने इस प्रथा का विरोध किया, परिणाम स्वरूप प्रथा अब एक कानूनी अपराध का रूप ले चुका है। सभ्यता एंव संस्कृतियों का विकास को हमारी वंश परम्परा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को अग्रसारित किया जा रहा है। उदाहरण स्वरूप लोकगीत, संगीत, नृत्य, इत्यादि हमारी पीढ़ी दर पीढ़ी का ही प्रतिफल है।

किसी भी देश की सभ्यता एंव संस्कृतियों का समावेशन पाया जाता है अर्थात हम कह सकते हैं कि एक सभ्यता एंव संस्कृति दूसरी संस्कृतियों को भी प्रभावित करती है। जैसे गान्धर्व एंव मथुरा कला पर यूनानी कला के स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। विभिन्न प्रकार की कला एंव संस्कृतियों का नामकरण तात्कालीन शासकों के शासनकाल के आधार पर परिलक्षित किया जाता रहा है जैसे वैदिककालीन सभ्यता, मुगलकालीन सभ्यता, सैन्धव कालीन सभ्यता इत्यादि का विकास क्रमशः इन्ही आधारों पर किया गया है। भारतीय संस्कृति मे विद्यमान अनेकानेक नैतिक मूल्य सदैव से अन्य संस्कृतियों को भी प्रभावित करते रहे हैं। हमारी संस्कृतियों की यह एक विशिष्ट विशेषता है कि विभिन्न औपनिवेशिक आक्रान्ताओं के द्वारा इसको तिल मात्र भी प्रभावित न कर सकी। आज भी भारतीय संस्कृति हमारे समक्ष एक अखण्ड स्वरूप को धारण किये हुए हमको प्रगति के पथ पर अग्रसारित कर रही है। भारतीय संस्कृति की विशेषता के अन्तर्गत अनेकता में एकता भारत की विविधता को परिलक्षित करता है। संहिष्णुता, धर्म निरपेक्षता, उदारता, विश्व कल्याण की भावना, ग्रहणशीलता, समरसता तथा विश्वबन्धुत्व की भावना इत्यादि मूल्यों का समावेश देखने को मिलता है।

समय समय पर हमारे दर्शन शास्त्रियों जैसे कपिल, गौतम, चार्वक, जैमिनी इत्यादि अपने दर्शन ग्रन्थों क्रमशः सांख्य, न्याय, चार्वाक, मीमांसा दर्शन, के माध्यम से अपनी बात को रखकर भारतीय संस्कृति के विकास में अपने योगदान को परिलक्षित किया। वहीं पर कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मौर्य कालीन राजनीति पर एक विस्तृत उद्धरण प्रस्तुत करती है। इसके माध्यम से हम तत्कालीन सभ्यता एंव संस्कृति का ज्ञान प्राप्त करते हैं, भारत की प्राचीन संस्कृति का इतिहास अंत्यन्त गौरवशाली रहा है। इस क्रम में भारत की सभ्यता एंव संस्कृति विश्व बंधुत्व की भावना को अपने अंदर समाहित किये हुये है। भारतीय संस्कृति की एक अमिट विशेषता यह है कि यह एक जीवन्त सभ्यता एंव संस्कृति का उदाहरण है, इस बात का प्रमाण यह है कि इसके उत्तरकालीन लगभग समस्त सभ्यतायें अपने पतन के गर्त में समाहित हो गयीं, अब उनका

उल्लेख सिर्फ इतिहास में दर्ज होकर रह गया है। हमारी भारतीय संस्कृति की विशेषता के क्रम में नृत्य संगीत, लोक गीत, त्यौहार इत्यादि मनोरंजन के साथ–साथ हमारे रोजगार के एक सशक्त माध्यम थे, इसके अतिरिक्त रंगमंच, नाटक, शिल्प,कला इत्यादि हमारे कौशल विकास को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ। मूल्यों की बात करें तो मूल्य विहिन संस्कृति का कोई दीर्घकालीन अस्तित्व नहीं होता है, अर्थात संस्कृति में मूल्यों का होना नितान्त आवश्यक होता है। इन्हीं मूल्यो के विकास के क्रम में भारतीय संस्कृति के अनेकानेक मानवीय मूल्य प्राप्त होते है। जैसे भारतीय संस्कृति मनुष्यों को देवतुल्य उपाधि प्रदान करती है, इसका उदाहरण हम अतिथि देवो भवः पंक्ति के माध्यम से भली भांति समझ सकते हैं।

नैतिक मूल्यों के विकास के क्रम मे महात्मा गांधी ने शिक्षा के माध्यम मे इसको परिभाषित करने क प्रयास किया। उनका कहना था कि शिक्षा ही मानवीय मूल्यों के विकास में अपना अमूल्य योगदान प्रदान करती है। शिक्षा रूपी धरोहर ने ही हमारे नैतिक मूल्य सुरक्षित रखे हैं। भारतीय संस्कृति की एक अमूल्य विशेषता उसकी विविधता है इस प्रकार से हम उसके विविधता को समाप्त नहीं अपितु संरक्षित करके इसको और अधिक सशक्त बना सकते हैं। इसके लिये हमें हमारे नैतिक मूल्यों पर विशेष बल प्रदान करना होगा। नैतिक मूल्यों के अन्तर्गत सत्यवादिता, दयालुता, सदाचार, पारस्पारिक सहयोग इत्यादि प्रमुख बिन्दुओं को सम्मिलित किया जाता है। आज के वर्तमान परिवेश में नैतिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। नैतिकता के अभाव के कारण ही समाज में अपराधों की संख्या बढ़ रही है। चरित्र निर्माण में नैतिकता का बहुत ही विशेष योगदान है चरित्रहीन व्यक्ति समाज में उच्च स्थान प्राप्त नहीं करता है तथा वह निंदा का पात्र होता है चरित्र की यत्न पूर्वक रक्षा करनी चाहिए क्योंकि एक बार चरित्र के नष्ट होने पर उसको पुनः नहीं प्राप्त किया जा सकता है इस बात की पुष्टि संस्कृत के श्लोक होती है–

वृत्तयत्नेन संरक्षेत्र वित्तमोतिचयातिच
अच्क्षीणोवितत्स क्षिणों, वृत्स्तोहतो हतः
(नीतिसतकम भर्दृहरि)

वर्तमान भौतिकवादी युग में नैतिकता एक नगण्य वस्तु बनकर रह गयी है। इसके विकास के लिये भारत सरकार तथा राज्य सरकारों के द्वारा पाठय पुस्तकों में समाहित किया गया है जिससे बालक का चारित्रिक विकास किया जा सके। नैतिक मूल्य समय एंव परिस्थितियों के अनुसार सदा ही परिवर्तनशील रहे है तथा अपने समय की कसौटी पर खरे उतरे हैं।

किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में हमारे नैतिक मूल्य ही इसमे अपना अमूल्य सहयोग प्रदान करते हैं तथा मनुष्य के प्रगति के पथ को प्रशस्त करते हैं। भारतीय संस्कृति में सत्य कल्याण और सुन्दरता के बीच एक बेहतर समन्वय देखने को मिलता है इस बात की पुष्टि सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के माध्यम से चरितार्थ होती है। विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों समाजसुधारकों, तत्कालीन

कवियों ने अपने–अपने यत्नानुसार भारतीय संस्कृति में निहित नैतिक मूल्यों को परिभाषित करने का प्रयास किया है जो कि इस प्रकार हैं। घर ग्रहस्थी में अपना जीवन बिताने वाले अदभुत सन्त नामदेव ने सामाजिक मूल्य की शिक्षाओं में हिन्दु मुस्लिम एकता, छुआछूत तथा घर में स्त्री शिक्षा के उल्लेख पर चर्चा की है। इन्होंने समाज में व्याप्त सभी बुराईयों को समाप्त करने के लिये अद्वितीय प्रयास किये थे, साथ ही रविदास, कबीरदास इत्यादि ने भी सामाजिक मूल्यों के उत्थान के लियेअपना योगदान दिया।

कबीरदास ने समाज में नैतिक मूल्यों की महत्ता को बताते हुये यह कहा था कि

ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता शुर अनेक।

जपीय तपिया बहुत है, शीलवंत कोई एक।।

कबीर के समय मूल्यों के पतन का कारण कर्मकाण्ड था। कबीर वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति, सामप्रदाय से परे होकर सच्ची इंसानियत के मुरीद थे।

गुरूनानकदेव ने भी पशु पक्षियों के प्रति अपने नैतिक मूल्य को बताते हुये कहा है कि

राम की चिड़िया राम का खेत

खा ले चिड़िया भर–भर पेट

मूल्य सम्राट की पदवी जिनको प्राप्त है ऐसे महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने परिवारिक, समाजिक, राष्ट्रवादी, सभी नैतिक मूल्यों के लिये विश्व का सबसे बड़ा पारिवारिक ग्रन्थ रामचरितमानस दिया है। जिसे पढ़कर हम मानव धर्म की संस्कृति और सभ्यता के नैतिक मूल्यों का पालनकर अपना जीवन सकुशल बिता सकते हैं। रामचरितमानस के सभी पात्र धर्म राज व्यवस्था, पिता–पुत्र संबंध, माता–पिता संबंध, सभी धर्मो को अपने पक्ष से जोड़कर देखते हैं। भारतीय संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों में रामकथा को लोकप्रिय बनाने वाले संत तुलसीदास, बाल्मीकि की भांति ही जन कवि थे। तुलसीदासजी ने सदैव अपनी रचनाओं में एक सच्चे अंशु जैसे राम, दशरत, पिता–पुत्र एंव पत्नी आदि के संबंध मे नैतिक आदर्शो पर खरा उतरा है। प्रेम और विश्व बंधुत्व की भावना का तुलसीदास ने सरल उदा0 प्रस्तुत किया था जिससे हमारे नैतिक मूल्य सुरक्षित रहे। भारतीय संस्कृति का गौरवशाली नैतिक मूल्य हमें पाषाण काल से लेकर आधुनिक काल तक के साहित्य जगत मे देखने को मिलता है। पौराणिक ग्रन्थो जैसे वेद, ब्राहमण, अरणयक तथा उपनिषदों के माध्यम से हमारे मनिषियों ने नैतिक मूल्य से युक्त मानव की कल्पना की है। भारतीय संस्कृति के मानवीय मूल्यों के अन्तर्गत हम निम्नलिखित मानदण्डों का ज्ञान होता है,जैसे

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।

इस पंक्ति के माध्यम से हमारी भारतीय संस्कृति में नैतिक मूल्य का एक अनुपम अद्वितीय दृण्टान्त प्रस्तुत करता है वहीं पर विश्व का सबसे बड़ा पारिवारिक ग्रन्थ रामचरितमानस में भी गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है कि

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।

परपीड़ा सम नहीं अधमाई।।

इस माध्यम से परमार्थ की महत्ता को प्रतिपादित करने का अद्वितीय प्रयास किया है जो हमारी संस्कृति के लिये गौरव की बात है। इसके अतिरिक्त परवर्तीकालीन जैन तथा बौद्ध ग्रन्थो के माध्यम से भी भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों को बल प्रदान किया गया है।

आधुनिक सन्दर्भ में भी मानवीय मूल्यों के विकास पर अत्यधिक बल प्रदान किया जा रहा है इसका उदा0, हम आधुनिक पाठय पुस्तकों, विभिन्न उच्चस्तरीय सिविल सेवाओं आदि में नीतिशास्त्र नामक विषय को समाहित किया गया है। नैतिकमूल्यों से न केवल मानव मात्र का कल्याण होगा अपितु आधुनिक काल की कालजयी भ्रष्टाचार मुक्त एंव उन्नतिशील राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं।

आधुनिक भूमण्डलीकरण की दुनिया में सभी लोग किसी न किसी प्रकार से एक दूसरे से जुड़े हैं तथा जुड़ने का प्रयास भी कर रहे हैं यह परिकल्पना हमारे मनीषियों के द्वारा आज से हजारों वर्षो पूर्व वसुधैवकुटम्बकम के माध्यम से प्रतिवादित करने का प्रयास किया गया है तत्कालीन समस्याओं पर अगर दृष्टि डालें तो पर्यावरण संकट एक ज्वलनशील विषय के रूप में हमारे समक्ष सुरसा की भांति मुंह फैलायें वैठा है, मनुष्य ही नहीं अपितु समस्त चराचर जगत को काल के गाल में समाहित करने के लिये आतुर है इसके लिये हमारी संस्कृति में विदित वृक्ष पूजा, पशु पूजा इत्यादि के माध्यम से प्रकृति तथा मानव के बीच सांमजस्य स्थापित करने का अनूठा प्रयास किया गया था। आज पुनः हम सबको भारतीय संस्कृति के नैतिक मूल्यों को याद करने व उनको अपने जीवन में चरितार्थ करने की जरूरत है इससे न केवल भारत का कल्याण होगा अपितु सम्पूर्ण विश्व को भी हम काल के गाल में जाने से बचा सकेंगे जो की हमारी आने वाली पीढ़ियों के लिये एक अवसर प्रदान करेगा। वर्तमान सरकार तथा अधिकारियों के द्वारा चलायी जा रही विभिन्न योजनाओं के माध्यम से सतत विकास के लिये अद्वितीय प्रयास किया जा रहा है, साथ ही हमारी संस्कृति तथा नैतिक मूल्यों के रक्षार्थ भी योजनाऐं चलाई जा रही हैं।

मूल्य और संस्कृति एक ही सिक्के के दो पहलु है इस बात की पुष्टि इस प्रकार होती है कि बिना भारतीय संस्कृति हमारे नैतिक मूल्यों का श्रोत कहीं न कहीं हमारी संस्कृति से ही परिलक्षित होता है। किसी भी देश, राष्ट्र की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक इत्यादि पहलुओं

को ध्यान में रखकर वहां के लोगो के लिये नैतिक मूल्यों को निर्मित किया जाना है, इन्हीं मूल्यों के माध्यम से व्यक्ति अपना सर्वागीण विकास कर देश की संस्कृति भाषा साहित्य मानवीय तथा नैतिक मूल्यों के विकास में अपना योगदान प्रदान कर सकता है। एक प्रबुद्ध नागरिक ही अपनी सभ्यता और संस्कृति को अक्षुण बनाये रखने में सहायक होता है।

भारतीय संस्कृति और उसके नैतिक मूल्यों को बढ़ाने हेतु आधुनिक पाठ्य पुस्तकों में इसको सम्मिलित किया जाए, विद्यालयी गतिविधियों में भी नैतिक मूल्यों का व्यवहारिक प्रयोग किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिये शिक्षण संस्थाओं के साथ–साथ प्रशासन और समाज को भी आगे आकर पहल करनी होगी। विद्यालयों में या सार्वजनिक क्षेत्रों में विभिन्न सामुहिक प्रतियोगिता के माध्यम से इसका प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए, जिससे हमारी युवा पीढ़ी में नैतिकता को बढ़ावा मिले। नुक्कड़ नाटकों के माध्यम से जनमानस के बीच इसके महत्व तथा योगदान के बारे मे बताया जाये जिससे अविभावक भी अपने बच्चों को नैतिक जिम्मेदारियों से अवगत कराये तथा बच्चों को अच्छा नागरिक बनने में उनका मार्गदर्शक करें। सरकार द्वारा आधुनिक मानवीय मूल्यों तथा सांस्कृति के विद्वानों तथा विदुषियों को सम्मानित किया जाए, जिससे प्रेरणा प्राप्त कर हमारी युवा पीढ़ी उनका अनुकरण कर नैतिक मूल्यों के विकास में अपना योगदान दे सके। विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठियों, चर्चा–परिचर्चा इत्यादि के माध्यम से भी सांस्कृतिक मूल्यों के विकास में योगदान दिया जा सकता है जिससे भारतीय संस्कृति में विद्यमान नैतिक मूल्यों पर शोध को बढ़ावा दे करके भी इसका विकास किया जा सकता है। भारत सरकार तथा विभिन्न राज्यों की सरकारों द्वारा अपने सामाजिक कल्याण की नीतियों में नैतिक मूल्यों का प्रयोग कर इसको बढ़ावा दिया जा सकता है।

मूल्यविहीन सभ्यता एंव संस्कृति की कल्पना करना एक निरर्थक प्रयास होगा। अर्थात हम कह सकते हैं कि किसी भी प्रगतिशील राष्ट्र निर्माण के लिये मूल्य युक्त सभ्यताएं व संस्कृति का होना नितान्त आवश्यक अंग है। इन्हीं नैतिक मूल्यों के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण किया जाता है। किसी भी देश के नैतिक मूल्यों के निर्धारण के समय वहां के भौगोलिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक इत्यादि पहलुओं को ध्यान में रखकर इनके मानदण्डो को निर्धारित करने का प्रयत्न किया जाता है। चरित्र निर्माण के नैतिक मूल्य अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि मानव के व्यक्तिव में चरित्र एक चमकते हुये ध्रुवतारे के समान है चरित्र विहीन व्यक्ति अपना तथा अपने समाज दोनो के लिये घातक है। अतः हम कह सकते हैं कि वर्तमान गिरते हुए समाज के सुधार के क्रम में हमें अपने सांस्कृति एंव नैतिक मूल्यो को पुनः स्मरण करना होगा तथा बदलते हुये परिदृश्य के अनुसार अपने मूल्यों को नये मानदण्डो पर संगठित करने का प्रयास करना होगा।

सन्दर्भ

1. *श्रीवास्तव के0सी0 –भारत की संस्कृति*
2. *डा0 पाण्डेय आर0एस0–मूल्य शिक्षा के परिप्रेक्ष्य*
3. *सिंघानिया एन –भारतीय कला एंव संस्कृति*
4. *डा0 रीता प्रताप–प्राचीन भारतीय मूर्तिकला एंव चित्रकला का इतिहास*
5. *नाट्यकला और शिक्षा–रीता चौहान*
6. *पाण्डेय एस0 के0–आधुनिक भारत*
7. *दैनिक भास्कर–*
8. *नीति शतकम–भर्तृहरि*
9. *राष्ट्रीय पाठ्चर्या की रूपरेखा 2005–पेज संख्या (10), राष्ट्रीय शिक्षा निति 2019–पेज 33 ,34, 35*
10. *पूजा लारेंस एकेडमी बुल 20 मुलावदी*
11. *शर्मा डी–छात्रा*

.

धर्म और दर्शन के सन्दर्भ में मानवीय मूल्य

डॉ. सुधीर कुमार
विभागाध्यक्ष, शिक्षा संकाय
एस.एस.वी. कॉलिज, हापुड़

सामान्यतः लोग धर्म और दर्शन को समानार्थी मानते हैं, वे धर्म और दर्शन में कोई अन्तर न करते हुए प्रायः ईश्वर–आत्मा, जीव जगत, पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, कर्म–पुनर्जन्म और मोक्ष आदि को धर्म की विषय वस्तु मानते है और लगभग इन्ही विषय वस्तुओं का सम्बन्ध दर्शन से भी जोड़ते है। लोगों का ऐसा मानना निराधार भी नही है। वस्तुतः ये जीवन के मूलभूत शाश्वत प्रश्न है। अपने चिंतनाशील स्वभाव के कारण मनुष्य इन विषयों पर लगातार सोचता रहा है। किन्तु विषय वस्तु की समानता के कारण दर्शन और धर्म को समानार्थी मानना उचित प्रतीत नहीं होता।

धर्म और दर्शन के सम्बन्ध को भलीभाँति जानने के लिए सर्वप्रथम और दर्शन के स्वरूप को अलग–2 जानना भी आवश्यक है। पुनः दर्शन के बारे में पाश्चात्य एवं भारतीय दोनों मतों को अलग–2 जानना भी आवश्यक है। धर्म की उत्पत्ति मनुष्य के अन्दर सतत् विद्यमान उस आध्यात्मिक भूख और अपूर्णता की चेतना से पैदा होती है। अपने चिन्तनशील स्वभाववश मनुष्य यह सब देखता है, कि उसकी शारीरिक और मानसिक सभी शक्तियाँ सीमित हैं, तो वह व्यथित हो जाता है, किन्तु उसकी यह चाहत भौतिक पदार्थों से पूरी होती नहीं दिखती। परिणाम स्वरूप वह ऐसे अज्ञात और अदृश्य आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करने लगता है, जिनकी प्राप्ति से उसे अपनी अपूर्णतया के दूर होने की पूरी आशा होती है।

धार्मिक व्यक्ति के लिए ये आध्यात्मिक मूल्य परम सत्य हैं, विश्व के आधार हैं और सभी वस्तुओं की वास्तविकता एवं सार्थकता इन्हीं मूल्यों पर निर्भर होती है। दुनिया भर के सभी धर्म इन आध्यात्मिक मूल्यों में विश्वास करते हैं। यद्यपि सभी धर्मों में इन आध्यात्मिक मूल्यों का स्वरूप एक जैसा हो, यह आवश्यक नहीं होता है। बहुत से धर्म ईश्वर को सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक मूल्य मानते हुए संपूर्ण जीवन और जगत् को उस पर आधारित मानते हैं, किन्तु धर्म भावना के लिए ईश्वर को मानना अनिवार्य नहीं है। बौद्ध धर्म ईश्वर को नहीं मानते, फिर भी दुनिया के अत्यन्त शक्तिशाली धर्मो में उनकी गणना होती है।

धर्म के सम्बन्ध में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि आस्था या विश्वास धर्म का प्राण है। आध्यात्मिक मूल्य उसके सर्वस्व होते है, लगभग ऐसी ही कुछ स्थिति दर्शन के साथ भी है, जैसे धर्म मनुष्य की अपूर्णता के कारण आध्यात्मिक भूख से उपजता है, उसी तरह दर्शन भी दुःखानुभूति

से उपजता है। यद्यपि दर्शन का पाश्चात्य दृष्टिकोण इनमें भिन्न है। वहां दर्शन की उत्पत्ति बौद्धिक जिज्ञासा से होती है, और इस जिज्ञासा की शांति ही दर्शन का उद्देष्य होता है। जबकि भारतीय मत में दर्शन सीधे जीवन से जुड़ा है। यह एक जीवन दृष्टि है, यहाँ मानसिक कौतूहल के बजाय जीवन की साक्षात् समस्याओं से दर्शन की उत्पति होती है। यहाँ दर्शन का लक्ष्य उस चरम सत्ता की खोज है जो सबका मूल है, और जिसे जान लेने के बाद कुछ भी रहस्य नहीं रह जाता। यहाँ दर्शन का लक्ष्य दुःखों की अन्तः निवृत्ति करना है, जिसे मोक्ष कहते है। धर्म का लक्ष्य भी मोक्ष की प्राप्ति ही है। अतः विश्लेषण करने का ज्ञात होता है कि धर्म और दर्शन में जहाँ विषय वस्तु व लक्ष्य को लेकर काफी समानताएँ है, वही उत्पत्ति, उद्देश्य और पद्धति को लेकर उनमें कुछ भिन्नताएँ भी हैं।

जहाँ दर्शन की उत्पत्ति बौद्धिक जिज्ञासा से होती है, वही धर्म की उत्पत्ति आध्यात्मिक भूख से होती है यद्यपि दर्शन के भारतीय मतानुसार धर्म से उसकी यहाँ भी समानता है। क्योंकि यहाँ दर्शन की उत्पत्ति दुःखानुभूति से होती है। जहाँ दर्शन का उद्देश्य विश्व की व्याख्या करना है, वही धर्म का उद्देश्य आध्यात्मिक मूल्यों की वास्तविकता सिद्धि में है। यहाँ पर धर्म का भारतीय दर्शन से कोई विरोध नही है क्योंकि दर्शन का भी उद्देश्य यहाँ परम तत्व का साक्षात्कार है।

मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत वे मानक होते हैं, जो समाज का अंग, होने वाली इकाइयों, व्यक्तियों एवं प्ररिस्थितियों का मूल्यांकन करते हैं। ये मूल्य समाज की रीढ़ की हड्डी के समान होते है। ये, वो विश्वास है, जिन्हें व्यक्ति किसी दी हुई परिस्थिति में क्रिया करने हेतु चुनता है। कोई आदर्शात्मक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक सिद्धांत, जो किसी दी हुई परिस्थिति में हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं और जिन पर हमारा व्यवहार आधारित होता है, मूल्य कहलाते हैं। मूल्य समाज दर समाज एवं समय–दर–समय बदलते रहते हैं।

हमारा जीवन इन मूल्यों के इर्द–गिर्द घूमता रहता है। ये मूल्य सही और गलत के हमारे निर्णय द्वारा ही निर्धारित होते हैं। मूल्य वे अंतहीन विश्वास होते हैं, जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत एक निश्चित व्यवहार को निर्धारित करते हैं। मूल्य की तीन प्रमुख विशेषताएँ होती हैं–

- ये जीवन के प्रारम्भिक वर्षो में निर्मित होते हैं और शीघ्रता से परिवर्तित नहीं होती।
- मूल्य सही और गलत को परिभाषित करते हैं।
- मूल्य स्वयं को सत्य, असत्य, वैध–अवैध अथवा सही–गलत सिद्ध नहीं करते।

आलपोर्ट (1950) के अनुसार, कोई भी चीज जो संतुष्टि उत्पनं करती है, मूल्य के रूप में पहचानी जाती है। (भावानुवाद–भास्कराचार्युलू एवं राव 2009)

इस प्रकार मूल्य व्यक्ति की पसंद–नापसंद, आवश्यकता, इच्छा एवं संस्कृति द्वारा निर्धारित मानकों को दर्शाते हैं। मानव के दिन–प्रतिदिन के जीवन में उनके व्यवहार एवं क्रियाओं को नियंत्रित एवं मार्गदर्शित करने का कार्य मूल्य ही करते हैं। प्रत्येक शब्द जो हम बोलते हैं, वस्त्र जो हम पहनते हैं, जिस प्रकार से हम एक–दूसरे के साथ अंतःक्रिया करते हैं, हमारे प्रत्यक्षीकरण आदि सभी में मूल्य प्रदर्शित होते हैं। मूल्य रूचि, विकल्प, आवश्यकता, इच्छा एवं वरीयता के आधार पर निर्मित होते हैं। मूल्य में भावनाओं एवं क्रियाओं के चिंतन, जानने अथवा समझने की प्रक्रिया निहित रहती है। लोगों का व्यवहार हमें उनके मूल्यों को जानने में मदद करता है। किसी व्यक्ति पर किसी प्रकार का दबाव अथवा डर दिखाये बिना किसी निश्चित समय में उसके द्वारा किये जाने वाले व्यवहार अथवा क्रिया के माध्यम से उसके मूल्यों का आंकलन किया जा सकता है। सामान्यतः मूल्य व्यक्ति के स्वयं के चयन द्वारा निर्धारित होते हैं। मूल्य मुख्यतः निम्नलिखित तीन आयामों पर निर्धारित होते हैं (भावानुवाद–सुकुमार 2009)–

- व्यक्ति का आत्म
- आत्म एवं अन्य व्यक्ति जिनके साथ वे प्रतिदिन अंतःक्रिया करते हैं।
- सामाजिक मानक

हमारे दिन–प्रतिदिन के जीवन में व्यक्ति का व्यवहार उपरोक्त वर्णित तीनों आयामों पर आधारित हमारे मूल्यों द्वारा निर्मित होता है। उदाहरणस्वरूप, आत्मसम्मान एवं व्यक्तिगत आध्यात्मिक मूल्य व्यक्ति के आत्म को नियंत्रित करते हैं। हमारे माता–पिता, परिवार एवं अन्य लोगों के साथ हमारे संबंध अंतर्व्यैक्तिक आयाम द्वारा नियंत्रित होते हैं और समाज में हमारा व्यवहार दूसरों की भावनाओं का सम्मान करने पर निर्धारित एवं नियंत्रित होता है।

मूल्य के प्रकार

मूल्य मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–

- यांत्रिक मूल्य, जैसे–रूचि, ऐश्वर्य, समृद्धि आदि।
- आत्मिक मूल्य, जैसे–स्वास्थ्य, सम्मान, पवित्रता आदि।

यांत्रिक मूल्य जहाँ विरोधाभास उत्पन्न करते हैं वहीं आत्मिक मूल्य शांति एवं सहयोग लाते हैं।

सन् 1979 में बी.आर. गोयल द्वारा 83 मूल्यों की एक सूची बनायी गयी। तत्पश्चात् डॉ. वी.के. गोकक ने 1981 में इन मूल्यों को पाँच आधारभूत मानवीय मूल्यों के रूप में वर्गीकृत किया। इस प्रकार ये पाँच मानवीय मूल्य मुख्य मूल्यों की श्रेणी में और इनके अंतर्गत आने वाले अन्य मूल्य उपमूल्यों की श्रेणी में आते हैं। ये पाँच मानवीय मूल्य हैं– सत्य, अच्छा चरित्र, शांति, प्रेम एवं अहिंसा। ये पाँच मानवीय अथवा मुख्य मूल्य सार्वभौमिक रूप से सभी धर्मो द्वारा स्वीकार

किये जाते हैं परंतु इनकी तुलना में उपमूल्य अधिक प्रेक्षणीय होते हैं जबकि मुख्य मूल्य की सही पहचान कर पाना कभी–कभी कठिन हो जाता है क्योंकि कभी–कभी कुछ व्यक्ति इनका दिखावा भी करते हैं जबकि वास्तव में वे इसे हृदय से अपनाते नहीं हैं।

अतः उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता है कि दर्शन धर्म से स्वतन्त्र है और धर्म, दर्शन के आलोच्य विषयों में से एक है। जब कभी धर्म का अधिपत्य दर्शन पर होता है तो दोनों की प्रगति रूक जाती है। किन्तु दर्शन और धर्म में केवल विरोध ही है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। भारतीय मत से दर्शन और धर्म परस्पर एक दूसरे के पूरक होते हैं यहाँ उनमें विरोध नहीं पाया जाता। भारत में धर्म के बिना दर्शन निष्फल है और दर्शन के बिना धर्म अपूर्ण है। यहाँ दर्शन की उत्पति जिज्ञासा से नहीं अपितु मुमुक्षा से होती है, यहाँ धर्म की तरह दर्शन का उद्देश्य बौद्धिक ज्ञान से ऊपर उठकर परमतत्व के साक्षात्काार करने में पूरा हो जाता है। किन्तु उस मोक्षानुभूति का प्रचार–प्रसार दर्शन ही करता है। दर्शन की मोक्षानुभूति के तर्क सम्मत व्याख्या करके उसे वैज्ञानिक धरातल पर सर्वस्वीकारीय बनाने का प्रयास करता है। धर्म भी दर्शन के लिए आवश्यक है सत्य के लिए संयमित आचरण की आवश्यकता होती है, जो धर्म सम्मत जीवनचर्चा से सम्भव होता है। यही कारण है भारत में धर्म और दर्शन के बीच कभी वर्चस्व की लड़ाई नहीं हुई है। यहाँ दर्शन और धर्म को अंधविश्वास से बचाता है और धर्म, दर्शन को चरम अनुभूति का मार्ग दिखाता है। अतः दोनों में विरोध कम समन्व्यक अधिक है।

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

जीवन में मूल्यों का महत्व : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

स्वाति सक्सेना
शोध अध्येत्री
गोकुल दास हिन्दू गर्ल्स कालेज, मुरादाबाद

मूल्यों का हमारे जीवन में विशेष महत्व है। मूल्य किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण में सहायक भूमिका निभाते हैं। मूल्यों के आधार पर ही एक श्रेष्ठ समाज का निर्माण होता है। वर्तमान समय में भागमभाग एवं अतिवयस्तता वाली जिन्दगी में व्यक्ति आज प्राचीन स्थापित मूल्यों से दूरी बनाता जा रहा है। उचित–अनुचित का भेद न करके व्यक्ति सिर्फ अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु प्रयत्न करता रहता है। इससे न केवल व्यक्ति के चरित्र का अपितु ऐसे व्यक्तियों के आधिक्य से समाज का भी पतन होता है। अतः स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए हमें परिवार, समाज व शिक्षा के माध्यम से मानवीय मूल्यों पर ध्यान केन्द्रित करने की आवश्यकता है।

भारतीय समाज एवं संस्कृति में सदैव से ही मूल्यों, आदर्शों , नैतिकता एवं संस्कारों को विशेष महत्व दिया जाता रहा है परन्तु वर्तमान में तीव्रता से परिवर्तित होते सामाजिक एवं पारिवारिक वातावरण में मानवीय मूल्यों एवं नैतिकता का ह्रास होता जा रहा है। आज अपनी महत्काक्षाओं की पूर्ति हेतु व्यक्ति स्वार्थी होता जा रहा है एवं सामाजिक मूल्यों, आदर्शों, चरित्र निर्माण, सदाचार, नैतिकता तथा ईमानदारी से दूरी बनाता जा रहा है। एक ओर समाज में अपराधी प्रवत्तियाँ, सामाजिक मूल्य एवं आदर्शों का विघटन, व्यक्तिवादिता, विघटनकारी प्रवृत्तियाँ लगातार बढ़ रही है तो दूसरी ओर लोग नैतिकता, आध्यात्म, साहित्य एवं दर्शन से विमुख होते जा रहे हैं। यह हमारे लिए अत्यन्त चिन्ता का विषय है। जब वर्तमान समय में युवापीढ़ी मूल्यों, आदर्शो एवं संस्कृति से दूरी स्थापित करती जा रही है तो वह अपनी भावी पीढ़ी को विरासत में क्या दे पायेगी और भावी पीढ़ी हमारे धर्म, दर्शन, साहित्य एवं संस्कृति से वंचित रह जायेगी। इस परिस्थति में भावी पीढ़ी के नैतिक पतन को कोई नहीं रोक पायेगा और भविष्य में इसके नकारात्मक परिणाम हमें देखने पड़ेगें।

मूल्यों का हमारे जीवन मे विशेष महत्व है। हमारे चरित्र निर्माण में मूल्य सार्थक भूमिका निभाते है। मूल्यों को हम वह मानक कह सकते है जिनके आधार पर किसी भी कार्य, विचार अथवा किसी के गुणों का मूल्यांकन किया जाता है। मूल्यांकन के पश्चात् ही किसी भी कार्य को उचित–अनुचित अथवा प्रशन्सनीय–अप्रशन्सनीय कहा जाता है। मूल्यों को साधन मूल्य एवं साध्य मूल्य में विभक्त किया गया है। साधन मूल्य परिस्थिति सापेक्ष होते हैं जबकि साध्य मूल्य परिस्थिति निरपेक्ष होते हैं। मूल्य सामाजिक सम्बन्धों को संन्तुलित बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । मूल्यों द्वारा समाज में एकरूपता एवं संगठन बनाये रखनें में मदद मिलती है। प्राचीन भारतीय दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करे तो हमें ज्ञात होता है धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष

को ही मानवीय मूल्य कहा गया है जिनके सम्मिलित रूप को पुरूषार्थ कहते है। धर्म के रास्ते पर चलते हुए जीवन के लिए आवश्यक भौतिक साधनों एवं इच्छाओं की पूर्ति करते हुए अन्त में मोक्ष को प्राप्त करना ही जीवन का अन्तिम उद्देश्य माना गया है।

वास्तव में मनुष्य को अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु एवं अपने जीवन निर्वाह हेतु आस–पास के अन्य व्यक्तियों एवं समूहों से सामाजिक जीवन में भागीदार बनना पड़ता है तथा अपने चारों ओर के वातावरण व परिस्थितियों से संतुलन बनाने की आवश्यकता पड़ती है। इसी कारण समाज को कुछ मानदण्ड, मूल्य, नियम व आदर्श निर्धारित करने पडते हैं, अन्यथा की स्थिति में समाज में अव्यवस्था, असुरक्षा, व अशान्ति व्याप्त हो जाती है। समाज में व्यवस्था, संतुलन व शान्ति बनी रहे इसके लिए व्यक्ति से आशा की जाती है कि वह समाज द्वारा स्थापित मूल्यों, आदर्श, मानण्डों को समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से अपने व्यक्तित्व में सम्मिलित करें। डा0 राधाकमल मुकर्जी का भी कहना है कि व्यक्ति को मूल्य अपने जीवन, समाज, संस्कृति, पर्यावरण एवं स्वयं से ही नहीं अपितु मानव के अस्तित्व एवं अनुभव से आते है।[1]

यहाँ हम कह सकते है कि मूल्यों का निर्माण इस कारण हुआ कि सबका विकास एवं कल्याण हो सके परन्तु आधुनिकता की अन्धी दौड़ में व्यस्त व्यक्तियों के आधिक्य से समाज में मूल्यों का ह्रास होता जा रहा है। आज बच्चों में नैतिकता का स्तर पहले जैसा नहीं रह गया है। कम्यूनिकेशन गैप के नाम पर दो पीढ़ियों के सदस्यों के मध्य सदैव विचारों का ही मतभेद रहता है। आज सत्य, अहिंसा, प्रेम, सदाचार, आदर्श जैसे मूल्य अपना अस्तित्व खो रहे हैं। मानवीय मूल्यों के ह्रास के कारण ही समाज में अनेक विकृतियाँ पनप रही है। आज विश्व के ज्यादातर देश आतंकवाद, युद्ध, भ्रष्टाचार, असमानता, साम्प्रदायिकता जैसी समस्याओं से ग्रस्त हैं। आतंकवाद एवं युद्ध से अकूत सम्पत्ति तथा अपार जन की हानि होती है। आज नैतिकता का इतना अधिक पतन हो चुका है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की हत्या तक कर देता है। इन सब के पार्श्व में कहीं न कहीं मूल्यों के स्तर में गिरावट होना ही है। हम कह सकते है कि जैसे–जैसे मानवीय मूल्यों का हनन होता जायेगा वैसे–वैसे ही समाज में विसंगतिया पनपती जायेगी॥

वर्तमान में मानव जीवन अनेक समस्याओं के जटाजाल में फंसा हुआ है। नैतिकता के क्षेत्र में मनुष्य ने जितना ह्रास एवं अवनति प्राप्त की है उसकी तुलना विश्व में किसी भी अन्य जीव से नहीं की जा सकती है। इसका कारण मनुष्य में मोह, ईर्ष्या, तृष्णा, द्वेष, क्रोध, अज्ञानता, हिंसा एवं लोभ आदि दुष्प्रवृत्तियों का बढ़ना है।[2] इसके अतिरिक्त औद्योगीकरण के फलस्वरूप मशीनीकरण का प्रारम्भ हुआ और इसके साथ ही व्यक्ति का आधुनिकता की तरफ झुकाव बढ़ता गया। उच्च जीवन स्तर पाने की लालसा में व्यक्ति उचित–अनुचित का भेद किये बिना ही कई बार अवांछित कार्य कर बैठता है। अधिक धनवान बनने को व्यक्ति लघु मार्ग अपनाने के लिए सिर्फ अपने मन की बात सुनता है उस पर किसी अन्य की बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी प्रकार आधुनिक दर्शन से प्रभावित व्यक्ति प्रत्येक बात में तर्क को खोजता है। वह पुरातन जीवन मूल्यों को निरर्थक मानता है और उनकी अवहेलना करने के लिए तरह–तरह के तर्क का सहारा लेता है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति जब समाज में स्वयं को असुरक्षित समझने लगता है तब

अपनी सुरक्षा हेतु वह नैतिकता का त्याग कर देता है और इस प्रकार मूल्यों का ह्रास होना प्रारम्भ हो जाता है।

कहना गलत न होगा कि वर्तमान समय में मानवीय मूल्यों का घटता स्तर चिन्ता का विषय है। पूर्व में जिस प्रकार समाज में व्याप्त विभिन्न कुरीतियों को समाज सुधारकों के द्वारा समाप्त करने में विशेष भूमिका निभायी गयी, उसी प्रकार वर्तमान समाज में व्याप्त आतंकवाद, भ्रष्टाचार, विरोध प्रदर्शन, युद्ध, हिंसा, जैसी समस्याओं का समाधान करना आवश्यक है। धर्म, दर्शन एवं मूल्यों की सहायता से हम इन समस्याओं का हल ढूँढ सकते हैं। मूल्यों को परिवार, समाज एवं शिक्षा के माध्यम से सरलता से आत्मसात किया जा सकता है। परिवार को बालक की प्रथम पाठशाला तथा माता को बालक की प्रथम गुरू माना जाता है क्योंकि परिवार में बालक को जो संस्कार दिये जाते हैं वह अन्यत्र नहीं प्राप्त हो सकते हैं। जब बालक को बचपन से ही अच्छे संस्कारों से परिपूर्ण बनाया जायेगा तब बड़े होकर वह अनुचित कार्यों से प्रभावित नहीं हो पायेगा। अतः सर्वप्रथम इस दिशा में महिलाओं को अपनी सकारात्मक भूमिका निभानी होगी क्योंकि पं0 जवाहरलाल नेहरू ने कहा है कि समाज को जाग्रत करने से पूर्व महिलाओं को जाग्रत करने की आवश्यकता है क्योंकि जब एक महिला आगे बढ़ती है तो केवल एक परिवार ही आगे नहीं बढ़ता अपितु गांव, शहर एवं पूरा देश आगे बढ़ता है।[3] परिवार के साथ ही साथ समाज के माध्यम से भी मूल्यों को उचित प्रकार से सीखा जा सकता हैं। प्रत्येक समाज के कुछ निश्चित मापदण्ड होते हैं जो व्यक्ति के व्यवहारों में दिखाई पड़ते हैं। जैसे–बड़ों का आदर करना, देश के प्रति सम्मान व्यक्त करना, महिलाओं को सम्मान देना, अहिंसा का पालन करना, अनुशासन, सहनशीलता, आज्ञाकारिता, समानता, विश्वसनीयता, आदि। यह मूल्य व्यक्ति के आचरण के लिए प्रेरणा के स्त्रोत होते हैं जो व्यक्ति के दिन–प्रतिदिन के कार्यों के लिए दिशा निर्धारित करते हैं और निर्णय लेने में सहायक सिद्ध होते हैं। मूल्य व्यक्ति की मनोवृत्ति निर्माण में सकारात्मक भूमिका निभाते हैं। इसके अतिरिक्त मूल्यों को आत्मसात करने के लिए शिक्षा भी सर्वश्रेष्ठ माध्यम है। शिक्षकों को छात्रों को पढ़ाते समय यह ध्यान देना चाहिए कि वह छात्रों को जो पढ़ा रहे है क्या छात्र उसे उसी रूप में सीख रहे हैं। छात्रों में मूल्यों को विकसित करने के लिए पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को सम्मिलित करके उन्हें जीवन में पालन करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। इसके साथ ही अच्छा साहित्य, शिक्षकों का आचरण, प्रेरक प्रसंग, महापुरूषों की जीवनी भी मूल्यों को आत्मसात करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

संदर्भ

1. *राधाकमल मुकर्जी, ''द डाइमेन्शन्स ऑफ वैल्यूज'', जार्ज ऐलन एण्ड अनविन लण्डन, 1964, पृ09*
2. *डा0 गिरिराजशाह, डा0 गिरिराज शरण अग्रवाल, निश्तर खानकाही, ''विश्व आतंकवाद क्यों और कैसे,'' हिन्दी साहित्य निकेतन बिजनौर, 1998।*
3. *शर्मा श्रीनाथ एवं सिंह मनोज कुमार, ''पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास,'' आदित्य पब्लिशर्स म0प्र0,2000पृ0 112*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

भारतीय इतिहास में नैतिकता एवं मानवीय मूल्य

मो. तुफैल खाँ
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
गाँधी फ़ैज़–ए–आम कॉलेज, शाहजहाँपुर

मानवीय मूल्यों या नीतिशास्त्र की अवधारणा के संबंध में यह तथ्य सर्वविदित है कि मूल्यों का संबंध समय, समाज तथा परिवेश से है। 'मूल्य न ही व्यक्ति और न वस्तु में होता है बल्कि इन दोनों के योग से ही इसका निर्णय किया जाता है। इस दृष्टि के अंतर्गत मानवीय मूल्य समाज सापेक्ष होते हैं।''[1] नीतिशास्त्र मानव व्यवहार का विज्ञान है। यह मन की आंतरिक वृत्ति है। इसकी अभिव्यक्ति अभ्यासजन्य व्यवहार में होती है। इस प्रकार नीतिशास्त्र मानवीय मूल्यों, आदतों एवं चरित्र का विज्ञान है। इसे आचार शास्त्र भी कहा जाता है।[2] नीतिशास्त्र का संबंध मानव मूल्य के स्वाभाविक रूप से न होकर उस रूप से है जैसा कि मानवीय मूल्य को होना चाहिए।

मानवीय मूल्य वे मानवीय मान, लक्ष्य या आदर्श है जिनके आधार पर विभिन्न मानवीय परिस्थितियों तथा विषयों का मूल्यांकन किया जाता है। वे मूल्य व्यक्ति के लिए कुछ अर्थ रखते हैं और उन्हें व्यक्ति अपने सामाजिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण समझते हैं। इन मूल्यों का एक सामाजिक–सांस्कृतिक आधार या पृष्ठभूमि होती है, इसलिए प्रत्येक समाज के मूल्यों में हमें भिन्नता मिलती है।[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि, मानवीय मूल्य या नीतिशास्त्र मानव के परम–मंगल का विज्ञान है। हांलाकि इस परम–मंगल या उच्चतम कल्याण के आदर्श को इतिहास में खोजना दुष्कर है, क्योंकि इतिहास के अधिकतर पन्ने रक्त–रंजित है, किन्तु भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक चरित्र हुए हैं जिन्होंने इतिहास की धारा को मोड़ने का प्रयत्न किया है और मनुष्य के परम–मंगल अथवा उच्चतम कल्याण या कल्याणकारी राज्य के लिए प्रयास किए हैं, उनमें महात्मा गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, अशोक आदि से लेकर महात्मा गाँधी तक प्रमुख हैं। ये प्रमुख लोग भारतीय समाज में समय–समय पर नैतिकता एवं गिरते हुए मानवीय मूल्यों को लेकर चिंतित रहे और इसके समाधान का प्रयास भी करते रहे।

महात्मा गौतम बुद्ध के सिद्धान्तों में मानवीय मूल्य स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। महात्मा बुद्ध ने बौद्ध धर्म के माध्यम से सर्वप्रथम भारतीयों को एक सरल तथा आडम्बरहित धर्म प्रदान किया जिसका अनुसरण राजा–रंक, ऊँच–नीच सभी कर सकते थे। महात्मा बुद्ध ने 'निर्वाण' को विशेष स्थान दिया है, जिसका अर्थ होता है बुझ जाना। इसमें लोभ, घृणा, क्रोध और भ्रम की

आग बुझ जाती है। तथागत[4] ने अध्यात्मिक और नैतिक दृष्टि से साधना के मध्यम मार्ग को बताया जोकि आँखों को खोलता और बुद्धि प्रदान करता है, जो शान्ति, अर्न्तदृष्टि, उच्च प्रज्ञा और निर्वाण की ओर ले जाता है। वास्तव में 'अष्टांगिक मार्ग' के माध्यम से बुद्ध ने लोगों को नैतिकता के मार्ग पर चलने की शिक्षा दी। यह अष्टांगिक मार्ग है–[5]

1–सम्यक दृष्टि, 2–सम्यक संकल्प, 3–सम्यक वाक्, 4–सम्यक कमन्ति, 5–सम्यक आजीविका, 6–सम्यक स्मृति, 8–सम्यक समाधि। इनके द्वारा लोगों में त्याग, परोपकार, करुणा, सत्य वचन बोलना, हिंसा न करना, प्रेम–भाव आदि को अत्यधिक प्रोत्साहन मिला। अन्यत्र भी कहा गया है–[6]

तथा–तथा प्रवर्तेत यथा न क्षुम्य्ते मनः।
संक्षुब्धे चित्तरत्ने तु नैव सिद्धि कदाचन।।

अर्थात– 'आचरण वैसा करना चाहिए जिसमें मन में क्षोम नहीं जगे; क्योंकि चित्तरत्न के क्षुब्ध होने पर सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होती। बुद्ध ने कुशल कार्यों में जागृति और उत्साहित मन से सत्कर्म करने को कहा। इस संबंध में 'धम्मपद' की निम्नलिखित गाथा भी विचारने योग्य है–[7]

अतित्थरेथ कल्याणे पापा चिनं निवारथे।
दन्धं हि करोतो पुँ पापास्मि रमतो मनो।।

अर्थात– ''कल्याण करने में शीघ्रता करनी चाहिए, क्योंकि आलस्य से पुण्य–कर्म करने वाले का मन पाप में रहता है।''

धर्म के क्षेत्र में भी बुद्ध ने अहिंसा एवं सहिष्णुता का पाठ पढ़ाया। अशोक, कनिष्क, हर्ष आदि राजाओं में जो नैतिकता एवं मानवीय मूल्य देखने को मिलती है, वह बौद्ध धर्म के प्रभाव का ही परिणाम थी। अशोक ने युद्ध विजय की नीति का परित्याग कर धम्मविजय की नीति को अपनाया तथा लोक कल्याणकारी राज्य का आदर्श समस्त विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया। उसकी 'धम्म' विषयक टिप्पणी नैतिक आचरण की व्यापक संहिता है। वस्तुतः देखा जाये तो यहीं 'धम्म' तथा उसका प्रचार अशोक को विश्व इतिहास में प्रसिद्ध करने का सर्वप्रधान तत्व है। अशोक ने विभिन्न अभिलेखों में 'धम्म' की व्याख्या की है। अपने द्वितीय स्तम्भ लेख में वह स्वयं प्रश्न करता है– कियं चु धम्मे? अर्थात 'धम्म' क्या है। इसका उत्तर वह अपने सातवें स्तम्भ लेख में स्वतः देता है। वह उन गुणों को गिनाता है जो धम्म का निर्माण करते हैं। इन्हें इस प्रकार व्यक्त किया गया है–

आपसिनेबहु कयानेदया दाने सचे सोचये मादवे साधावेच।

अर्थात् धम्म–[8] इसका अर्थ यह है कि– अल्प पाप अत्यधिक कल्याण, दया है, दान है, सत्यवादिता, पवित्रता, मृदुता एवं साधुता है।

अपने तृतीय स्तम्भ लेख में अशोक आसिनव को 'पाप' कहता है। वह कहता है कि इन दुर्गुणों के कारण आसिनव हो जाता है–

'आसिनव गामिनी नाम अथ चंडिये निठुलिये कोधे माने इस्सा।

इसका अर्थ इस प्रकार है–आसिनव अर्थात् पाप की ओर ले जाने वाले कृत्य–प्रचण्डता, निष्ठुरता, क्रोध, ईर्ष्या एवं घमण्ड आदि हैं। अशोक कहता है धम्म के पूर्ण पालन के लिये गुणों के साथ–साथ इन दोषों को धम्म के मार्ग में बाधा उत्पन्न करते हैं, वह सभी कार्य त्याग देने चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि मानव सदा आत्मनिरीक्षण करता रहे जिससे 'धम्म' के मार्ग से भ्रष्ट करने वाले गलत कार्यों का ज्ञान होता रहे। इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोक का धम्म कल्याणकारी कार्यों के लियेप्रेरित करता है। कलिंग युद्ध के भीषण नरसंहार से दुःखी होकर अशोक ने हर प्रकार से हिंसा रोकने का प्रयत्न किया। इसके लिये वह कहता है कि प्राणियों की हत्या नहीं करनी चाहिए। अहिंसा के आग्रह के साथ ही उसने माता–पिता, मित्रों, परिचितो, बुजुर्गों एवं नौजवानों, सेवकों तथा विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच सौम्य सम्बन्धों पर जोर दिया। अशोक एक सहिष्णु सम्राट था। वह अपने बारहवें शिलालेख में कहता है कि– 'मनुष्य को अपने धर्म का आदर एवं दूसरे धर्म की अकारण निन्दा नहीं करनी चाहिए। एक न एक कारण से अन्य धर्म का आदर करना चाहिए।

'अल्पासंड पूजा व परपासंड गहरा व नो भवे।
पेजेतया तु एवं परपासंडा तेन प्रकरणेन।।'

अशोक ने 'धम्म' नीति के माध्यम से अनेक ऐसे कार्य किये जो कि आचरण के महत्वपूर्ण एवं नियामक पक्ष हैं। अशोक की 'धम्म' नीति का निचोड़ रोमिला थापर ने ठीक ही दिया है कि ''सम्राट अशोक की धम्म नीति सार रूप में जीवन पद्धति को सुजाने का एक ऐसा प्रयास है जो व्यवहारिक होने के साथ–साथ सुविधाजनक एवं अत्यन्त नैतिक भी है।''[9]

विश्व इतिहास में अशोक के समान योद्धा एवं कुशल प्रशासक अनेक राजा हुए हैं। परन्तु अशोक अपने जनकल्याणकारी कार्यों के लिये सर्वाधिक प्रसिद्ध है और इस क्षेत्र में उसके समकक्ष दूसरा शासक मिलना कठिन है। वह भारतीय इतिहास में पहला शासक था जिसकी उदार दृष्टि में न केवल मानव जाति अपितु सभी जीवधारी समान थे। उसने मानव कल्याण के लिये केवल अपने देश में ही नहीं वरन दुरस्थ देशों में भी प्रचारक भेजे। इस प्रकार उसके मानव कल्याण की ललक एवं अदम्य उत्साह बौद्ध धर्म को विश्वव्यापी बना दिया। अशोक ने विश्व–बन्धुत्व एवं लोक–कल्याण का अपना संदेश दूर–दूर तक फैलाया, वह विश्व के लिए 'जीओ और जीने दो' का नारा दे गया। राधा कुमुद मुखर्जी के शब्दों में, ''अशोक इतिहास में शान्ति एवं विश्व–बन्धुत्व के अन्वेशकों में सर्वप्रमुख था। इस दृष्टि से वह न केवल अपने समय से अपितु आधुनिक समय से भी बहुत आगे था। जो अब भी इस आदर्श को कार्यान्वित करने के लिये संघर्ष कर रहा है।''

नैतिकता एवं मानव मूल्य की दृष्टि से भारत के सांस्कृतिक जीवन में जैन धर्म एवं दर्शन का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात 'महावीर स्वामी' ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ किया। उन्होंने आत्मवादियों तथा नास्तिकों के एकान्तिक मतों को छोड़कर बीच का मार्ग अपनाया जिसे 'अनेकान्तवाद' अथवा 'स्याद्वाद' कहा गया है। जैन धर्म में मोक्ष प्राप्ति के तीन साधन बताये गये हैं– सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चरित्र– इन तीनों को जैन धर्म में 'त्रिरत्न' की संज्ञा दी जाती है। जहां सम्यक् दर्शन में आठ अंग बताये गये हैं तथा सम्यक् ज्ञान में इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान, सुनकर प्राप्त किया गया ज्ञान, कहीं रखी हुई किसी वस्तु का अलौकिक ज्ञान, अन्य व्यक्तियों के मन की बातों को जान लेने का ज्ञान तथा कैवल्य अर्थात पूर्ण ज्ञान प्रमुख हैं तथा जो कुछ भी जाना जा चुका है और सही माना जा चुका है उसे कार्य रूप में परिणत करना ही सम्यक् चरित्र है। जैन विचारकों का कहना है कि जिस प्रकार भांग, शराब आदि नशीली जड़ वस्तुएँ उपयोग के पश्चात एक निश्चित समय पर स्वतः अपने प्रभाव से चैतन्य को बिना उसकी इच्छा की उपेक्षा किए, प्रभावित करती है, उसी प्रकार कर्म भी स्वतः ही अपना फल प्रदान करता है। श्रीमद् रामचन्द्र जी लिखते हैं–

झेर सुधसमजे नहीं, जीव खाय फल थाय।
एक शुभा कर्म नो, भक्तोपणु जणाय।।

अर्थात जैसे विष खाने वाला उसके प्रभाव से बच नहीं सकता वैसे ही कर्मों का कर्ता भी उसके प्रभाव से नहीं बच सकता। इस प्रकार अच्छे कर्मों को करने वाला व्यक्ति ही मोक्ष को प्राप्त करता है।

तुलसीदास ने कहा कि, परहित सरिस धर्म नहि भाई, पर पीड़ा सम नहि अधमाई' अर्थात व्यक्ति का वह आचरण जो दूसरों के लिए कल्याणकारी या हितकारी है वही सदाचार है, पुण्य है और जो दूसरों के लिए अकल्याणकारी है, अहितकर है वही पाप है, दुराचार है। जैन धर्म में सदाचार के एक ऐसे ही शाश्वत मानदण्ड की चर्चा उपलब्ध है। कहा गया है कि, 'भूतकाल में जितने अहर्त हो गये हैं, वर्तमान काल में जितने अहर्त हैं और भविष्य में जितने अहर्त होंगे वे सभी यह उपदेश करते हैं कि सभी प्राणी, सभी भूतों, सभी जीवों और सत्वों को किसी प्रकार का परिताप, उद्वेग या दुःख नहीं देना चाहिए, न किसी का हनन करना चाहिए। यही शुद्ध, नित्य और शाश्वत धर्म है।''[10] अनेकांतवाद (स्याद्वाद) का सिद्धान्त विभिन्न मतों एवं समुदायों के बीच भेदभाव मिटाकर समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाने की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास है।

नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों के लिए जहाँ प्राचीन भारतीय इतिहास में महात्मा गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी और अशोक का उल्लेखनीय योगदान है वहीं आधुनिक भारतीय समाज में नैतिकता और मानवीय मूल्यों के प्रति महात्मा गाँधी का विचार एवं चिन्तन उल्लेखनीय है। गाँधी जी ने भारतीय दार्शनिक परम्परा का केवल अध्ययन ही नहीं किया वरन् इस परम्परा में

उपलब्ध नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को जीवन में उतारा है। यह कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध प्राचीन काल में और महात्मा गाँधी आधुनिक युग में अवतरित न हुए होते तो अहिंसा एवं सत्य जैसे नैतिक मूल्य मानव की कल्पना मात्र ही बने रहते। प्राचीन काल से लेकर गाँधी जी के भारतीय राजनीतिक पटल पर अवतरित होने तक दार्शनिक एवं संतों ने अहिंसा का क्षेत्र व्यक्ति का जीवन ही माना है किन्तु गाँधी जी ने मनुष्य के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं आदि सभी क्षेत्रों में अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया। इसी प्रकार सत्य ही ईश्वर है और ईश्वर ही सत्य है कहकर उन्होंने सत्य का एक नवीन आयाम हमारे सामने प्रस्तुत किया। गाँधी जी के विषय में हम निःसंकोच यह कह सकते हैं कि उनका जीवन ही उनका दर्शन है।

मानव मूल्यों के प्रति उनकी सजगता देखकर यह लगता है कि गाँधी जी अकेले बुद्ध, महावीर, अशोक, कनिष्क और हर्ष आदि का सम्मिश्रण हैं। उन्होंने अपने उदात्त जीवन और कार्यपद्धति पर गहरा प्रकाश अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा' के माध्यम से डाला है। अपने आत्मकथा में गाँधी जी कहते हैं कि– ''मेरे प्रयोगों में तो आध्यात्मिक का मतलब है नैतिक; धर्म का अर्थ है नीति; आत्मा की दृष्टि से पाली गयी नीति धर्म है। इसलिए जिन वस्तुओं का निर्णय बालक, नौजवान और बूढ़े करते हैं और कर सकते हैं, इस कथा में इन्हीं वस्तुओं का समावेश होगा।''[11] अपनी आत्मकथा में गाँधी जी ने नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों पर अनेक बिन्दुओं के द्वारा अपने विचार को स्पष्ट किया है, जिनमें घर में सत्याग्रह, संयम की ओर, उपवास, शिक्षक के रूप में, अक्षर–ज्ञान, आत्मिक शिक्षा, भले–बूरे का मिश्रण तथा प्रायश्चित्त–रूप उपवास आदि प्रमुख है।

घर में सत्याग्रह के अंतर्गत गाँधी जी ने संयमी होने की सीख दी, गाँधी जी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि 'मुझे जेल का पहला अनुभव सन् 1908 में हुआ। उस समय मैंने देखा कि जेल में कैदियों से जो कुछ नियम पालन करवाये जाते हैं, संयमी अथवा ब्रह्मचारी को उनका पालन स्वेच्छापूर्वक करना चाहिए।''[12] जैसे, कैदियों को सूर्यास्त से पहले पाँच बजे तक खा लेना होता है। उन्हें हिन्दुस्तानी और हब्शी कैदियों को– चाय या कॉफी नहीं दी जाती। ''नमक खाना हो तो अलग से लेना होता है। स्वाद के लिए तो कुछ खाया ही नहीं जा सकता।'' आगे गाँधी जी बताते हैं कि कैसे घर में सत्याग्रह के कारण वो नमक और दाल का त्याग किये। गाँधी जी लिखते हैं कि ''कस्तूरबाई के बीमार होने पर गाँधी जी ने उन्हें नमक और दाल छोड़ने के लिए कहा। बहुत मनाने पर भी वह मानी नहीं। आखिर कस्तूरबाई ने कहा, ''दाल और नमक छोड़ने को तो कोई आपसे कहे, तो आप भी न छोड़ेंगे।'' गाँधी जी ने कहा, ''तुम्हारा ख्याल गलत है। मुझे बीमारी हो बैद्य इस चीज़ को या दूसरी किसी चीज़ को छोड़ने के लिए कहे, तो मैं अवश्य छोड़ दूँ लेकिन जाओ, मैंने तो एक साल के लिए दाल और नमक दोनों छोड़े। तुम छोड़ो या न छोड़ो यह अलग बात है।''

यह बात सुनकर कस्तूरबाई को बहुत पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने माफी मांगते हुए कहा, ''अब मैं दाल और नमक नहीं खाऊँगी।'' गाँधी जी ने कहा, ''अगर तुम दाल और नमक छोड़ोगी, तो अच्छा ही होगा। मनुष्य किसी भी निमित्त से संयम क्यों न पाले, उसमें उसे लाभ ही है।''[13]

गाँधी जी इसे सत्याग्रह का नाम देते हैं। नमक और दाल छुड़ाने का प्रयोग गाँधी जी ने दूसरे साथियों पर भी काफी किये थे। गाँधी जी ने कहा कि, ''वैद्यक दृष्टि से दोनों चीज़ों के त्याग के विषय में दो मत हो सकते हैं, पर इसमें मुझे कोई शंका ही नहीं कि संयम की दृष्टि से तो इन चीज़ों के त्याग में लाभ ही है। भोगी और संयमी के आहार भिन्न होने चाहिए, उनके मार्ग भिन्न होने चाहिए।

गाँधी जी नैतिकता एवं मानव मूल्य को स्थापित करने में आहार एवं उपवास की भूमिका का उल्लेख करते हैं। वो लिखते हैं, ''ब्रह्मचर्य का पालन करने की इच्छा रखने वालों के बारे में मैंने आहार और उपवास का निकट संबंध सूचित किया है, तो भी यह निश्चित है कि उसका मुख्य आधार मन है। मैला मन उपवास से शुद्ध नहीं होता। मन का मैल तो विचार से, ईश्वर के ध्यान से और आखिर ईश्वरी प्रसाद से ही छूटता है। किन्तु मन का शरीर के साथ निकट संबंध है और विकार युक्त मन विकारयुक्त आहार की खोज में रहता है।''[14]

गाँधी जी ने मानव मूल्यों के संबंध में अपनी आत्मकथा में आत्मिक शिक्षा के बारे में विस्तारपूर्वक लिखा है। वे लिखते हैं, ''विद्यार्थीयों के शरीर और मन को शिक्षित करने की अपेक्षा आत्मा को शिक्षित करने में मुझे बहुत परिश्रम करना पड़ा। आत्मा के विकास का अर्थ है चरित्र का निर्माण करना, ईश्वर का ज्ञान पाना, आत्मज्ञान प्राप्त करना। इस ज्ञान को प्राप्त करने में बालकों को बहुत ज्यादा मदद की जरूरत होती है और इसके बिना दूसरा ज्ञान व्यर्थ है, हानिकारक भी हो सकता है।''[15]

गाँधी जी ने शरीर और मन को शिक्षित करने के साथ ही साथ आत्मिक शिक्षा पर बहुत ज़ोर दिया। वह यह भी स्पष्ट करते हैं कि लोगों में यह भ्रम फैला हुआ है कि आत्मज्ञान चौथे आश्रम में प्राप्त होता है। इसके लिए उनका विचार ये था कि जो लोग आत्मिक ज्ञान को चौथे आश्रम तक स्थगित रखते हैं, वे आत्मज्ञान प्राप्त नहीं करते, बल्कि बुढ़ापा और दूसरा परन्तु दयाजनक बचपन पाकर पृथ्वी पर भाररूप बनकर जीते हैं। गाँधी जी ने इस पर भी विचार प्रस्तुत किया है कि आत्मिक शिक्षा किस प्रकार दी जाये? उन्होंने इस विषय में कहा है कि, ''मैं बालकों को भजन गवाता, उन्हें नीति की पुस्तकें पढ़कर सुनाता, किन्तु इससे मुझे संतोष न होता था। जैसे–जैसे मैं उनके संपर्क में आता गया, मैंने यह अनुभव किया कि यह ज्ञान पुस्तकों द्वारा तो दिया ही नहीं जा सकता।''[16]

उनका मानना था कि जिस प्रकार शरीर की शिक्षा शारीरिक कसरत द्वारा दी जाती है और बुद्धि की बौद्धिक कसरत द्वारा, उसी प्रकार आत्मा की शिक्षा आत्मिक कसरत द्वारा ही दी जा सकती है। उनका कहना था कि आत्मा की कसरत शिक्षक के आचरण द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव युवक हाजिर हों न हों, शिक्षक को सावधान रहना चाहिए। गाँधी जी लिखते हैं, ''मैं स्वयं झूठ बोलूँ और अपने शिष्यों को सच्चा बनाने का प्रयत्न करूँ तो वह व्यर्थ ही होगा। डरपोक शिक्षक शिष्यों को वीरता नहीं सिखा सकता। व्याभिचारी शिक्षक शिष्यों को संयम किस प्रकार सिखायेगा? मैंने देखा कि मुझे अपने पास रहने वाले युवकों और युवतियों के सम्मुख पदार्थपाठ–सा बनकर रहना चाहिए। इस कारण मेरे शिष्य मेरे शिक्षक बने। मैं यह समझा कि मुझे अपने लिए नहीं, बल्कि उनके लिए अच्छा बनना और रहना चाहिए।''[17]

गाँधी जी का मानना था कि आत्मिक ज्ञान देने से आत्मा के गुण को अच्छी तरह समझा जा सकता है। गाँधी जी का सम्पूर्ण जीवन नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों से ओत–प्रोत था। अपनी आत्मकथा 'सत्य के प्रयोग' में वे लिखते हैं कि, ''सत्य के प्रयोग करते हुए मैंने आनन्द लूटा है और आज भी लूट रहा हूँ। लेकिन मैं जानता हूँ कि अभी मुझे विकट मार्ग तय करना है। इसके लिए मुझे शून्यवत् बनना है। मनुष्य जब तक स्वेच्छा से अपने को सबसे नीचे नहीं रखता, तब तक उसे मुक्ति नहीं मिलती। अहिंसा नम्रता की पराकाष्ठा है और यह अनुभव सिद्ध बात है कि इस नम्रता के बिना मुक्ति कभी नहीं मिलती।''[18]

नैतिक मूल्य एवं समाज के बारे में राजकमल मुखर्जी (1949) ने कहा कि, ''मनुष्य मूल्यों की रचना करने वाला और मूल्यों पर अमल करने वाला प्राणी है। मनुष्य मूल्यों का स्रोत नहीं वरन् उन मूल्यों का निर्णायक भी है जो समूहों और संस्थाओं के कार्यों को सही ढंग से चलाने के लिये तमाम अंतवैयक्तिक लक्ष्यों, संबंधों और व्यवहारों में बिखरे पड़े होते हैं। कभी–कभी व्यक्ति और सामाजिक मूल्यों के बीच भी अंतर किया जाता है। यद्यपि व्यक्ति वैयक्ति मूल्य समझता है वह भी साधारणतः या उसी समाज से ग्रहण करता है, जिसका वह सदस्य है। अतः अंतिम में हम कह सकते हैं कि, ''बिना नैतिक मूल्यों के एक सभ्य समाज की स्थापना अधूरी रह जाती है।''

संदर्भ

1. *वीरेन्द्र मोहन, भक्तिकाव्य एवं मानव मूल्य, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 1986 ई0, पृ0–13*
2. *जे0एन0 सिन्हा, नीतिशास्त्र (। डंदनंस वि म्जीपबे), जयप्रकाश एण्ड कं0, मेरठ, पृ0–01*
3. *डॉ0 रवीन्द्रनाथ मुखर्जी, सामाजिक विचारधारा, विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर, दिल्ली–07, 2002, पृ0–545*
4. *तथागत का अर्थ होता है– सत्य का ज्ञान। बुद्ध ने सत्य के मध्यम मार्ग की खोज की थी। इसलिए उनका नाम 'तथागत' पड़ा।*
5. *के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 1991*
6. *रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, इलाहाबाद, 1956, पृ0–200*

7. *धर्मानन्द कोशाम्बी, भगवान बुद्ध जीवन और दर्शन, इलाहाबाद, 2008, पृ0—149*
8. *के0सी0 श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, यूनाईटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, 1991, पृ0—227*
9. *त्वउपसं जेंचंतए ोवां दक जीम क्मबसपदम व जीम डवनतलेंए स्वदकवदए 1961ए च.149*
10. *आचारांग सूत्र, 1, 4, 1, 127*
11. *मोहन करमचंद गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (हिन्दी अनुवाद—काशीनाथ त्रिवेदी), नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, 2019, पृ0—टप्प*
12. *मोहन करमचंद गाँधी, जेल में मेरे अनुभव (पुस्तक मूलतः गुजराती भाषा में)*
13. *मोहन करमचंद गाँधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा (हिन्दी अनुवाद—काशीनाथ त्रिवेदी), नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, 2019, पृ0—330*
14. *वही, पृ0—333*
15. *वही, पृ0—342*
16. *वही, पृ0—342*
17. *वही, पृ0—343*
18. *वही, पृ0—500*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

भारतीय संस्कृति एवं मानवीय मूल्य

विक्की
शोधार्थी (हिन्दी)
एम.जे.पी.रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली।

भारत की संस्कृति बहुआयामी है जिसमें भारत का महान इतिहास, विलक्षण भूगोल और सिन्धु घाटी की सभ्यता के दौरान बनी और आगे चलकर वैदिक युग में विकसित हुई, भारत में बौद्ध धर्म का धर्म एवं स्वर्ण युग फली–फूली अपनी खुद की प्राचीन विरासत शामिल हैं। इसके साथ ही पड़ोसी देशों के रिवाज, परम्पराओं और विचारों का भी इसमें समावेश है। पिछली पाँच सहस्राब्दियों से अधिक समय से भारत के रीति–रिवाज, भाषाएँ, प्रथाएँ और परंपराएँ इसके एक–दूसरे से परस्पर संबंधों में महान विविधताओं का एक अद्वितीय उदाहरण देती हैं। भारत कई धार्मिक प्रणालियों, जैसे कि हिन्दू धर्म, जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म जैसे धर्मों का जनक है। इस मिश्रण से भारत में उत्पन्न हुए विभिन्न धर्म और परम्पराओं ने विश्व के अलग–अलग हिस्सों को भी बहुत प्रभावित किया है।

संस्कृति की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

प्राचीनता

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। मध्य प्रदेश के भीमबेटका में पाये गये शैलचित्र, नर्मदा घाटी में की गई खुदाई तथा कुछ अन्य नृवंशीय एवं पुरातत्त्वीय प्रमाणों से यह सिद्ध हो चुका है कि भारत भूमि आदि मानव की प्राचीनतम कर्मभूमि रही है। सिन्धु घाटी की सभ्यता के विवरणों से भी प्रमाणित होता है कि आज से लगभग पाँच हजार वर्ष पहले उत्तरी भारत के बहुत बड़े भाग में एक उच्च कोटि की संस्कृति का विकास हो चुका था। इसी प्रकार वेदों में परिलक्षित भारतीय संस्कृति न केवल प्राचीनता का प्रमाण है, अपितु वह भारतीय अध्यात्म और चिन्तन की भी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है। उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर भारतीय संस्कृति से रोम और यूनानी संस्कृति को प्राचीन तथा मिस्र, असीरिया एवं बेबीलोनिया जैसी संस्कृतियों के समकालीन माना गया है।

निरन्तरता

भारतीय संस्कृति की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि हजारों वर्षों के बाद भी यह संस्कृति आज भी अपने मूल स्वरूप में जीवित है, जबकि मिस्र, असीरिया, यूनान और रोम की संस्कृतियों अपने मूल स्वरूप को लगभग विस्मृत कर चुकी हैं। भारत में नदियों, वट, पीपल जैसे

वृक्षों, सूर्य तथा अन्य प्राकृतिक देवी – देवताओं की पूजा अर्चना का क्रम शताब्दियों से चला आ रहा है। देवताओं की मान्यता, हवन और पूजा–पाठ की पद्धतियों की निरन्तरता भी आज तक अप्रभावित रही हैं। वेदों और वैदिक धर्म में करोड़ों भारतीयों की आस्था और विश्वास आज भी उतना ही है, जितना हजारों वर्ष पूर्व था। गीता और उपनिषदों के सन्देश हजारों साल से हमारी प्रेरणा और कर्म का आधार रहे हैं। किंचित परिवर्तनों के बावजूद भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्त्वों, जीवन मूल्यों और वचन पद्धति में एक ऐसी निरन्तरता रही है, कि आज भी करोड़ों भारतीय स्वयं को उन मूल्यों एवं चिन्तन प्रणाली से जुड़ा हुआ महसूस करते हैं और इससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं।

आध्यात्मिकता एवं भौतिकता का समन्वय

भारतीय संस्कृति में आश्रम – व्यवस्था के साथ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे चार पुरुषार्थो का विशिष्ट स्थान रहा है। वस्तुतः इन पुरुषार्थों ने ही भारतीय संस्कृति में आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता का एक अदभुत समन्वय कर दिया। हमारी संस्कृति में जीवन के ऐहिक और पारलौकिक दोनों पहलुओं से धर्म को सम्बद्ध किया गया था। धर्म उन सिद्धान्तों, तत्त्वों और जीवन प्रणाली को कहते हैं, जिससे मानव जाति परमात्मा प्रदत्त शक्तियों के विकास से अपना लौकिक जीवन सुखी बना सके तथा मृत्यु के पश्चात् जीवात्मा शान्ति का अनुभव कर सके। शरीर नश्वर है, आत्मा अमर है, यह अमरता मोक्ष से जुड़ी हुई है और यह मोक्ष पाने के लिए अर्थ और काम के पुरुषार्थ करना भी जरूरी है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में धर्म और मोक्ष आध्यात्मिक सन्देश एवं अर्थ और काम की भौतिक अनिवार्यता परस्पर सम्बद्ध है। आध्यात्मिकता और भौतिकता के इस समन्वय में भारतीय संस्कृति की वह विशिष्ट अवधारणा परिलक्षित होती है, जो मनुष्य के इस लोक और परलोक को सुखी बनाने के लिए भारतीय मनीषियों ने निर्मित की थी। सुखी मानव–जीवन के लिए ऐसी चिन्ता विश्व की अन्य संस्कृतियाँ नहीं करतीं। साहित्य, संगीत और कला की सम्पूर्ण विधाओं के माध्यम से भी भारतीय संस्कृति के इस आध्यात्मिक एवं भौतिक समन्वय को सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

अनेकता में एकता

भौगोलिक दृष्टि से भारत विविधताओं का देश है, फिर भी सांस्कृतिक रूप से एक इकाई के रूप में इसका अस्तित्व प्राचीनकाल से बना हुआ है। इस विशाल देश में उत्तर का पर्वतीय भू–भाग, जिसकी सीमा पूर्व में ब्रह्मपुत्र और पश्चिम में सिन्धु नदियों तक विस्तृत है। इसके साथ ही गंगा, यमुना, सतलुज की उपजाऊ कृषि भूमि, विन्ध्य और दक्षिण का वनों से आच्छादित पठारी भू–भाग, पश्चिम में थार का रेगिस्तान, दक्षिण का तटीय प्रदेश तथा पूर्व में असम और मेघालय का अतिवृष्टि का सुरम्य क्षेत्र सम्मिलित है। इस भौगोलिक विभिन्नता के अतिरिक्त इस देश में आर्थिक और सामाजिक भिन्नता भी पर्याप्त रूप से विद्यमान है। वस्तुतः इन भिन्नताओं के

कारण ही भारत में अनेक सांस्कृतिक उपधाराएँ विकसित होकर पल्लवित और पुष्पित हुई हैं। अनेक विभिन्नताओं के बावजूद भी भारत की पृथक् सांस्कृतिक सत्ता रही है। हिमालय सम्पूर्ण देश के गौरव का प्रतीक रहा है, तो गंगा – यमुना और नर्मदा जैसी नदियों की स्तुति यहाँ के लोग प्राचीनकाल से करते आ रहे हैं। राम, कृष्ण और शिव की आराधना यहाँ सदियों से की जाती रही है। भारत की सभी भाषाओं में इन देवताओं पर आधारित साहित्य का सृजन हुआ है। उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक सम्पूर्ण भारत में जन्म, विवाह और मृत्यु के संस्कार एक समान प्रचलित हैं। विभिन्न रीति–रिवाज, आचार–व्यवहार और तीज – त्यौहारों में भी समानता है। भाषाओं की विविधता अवश्य है फिर भी संगीत, नृत्य और नाट्य के मौलिक स्वरूपों में आश्चर्यजनक समानता है। संगीत के सात स्वर और नृत्य के त्रिताल सम्पूर्ण भारत में समान रूप से प्रचलित हैं। भारत अनेक धर्मों, सम्प्रदायों, मतों और पृथक् आस्थाओं एवं विश्वासों का महादेश है, तथापि इसका सांस्कृतिक समुच्चय और अनेकता में एकता का स्वरूप संसार के अन्य देशों के लिए विस्मय का विषय रहा है।

भारतीय संस्कृति का महत्व

भारतीय संस्कृति विश्व के इतिहास में कई दृष्टियों से विशेष महत्त्व रखती है।

- यह संसार की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृति कर्म प्रधान संस्कृति है। मोहनजोदड़ो की खुदाई के बाद से यह मिस्र, मेसोपोटेमिया की सबसे पुरानी सभ्यताओं के समकालीन समझी जाने लगी है।
- प्राचीनता के साथ इसकी दूसरी विशेषता अमरता है। चीनी संस्कृति के अतिरिक्त पुरानी दुनिया की अन्य सभी – मेसोपोटेमिया की सुमेरियन, असीरियन, बेबीलोनियन और खाल्दी प्रभृति तथा मिस्र ईरान, यूनान और रोम की–संस्कृतियाँ काल के कराल गाल में समा चुकी हैं, कुछ ध्वंसावशेष ही उनकी गौरव–गाथा गाने के लिए बचे हैं, किन्तु भारतीय संस्कृति कई हजार वर्ष तक काल के क्रूर थपेड़ों को खाती हुई आज तक जीवित है।
- उसकी तीसरी विशेषता उसका जगद्गुरु होना है। उसे इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उसने न केवल महाद्वीप–सरीखे भारतवर्ष को सभ्यता का पाठ पढ़ाया, अपितु भारत के बाहर बड़े हिस्से की जंगली जातियों को सभ्य बनाया, साइबेरिया के सिंहल (श्रीलंका) तक और मैडीगास्कर टापू, ईरान तथा अफगानिस्तान से प्रशांत महासागर के बोर्नियो, बाली के द्वीपों तक के विशाल भू–खण्डों पर अपनी अमिट प्रभाव छोड़ा।
- सर्वांगीणता, विशालता, उदारता, प्रेम और सहिष्णुता की दृष्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी स्थान रखती है।

भाषा

भारत में बोली जाने वाली भाषाओँ की बड़ी संख्या ने यहाँ की संस्कृति और पारंपरिक विविधता को बढ़ाया है। 1000 (यदि आप प्रादेशिक बोलियों और प्रादेशिक शब्दों को गिनें तो, जबकि यदि आप उन्हें नहीं गिनते हैं तो ये संख्या घट कर 216 रह जाती है) भाषाएँ ऐसी हैं जिन्हें 10000 से ज्यादा लोगों के समूह द्वारा बोला जाता है, जबकि कई ऐसी भाषाएँ भी हैं जिन्हें 10000 से कम लोग ही बोलते है। भारत में कुल मिलाकर 415 भाषाएं उपयोग में हैं ।

भारतीय संविधान ने संघ सरकार के संचार के लिए हिंदी और अंग्रेजी, इन दो भाषाओं के इस्तेमाल को आधिकारिक भाषा घोषित किया है व्यक्तिगत राज्यों के उनके अपने आतंरिक संचार के लिए उनकी अपनी राज्य भाषा का इस्तेमाल किया जाता है।

भारत में दो प्रमुख भाषा सम्बन्धी परिवार हैं – भारतीय–आर्य भाषाएं और द्रविण भाषाएँ, इनमें से पहला भाषा के परिवार मुख्यतः भारत के उत्तरी, पश्चिमी, मध्य और पूर्वी क्षेत्रों के फैला हुआ है जबकि दूसरा भाषा परिवार भारत के दक्षिणी भाग में, भारत का अगला सबसे बड़ा भाषा परिवार है एस्ट्रो–एशियाई भाषा समूह, जिसमें शामिल हैं भारत के मध्य और पूर्व में बोली जाने वाली मुंडा भाषाएँ, उत्तरपूर्व में बोली जाने वाली खासी भाषाएँ और निकोबार द्वीप में बोली जाने वाली निकोबारी भाषाएँ। भारत का चौथा सबसे बड़ा भाषा परिवार है तिब्बती–बर्मन भाषा परिवार का परिवार जो अपने आप में चीनी– तिब्बती भाषा परिवार का एक उपसमूह है।

धर्म

अब्राहमिक के बाद भारतीय धर्म विश्व के धर्मों में प्रमुख है, जिसमें हिन्दू धर्म, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, जैन धर्म,(मुस्लिम धर्म) आदि जैसे धर्म शामिल हैं। आज, हिन्दू धर्म और बौद्ध धर्म क्रमशः दुनिया में तीसरे और चौथे सबसे बड़े धर्म हैं, जिनमें लगभग 1.4 अरब अनुयायी साथ हैं।

विश्व भर में भारत में धर्मों में विभिन्नता सबसे ज्यादा है, जिनमें कुछ सबसे कट्टर धार्मिक संस्थायें और संस्कृतियाँ शामिल हैं। आज भी धर्म यहाँ के ज्यादा–से–ज्यादा लोगों के बीच मुख्य और निश्चित भूमिका निभाता है।

80.4 प्रतिशत से ज्यादा लोगों का धर्म, हिन्दू धर्म है। कुल भारतीय जनसँख्या का 13.4 प्रतिशत हिस्सा इस्लाम धर्म को मानता है, सिख धर्म, जैन धर्म और खासकर के बौद्ध धर्म का केवल भारत में नहीं बल्कि पुरे विश्व भर में प्रभाव है ईसाई धर्म, पारसी धर्म, यहूदी और बहाई धर्म भी प्रभावशाली हैं, लेकिन उनकी संख्या कम है। भारतीय जीवन में धर्म की मजबूत भूमिका के बावजूद नास्तिकता और अज्ञेयवादियों (agnostic) का भी प्रभाव दिखाई देता है।

जाति व्यवस्था

भारतीय पारंपरिक संस्कृति अपेक्षाकृत कठोर सामाजिक पदानुक्रम द्वारा परिभाषित किया गया है, भारतीय जाति प्रथा भारतीय उपमहाद्वीप (Indian subcontinent) में सामाजिक वर्गीकरण

(social stratification) और सामाजिक प्रतिबंधों का वर्णन करती हैं, इस प्रथा में समाज के विभिन्न वर्ग हजारों सजातीय विवाह और आनुवाशिकीय समूहों के रूप में पारिभाषित किये जाते हैं जिन्हें प्रायः 'जाति' के नाम से जाना जाता है इन जातियों के बीच विजातीय समूह भी मौजूद है, इन समूहों को गोत्र के रूप में जाना जाता है। गोत्र , किसी व्यक्ति को अपने कुटुम्भ द्वारा मिली एक वंशावली की पहचान है, यद्यपि कुछ उपजातियां जैसे की शकाद्विपी ऐसी भी हैं जिनके बीच एक ही गोत्र में विवाह स्वीकार्य है, इन उपजातियों में प्रतिबंधित सजातीय विवाह जानी एक जाति के बीच विवाह को प्रतिबंद्धित करने के लिए कुछ अन्य तरीकों को अपनाया जाता है (उदाहरण के लिए – एक ही उपनाम वाले वंशों के बीच विवाह पर प्रतिबन्ध लगाना)

भले ही जाति व्यवस्था को मुख्यतः हिन्दू धर्म के साथ जोड़कर पहचाना जाता है लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप में अन्य कई धर्म जैसे की मुसलमान और ईसाई धर्म के कुछ समूहों में भी इस तरह की व्यवस्था देखी गई है, भारतीय संविधान ने समाजवाद, धर्मनिरपेक्षता (secular), लोकतंत्र जैसे सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए जाति के ऊपर आधारित भेदभावों को गैरकानूनी घोषित कर दिया है, बड़े शहरों में ज्यादातर इन जाति बंधनों को तोड़ दिया गया है, हालाँकि ये आज भी देश के ग्रामीण क्षेत्रों में विद्यमान है फिर भी, आधुनिक भारत में, जाति व्यवस्था, जाति के आधार पर बांटे वाली राजनीति और अलग – अलग तरीके की सामाजिक धारणाओं जैसे कई रूप में जीवित भी है और प्रबल भी होता जा रहा है

परम्परा एवं रीति

नमस्ते या नमस्कार या नमस्कारम् भारतीय उपमहाद्वीप में अभिनन्दन या अभिवादन करने के सामान्य तरीके हैं। यद्यपि नमस्कार को नमस्ते की तुलना में ज्यादा औपचारिक माना जाता है, दोनों ही गहरे सम्मान के सूचक शब्द हैं। आम तौर पर इसे भारत और नेपाल में हिन्दू, जैन और बौद्ध लोग प्रयोग करते हैं, कई लोग इसे भारतीय उपमहाद्वीप के बाहर भी प्रयोग करते हैं। भारतीय और नेपाली संस्कृति में ये शब्द लिखित या मौखिक बोलचाल की शुरुआत में प्रयोग किया जाता है। हालाँकि विदा होते समय भी हाथ जोड़े हुए यही मुद्रा बिना कुछ कहे बनायी जाती है। योग में, योग गुरु और योग शिष्यों द्वारा बोले जाने वाली बात के आधार पर नमस्ते का मतलब ''मेरे भीतर की रोशनी तुम्हारे अन्दर की रोशनी का सत्कार करती है '' होता है।

शाब्दिक अर्थ में, इसका मतलब है ''मैं आपको प्रणाम करता हूँ'' यह शब्द संस्कृत शब्द (नमस्): प्रणाम (bow), श्रद्धा (obeisance), आज्ञापालन, वंदन (salutation) और आदर (respect) और (ते): ''आपको'' से लिया गया है।

किसी और व्यक्ति से कहे जाते समय, साधारण रूप से इसके साथ एक ऐसी मुद्रा बनाई जाती है जिसमें सीने या वक्ष के सामने दोनों हाथों की हथेलियाँ एक दूसरे को छूती हुई और उंगलियाँ ऊपर की ओर होती हैं। बिना कुछ कहे भी यही मुद्रा बनकर यही बात कही जा सकती है।

वस्त्र–धारण

महिलाओं के लिए पारंपरिक भारतीय कपडों में शामिल हैं, साड़ी, सलवार कमीज (salwar kameez) और घाघरा चोली (लहंगा) धोती, लुंगी (Lungi), और कुर्ता पुरुषों(men) के पारंपरिक वस्त्र हैं, बॉम्बे, जिसे मुंबई के नाम से भी जाना जाता है भारत की फैशन राजधानी है। भारत के कुछ ग्रामीण हिस्सों में ज्यादातर पारंपरिक कपड़े ही पहने जाते हैं। दिल्ली, मुंबई,चेन्नई, अहमदाबाद और पुणे ऐसी जगहें हैं जहां खरीदारी करने के शौकीन लोग जा सकते हैं दक्षिण भारत के पुरुष सफेद रंग का लंबा चादर नुमा वस्त्र पहनते हैं जिसे अंग्रेजी में धोती और तमिल में वेष्टी कहा जाता है धोती के ऊपर, पुरुष शर्ट, टी शर्ट या और कुछ भी पहनते हैं, जबकि महिलाएं साड़ी पहनती हैं जो की रंग बिरंगे कपड़ों और नमूनों वाला एक चादरनुमा वस्त्र हैं यह एक साधारण या फैंसी ब्लाउज के ऊपर पहनी जाती है। यह युवा लड़कियों और महिलाओं द्वारा पहना जाता है। छोटी लड़कियां पवाड़ा पहनती हैं। पवाडा एक लम्बी स्कर्ट है जिसे ब्लाउज के नीचे पहना जाता है। दोनों में अक्सर खुस्नूमा नमूने बने होते हैं बिंदी (Bindi) महिलाओं के श्रृंगार का हिस्सा है।

काव्य

भारत में ऋग्वेद के समय से कविता के साथ–साथ गद्य रचनाओं की मजबूत परंपरा है। कविता प्रायः संगीत की परम्पराओं से सम्बद्ध होती है और कविताओं का एक बड़ा भाग धार्मिक आंदोलनों पर आधारित होता है या उनसे जुड़ा होता है। लेखक और दार्शनिक अक्सर कुशल कवि भी होते थे, आधुनिक समय में, भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रवाद और अहिंसा को प्रोत्साहित करने के लिए कविता ने एक महत्वपूर्ण हथियार की भूमिका निभाई है। इस परंपरा का उदाहरण आधुनिक काल में रवीन्द्रनाथ टैगोर और के एस नरसिम्हास्वामी की कविताओं, मध्य काल में बासव वचन , कबीर और पुरंदरदास (पद और देवार्नामस) और प्राचीन काल में महाकाव्यों के रूप में मिलता है। टैगोर की गीतांजलि कविता से दो उदाहरण भारत और बांग्लादेश के राष्ट्रगान के रूप में स्वीकार किये गए हैं।

महाकाव्य

रामायण और महाभारत प्राचीनतम संरक्षित और आज भी भारत के जाने माने माहाकाव्य हैं य उनके कुछ और संस्करण दक्षिण पूर्व एशियाई देशों जैसे की थाईलैंड, मलेशिया और इंडोनेशिया में अपनाए गए हैं। इसके अलावा, शास्त्रीय तमिल भाषा में पांच महाकाव्य हैं – सिलाप्पधिकाराम, निमेगालाई, जीवागा चिंतामणि, वलैयापति और कुण्डलकेसि।

इनके अन्य क्षेत्रीय रूप और असम्बद्ध महाकाव्यों में शामिल हैं तमिल कंब रामायण, कन्नड़ में आदिकवि पम्पा द्वारा पम्पा भारता, कुमार वाल्मीकि द्वारा तोरवे रामायण, कुमार व्यास द्वारा कर्नाट भारता कथा मंजरी, हिंदी रामचरितमानस, मलयालम अध्यात्मरामायणम् ।

प्रदर्शनकारी कलाएं

भारतीय संगीत का प्रारंभ वैदिक काल से भी पूर्व का है। पंडित शारंगदेव कृत ''संगीत रत्नाकर'' ग्रंथ मे भारतीय संगीत की परिभाषा ''गीतम,वादयम् तथा नृत्यं त्रयम संगीत मुच्यते'' कहा गया है। गायन, वाद्य, वादन, एवम् नृत्यय तीनों कलाओं का समावेश संगीत शब्द में माना गया है। तीनो स्वतंत्र कला होते हुए भी एक दूसरे की पूरक है। भारतीय संगीत के दो प्रकार प्रचलित है, प्रथम कर्नाटक संगीत, जो दक्षिण भारतीय राज्यों में प्रचलित है और हिन्दुस्तानी संगीत शेष भारत में लोकप्रिय है। भारतवर्ष की सारी सभ्यताओं में संगीत का बड़ा महत्व रहा है। धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं में संगीत का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है। इस रूप में, संगीत भारतीय संस्कृति की आत्मा मानी जाती है। वैदिक काल में अध्यात्मिक संगीत को मार्गी तथा लोक संगीत को देशी कहा जाता था! कालांतर में यही शास्त्रीय और लोक संगीत के रूप में दिखता है।(संगीतेश)

नृत्य

भारतीय नृत्य में भी लोक और शास्त्रीय रूपों में कई विविधताएं हैं। जाने माने लोक नृत्यों (folk dancè) में शामिल हैं पंजाब का भांगड़ा, असम का बिहू, झारखंड का झुमइर और डमकच, झारखंड और उड़ीसा का छाऊ, राजस्थान का घूमर, गुजरात का डांडिया और गरबा , कर्नाटक जा यक्षगान, महाराष्ट्र का लावनी और गोवा का देख्ननी। भारत की संगीत, नृत्य और नाटक की राष्ट्रीय अकादमी द्वारा आठ नृत्य रूपों, कई कथा रूपों और पौराणिक तत्व वाले कई रूपों को शास्त्रीय नृत्य का दर्जा दिया गया है। ये हैंः तमिलनाडु का भरतनाट्यम, उत्तर प्रदेश का कथक, केरल का कथककली और मोहिनीअट्टम, आंध्र प्रदेश का कुच्चीपुड़ी, मणिपुर का मणिपुरी, उड़ीसा का ओडिसी और असम का सत्रिया।

दृश्य कला

भारतीय चित्रकला की सबसे शुरूआती कृतियाँ पूर्व ऐतिहासिक काल में शैलचित्रों (रॉक पेंटिंग) के रूप में थीं। भीमबेटका जैसी जगहों पाये गए पेट्रोग्लिफ जिनमें से कुछ प्रस्तर युग में बने थे – इसका उदारहण है। प्राचीन ग्रंथों में दर्राघ के सिद्धांत और उपाख्यानों के जरिये ये बताया गया है कि दरवाजों और घर के भीतरी कमरों, जहाँ मेहमान ठहराए जाते थे, उन्हें पेंट करना एक आम बात थी।

अजंता, बाघ , एलोरा और सित्तनवासल के गुफा चित्र और मंदिरों में बने चित्र प्रकृति से प्रेम को प्रमाणित करते हैं। सबसे पहली और मध्यकालीन कला, हिन्दू, बौद्ध या जैनी है। रंगे हुए आटे से बनी एक ताजा डिजाइन (रंगोली) आज भी कई भारतीय घरों (मुख्यतः दक्षिण भारतीय घरों) के दरवाजे पर आम तौर पर बनी हुई देखी जा सकती है।

मधुबनी चित्रकला, मैसूर चित्रकला, राजपूत चित्रकला, तंजौर चित्रकला और मुगल चित्रकला, भारतीय कला की कुछ उल्लेखनीय विधाएं हैं, जबकि राजा रवि वर्मा, नंदलाल बोस, गीता वढेरा, जामिनी रॉय और बी वेंकटप्पा, कुछ आधुनिक चित्रकार हैं। वर्तमान समय के कलाकारों में अतुल डोडिया, बोस कृष्ण मक्नाहरी, देवज्योति राय और शिबू नटेसन, भारतीय कला के उस नए युग के प्रतिनिधि हैं जिसमें वैश्विक कला का भारतीय शास्त्रीय शैली के साथ मिलाप होता है। हाल के इन कलाकारों ने अंतर्राष्ट्रीय सम्मान अर्जित किया है। देवज्योति राय के चित्र, क्यूबा के राष्ट्रिय कला संग्रहालय में रखे गए है और इसी तरह नई पीढी के कुछ अन्य कलाकारों की कृतियाँ और शोध भी नोटिस किए गए है, इनमें सुमिता अलंग जैसे विख्यात कलाकार भी हैं। मुंबई की जहाँगीर आर्ट गैलरी और मैसूर पैलेस में कई अच्छे भारतीय चित्र प्रदर्शन के लिए रखे गए है।

मूर्तिकला

भारत की पहली मूर्तिकला के नमूने सिन्धु घाटी सभ्यता के जमाने के हैं जहाँ पत्थर और पीतल की आकृतियों की खोज की गयी। बाद में, जब हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म का और विकास हुआ, भारत के मंदिरों में एवं पीतल की कुछ बृहद जटिल नक्काशी के नमूने बने। कुछ विशालकाय मंदिर जैसे की एलोरा ऐसे भी थे जिन्हें शिलाखंडों से नहीं बल्कि एक विशालकाय चट्टान को काट कर बनाया गया।

उत्तर पश्चिम में संगमरमर के चूने, एक प्रकार की शीस्ट, या मिट्टी से उत्पादित मुर्तिकला में भारतीय और शास्त्रीय हेलेनिस्टिक या संभावित रूप से ग्रीक–रोमन प्रभाव का भारी मिश्रण देखने को मिलता है। लगभग इसी के साथ ही मथुरा की गुलाबी बलुए पत्थरों की मूर्तिकला भी विकसित हुई। इस दौरान गुप्त के शासनकाल में (6वीं से 4थी शताब्दी तक) मूर्तिकला, श्रेष्ठ निष्पादन और मॉडलिंग की बारीकी में एक बहुत ही उच्च स्तर पर पहुंच गयी थी, और इसके साथ ही भारत के अन्य क्षेत्रों में विकसित हुई शास्त्रीय भारतीय कला ने समूचे दक्षिण पूर्वी केंद्र और पूर्व एशिया में हिन्दू और बौद्ध मूर्तिकला के विकास में अपना योगदान दिया।

पश्चिम से इस्लामिक प्रभाव के आगमन के साथ ही, भारतीय वास्तुकला में भी नए धर्म कि परम्पराओं को अपनाना शुरू के गया। इस युग में बनी कुछ इमारतें हैं– फतेहपुर सीकरी, ताज महल, गोल गुम्बद, कुतुब मीनार दिल्ली का लाल किला आदि, ये इमारतें अक्सर भारत के अपरिवर्तनीय प्रतीक के रूप में उपयोग की जाती हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के औपनिवेशिक शासन के दौरान हिंद–अरबी और भारतीय शैली के साथ कई अन्य यूरोपीय शैलियों जैसे गोथिक के मिश्रण को विकसित होते हुए देखा गया, विक्टोरिया मेमोरियल या विक्टोरिया टर्मिनस इसके उल्लेखनीय उदाहरण हैं। कमल मंदिर और भारत की कई आधुनिक शहरी इमारतें इनमें उल्लेखनीय हैं।

वास्तुशास्त्र की पारंपरिक प्रणाली फेंग शुई के भारतीय प्रतिरूप की तरह है, जो कि शहर की योजना, वास्तुकला और अर्गोनोमिक्स (यानि कार्य की जगह को तनाव कम करने के लिए और प्रभावशाली बनाने के लिए प्रयोग होने वाला विज्ञान) को प्रभावित करता है। ये अस्पष्ट है कि इनमें से कौन सी प्रणाली पुरानी है, लेकिन दोनों में कुछ निश्चित समानताएं जरूर हैं। तुलनात्मक रूप से देखें तो फेंग शुई का प्रयोग पूरे विश्व में ज्यादा होता है। यद्यपि वास्तु संकल्पना के आधार पर फेंग शुई के समान है, इन दोनों में घर के अन्दर ऊर्जा के प्रवाह को संतुलित करने की कोशिश कि जाती है, (इसको संस्कृत में प्राण–शक्ति या प्राण कहा जाता है और चीनी भाषा और जापानी भाषा में इसे ची / की कहा जाता है) लेकिन इनके विस्तृत रूप एक दुसरे से काफी अलग हैं, जैसे की वो निश्चित दिशाएं जिनमें विभिन्न वस्तुओं, कमरों, सामानों आदि को रखना चाहिए.

बौद्ध धर्म के प्रसार के कारण भारतीय वास्तुकला ने पूर्वी और दक्षिण एशिया को प्रभावित किया है। भारतीय स्थापत्य कला के कुछ महत्वपूर्ण लक्षण जैसे की मंदिर टीला या स्तूप , मंदिर शीर्ष या शिखर, मंदिर टॉवर या पगोड़ा और मंदिर द्वार या तोरण एशियाई संस्कृति का प्रसिद्ध प्रतीक बन गये हैं और इनका प्रयोग पूर्व एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया में बड़े पैमाने पर किया जाता है। केन्द्रीय शीर्ष को कभी–कभी विमानम् भी कहा जाता है। मंदिर का दक्षिणी द्वार गोपुरम अपनी गूढ़ता और ऐश्वर्य के लिए जाना जाता है।

दर्शन शास्त्र

स्वामी विवेकानंद 19वीं सदी के सबसे प्रसिद्ध और प्रभावशाली समाज सुधारकों में से एक थे। विभिन्न युगों के दौरान भारतीय दर्शन का पूरे विश्व विशेषकर पूर्व में काफी प्रभाव पड़ा है। वैदिक काल के बाद, पिछले 2500 सालों में दर्शन के कई विभिन्न अनुयायी वर्ग जैसे कि बौद्ध धर्म और हिंदू धर्म के कई सम्प्रदाय विकसित हुए हैं। हालांकि, भारत ने भी तर्कवाद, बुद्धिवाद (rationalism), विज्ञान, गणित, भौतिकवाद (materialism), नास्तिकता, अज्ञेयवाद (gnosticism) आदि की कुछ सबसे पुराणी और सबसे प्रभावशाली धर्मनिरपेक्ष परम्पराओं को जन्म दिया है जो कई बार इस वजह से अनदेखी कर दी जाती है, क्योंकि भारत के बारे में एक लोकप्रिय धारणा ये है की भारत एक 'रहस्यमय' देश है।

कई जटिल वैज्ञानिक और गणितीय अवधारणाओं जैसे की शून्य का विचार, अरब (Arab) की मध्यस्थता में यूरोप तक पहुंचा। कर्वाका (Carvaka), भारत में नास्तिकता का सबसे प्रसिद्द अनुयायी वर्ग है, इसे कुछ लोगों द्वारा विश्व का सबसे पुराना भौतिकवादी अनुयायी वर्ग भी माना जाता है। ये उसी समय बन जब बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रारभिक दर्शन का निर्माण हो रहा था। 700 वर्ष ईसा पूर्व के पास की अवधि में भारतीय और वैश्विक दर्शन में एक तीव्र परिवर्तन आया था। और उसी समय समकालीन यूनानी (Greek) स्कूल भी उभर कर सामने आये थे।

कुछ लोगों का मानना है की कुछ भारतीय दर्शन की अवधारणाओं से यूनान को परिचित कराया गया, जबकि अन्य पारसी साम्राज्य के माध्यम से भारत में आये सिकंदर महान के अभियान के बाद ऐसे पारस्परिक आदान प्रदान में वृद्धि हुई।

प्राचीन काल से ही भारत में दर्शन को दिए जाने वाले महत्त्व के अतिरिक्त, आधुनिक भारत ने भी कुछ प्रभावशाली दार्शनिकों को जन्म दिया है, जिन्होंने राष्ट्रीय भाषा के साथ–साथ प्रायः अंग्रेजी में भी लिखा है। भारत के ब्रिटिशों द्वारा उपनिवेश बनाये जाने के दौरान, भारत के कुछ धार्मिक विचारकों ने विश्व भर में उतनी ही ख्याति अर्जित की जितनी की प्राचीन भारतीय ग्रंथों ने। उनमें से कुछ के कार्य को अंग्रेजी, जर्मन और अन्य भाषाओँ में अनुवादित भी किया गया। स्वामी विवेकानंद अमेरिका गए और वहां उन्होंने विश्व धर्म संसद (World Parliament of Religions) में हिस्सा लिया, उन्होंने धरती हिला देने वाले या कहिये अत्यंत प्रभावशाली वक्तव्य से सबको प्रभावित किया, वहाँ आये ज्यादातर प्रतिनिधियों के लिए ये हिन्दू दर्शन से पहला साक्षात्कार था।

कई धार्मिक विचारक जैसे की महात्मा गाँधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर और भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अन्य सदस्यों ने राजनीतिक दर्शन के नए रूप को जन्म दिया, जिसने आधुनिक भारतीय लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और उदारवाद के आधार को बनाया। आज, एशिया का पहला आर्थिक विज्ञान में नोबेल मेमोरियल पुरस्कार (Nobel Memorial Prize in Economic Sciences) जीतने वाले अमर्त्य सेन जैसे अर्थशास्त्री भारत को दुनिया के विचारों में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले एक देश के रूप में प्रतिष्ठित कर रहे है।

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

हिन्दी साहित्य और मानवीय मूल्य

डॉ. योजना कालिया
असिस्टेंटे प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
विवेकानन्द महाविद्यालय

ये उपमान मैले हो गए, हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गए, हैं कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।

सच, आज 'मानव–मूल्यों' को शब्द – रुप में इतना घिस दिया गया है कि उनका अस्तित्व और उपयोगिता दोनों के समक्ष पश्नचिन्ह लगा हुआ प्रतीत होता है। भारतीय जीवन एवं साहित्य में मानव मूल्य के चिन्तन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। मानव मूल्य व्यक्ति के आचरण को निर्देशित और मूल्यांकन करने के आदर्श मानदंड है। साहित्य का जीवन–मूल्यों के साथ दोहरा सम्बन्ध है। एक ओर जहाँ साहित्य दर्पण बनकर अपने समय के सामाजिक मूल्यों को प्रतिबिंबित करता है तो दूसरी ओर उनका विश्लेषण भी करता है। इस देश में जहाँ जीवन की नश्वरता का आग्रह करने वाले और लोकोतर जीवन की साधना का उपदेश देने वाले विचार प्रमुखता में मिलते है, मनुष्य के पार्थिव जीवन की गरिमा को स्वीकार करने वाले चिन्तन की धारा भी यहाँ गतिशील रही है। अतीत में धर्म जीवन मूल्यो को निर्धारित करने वाली एक बड़ी शक्ति था, इसलिए धार्मिक चिन्तन ने ही श्रेष्ठतर जीवन पद्धति की खोज के मानवीय प्रयासो को बल दिया। भारत मे धार्मिक साहिष्णुता ने वैचारिक साहिष्णुता को प्रेरित किया परन्तु वर्तमान में मनुष्य के लिए धर्म केवल वैयक्तिक आस्था का विषय बन गया, वह मनुष्य के सामाजिक कर्म का प्रेरणा स्रोत नहीं रहा, जबकि मानववाद माानवीय सम्बन्धो में परोपकार के महत्व और सम्भावना के प्रति आग्रह करता है। वह आर्थिक लाभ काम–चेष्टाओं, सुखान्वेषी–अभिप्राय या अन्य तुच्छ तृष्णाओं को मानवीय उद्योग का प्रेरक हेतु मानने का निषेध करता है। सबके हित के लिए प्रयत्नशील होकर ही मनुष्य अपना हित कर सकता है। मानववाद एक ऐसा आदर्श है जो मनुष्य को शुद्र स्वार्थो से ऊपर उठाकर सम्पूर्ण मानवता के कल्याण का विचार करता है। मानवतावाद उन सभी लोगों के लिए प्रेरक आदर्श है, जो श्रेष्ठतर जीवन निर्माण के महायज्ञ में जुटे हैं।

साहित्य मानव के उदात भावों एवं विचारो की अभिव्यक्ति है, इसीलिए साहित्य में मूल्यों की अभिव्यक्ति होती है। मानव समाज के विकास में जीवन मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और साहित्य मूल्यो के संरक्षण प्रदान करने का साधन है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह के अनुसार ''साहित्य में जीवन मूल्य ऊपर से आरोपित नहीं होते बल्कि वे साहित्यकार के अनुभूत सत्य होते हैं, जो

उसकी आत्मोपलब्धि की प्रक्रिया में रुपायित होकर अपनी सुन्दरता, उदारता और महत्ता के कारण समाज द्वारा जीवन मूल्यों के रुप में स्वीकृत किये जाते है। साहित्य मानवीय चेतना के विविध आयामों का प्रत्युत्तर है और वह मानव कृत्य है, जिसमें हमारी कल्पना द्वारा मनोदशाओ की सृष्टि होती है। साहित्य तत्कालीन सामाजिक मूल्यों को ग्रहण करता हुआ, नये जीवन मूल्यों की सृष्टि के जरिये समाज को गतिशीलता प्रदान करता रहता है। इसलिए सामाजिक परिवर्तन स्वरुप तथा मूल्यों का प्रतिफलन साहित्य में स्वाभविक रुप से उपलब्ध होता है, जो समाज सापेक्ष होते है। डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल के अनुसार ''साहित्य में व्यक्त वे सभी घटनां, जो मानव जीवन के विकास क्रम में योग लाने वाली है अथवा वे क्रियायें जो मानव की मूल प्रवृत्तियों का सम्यक पोषण एवं संर्वद्धन करती हैं, मानवतावाद के अन्तर्गत ली जाएंगी।

मानव मूल्य की दृष्टि से हिन्दी साहित्य समृद्ध और सम्पुष्ट है। भारतीय सामाजिक चेतना की गौरवपूर्ण परम्परा को मध्यकाल के सन्तों ने नूतन नीति और नैतिकता प्रदान की, जिसमें कबीर की भूमिका महत्वपूर्ण है। उनके युग में अपनी अपनी ढपली अपना अपना राग जैसी स्थिति प्रत्येक क्षेत्र में थी। सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था जातिगत अत्याचारर एवं ऊँच नीच की भावना पर आधारित थी। कबीर यह देखकर अत्यंत क्षुब्ध थे कि धर्म के नाम पर पूरा समाज पाखण्ड और बाह्माचार से ग्रस्त था।

''एक न भूला दोई न भूला, भूला सब संसार''

जाति–पाँति से उद्‌भूत भेदभाव साम्प्रदायिकता का विरोध करते हुए उन्हे एक ऐसे धर्म की तलाश थी जिसके द्वारा मानव मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो। कोई किसी से घृणा न करे, कोई किसी की हत्या न करे। उन्होने समाज को प्रेम का मन्त्र दिया। प्रेम के ढाई अक्षार पढ़ने वाले को ही कबीर ने पंडित माना, क्योंकि प्रेम के मंत्र से ही धर्म, समाज मे विद्यमान सभी द्वेष समाप्त होकर शान्त सामाजिक जीवन की स्थापना सम्भव हो सकती है। उनका दृढ विश्वास था कि सहज मार्ग अपनाने से सुख शान्ति की वृद्धि होकर सामाजिक सामजस्य बना रह सकता है। कबीर ने जिसे सहज धर्म कहा है, वस्तुनिष्ठ सहज मानवीयता का भाव ही है। वह कहते हैः–

''आपा पर सन चिन्हित तब दीसै सख समान।
इन्हीं पद नर हरि भेटि, तूँ छाहि कपट अभिमान।।''

अर्थात् अपने और पराये का भेद मिटाकर ही जीवन और समाज में समता स्थापित हो सकती है। उन्होंने मानवीय मूल्यों पर खरे उतरने वाली सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक शिक्षा प्रदान की और आडम्बरहीन समाज रचना का प्रयास किया। बाद्यायचारों, मंदिरो, मस्जिदों, हज–तीर्थ यात्रा आदि का स्पष्ट खंडन करते हुए उन्होंने मानव–मात्र को महत्त्व दिया। हिन्दु हों या मुस्लमान सभी के बाह्माचारो पर कबीर चौराहे पर खडे होकर कुठाराघात करने की सामर्थ्य रखते है। यह शक्ति उन्हें उनकी मानवतावादी दृष्टि से प्राप्त होती है। डॉ. पारसनाथ तिवारी

मानते है कि ''हिन्दी साहित्य में कबीर से बड़ा मानवतावादी कोई नहीं हुआ। उन्होनें तत्कालीन भारतीय समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों, रुढ़ियों तथा मिथ्या सिद्धान्तों द्वारा प्रचारित सामाजिक विषमताओ के मूलोच्छेद करने का बीड़ा उठाया और निर्भयता पूर्वक सभी पाखण्डो पर प्रहार किया। उन्होंने तत्कालीन सामन्तो तथा शासको को लक्ष्य कर ऐसी अनेक बातें कहीं है। जिनसे भौतिक ऐश्वर्यो पर आधारित उनके झूठे अभिमान का मूलोच्छेद होगा।'' कबीर ने विश्वबन्धुत्त्व और प्रेम की भावना पर बल दिया। सामाजिक जीवन की सुख समृद्धि के लिये सन्त कबीर ने आर्थिक पहलुओं की तरफ भी ध्यान दिया है। उन्होंने सादगी पर बल देते हुये संचय का विरोध किया है, क्योकि अधिक संचय मनुष्य को अहंकारी बनाता है।

''साई इतना दीजि, जामें कुटुम समाय,
मैं भी भूखा न रहूं साधु न भूखा जाय।''

कबीर के यहाँ भक्ति साधना मे सदाचार पालन पर विशेष बल दिया। उनके द्वारा प्रचलित साधना के लिए न भगवा वस्त्र चाहिए न कान फड़वाने की और न किसी अन्य आडंबर की आवश्यकता है। वह तो मुक्ति के लिए सत्य, अहिंसा, तप, ब्रह्मचर्य, अपरिगृह, स्वाध्याय, संतोष, दया, करुणा और परोपकार जैसे उदात्त मानवीय गुणों को ही महत्वपूर्ण मानते हैं। कबीर ने मानवतावादी भावों से अनुप्रोणित होकर कहा

दया दिल में राखिये, तू क्यों निरदयी होय।
साई के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय।।

कबीर के साथ जो दूसरा नाम प्रमुखता से लिया जाता है, वह है गुरु नानक देवका गुरु नानक और छठे गुरु, अर्जुनदेव तक के पदों को अर्जुनदेव ने 1604 में संकलित करके गुरु ग्रंथ साहब की रचना की। फिर बाद में इसमें दसवे गुरु गोविंद सिंह तक के पदों को जोड़ दिया गया। यूं तो यह पुस्तक सिख–सम्प्रदाय का धर्म ग्रंथ है पर वास्तव में इसमें उदारता, असंकीर्णता, असाम्प्रदायिकता, साहिष्णुता, सरलता और स्नेह का ही संदेश है। गुरु नानक देव के व्यक्तित्व की गहराई का संकेत इस घटना से लगाया जा सकता है कि नौ वर्ष की अवस्था में ही जब उनका यज्ञोपवीत संस्कार करने के लिए पुरोहित हरदयाल आए तो उन्होंने उनसे कहा

ददूआ कपास संतोखु, सूतू जतु गंडी सतु वट।
एह जनेऊजीअ का हई त पांडे धतु।।
नाह तुटै न मलु लगै न एह जले न जाई।।

अर्थात् दया कपास हो, संतोष सूत हो, संयम गांठ हो और उसमें सत्य की पूर्णत हो। जीव के लिए ऐसा ही जनेऊ होना चाहिए। हे पण्डित यदि इस प्रकार का जनेऊ तुम्हारें पास हो तो मेरे गले में पहना दो क्योंकि यह जनेऊ न तो टूटता है, न इसमें मैल लगता है, न यह जलता है और

न यह खोता ही है। वास्तव मे वे किसी जाति अथवा वर्ग विशेष के गुरु नहीं थे, बल्कि मानवमात्र के सद्‌गुरु थे। वह अपूर्व विश्वबंधु थे। जिन्होने लोगों को आशा, प्रेम, भक्ति और त्याग का संदेश दिया। इन संत कवियों के साथ राम चरित्र को आदर्श–रुप में प्रतिष्ठापित करने वालो मे तुलसीदास प्रमुख हैं। गोस्वामी तुलसीदास हिंदी साहित्य के अद्वितीय कवि है। उनके काव्य में जीवन के आदर्श पक्ष को प्रधानता दी गई है। इसमें आदर्श पुत्र, पिता, माता, पत्नी, सेवक, राजा, मित्र और यहां तक कि आदर्श शत्रु के चरित्र का चित्रण भी है। उन्होनें अपने काव्य मे आदर्श समाज, शासन और आचार–विचारो का चित्रण किया है। इस साहित्य की रचना का उद्देश्य मानव जीवन को मर्यादित और सुखमय बनाकर उसके उत्तरदायित्व के प्रति उसे प्रेरित करना था। इस साहित्य में भक्ति भावना के प्रसार के साथ–साथ आदर्श समाज के गठन की प्रवृत्ति विद्यमान है। ग्रियर्सन ने राम चरितमानस को भारतीय जनता की बाइबिल कहा एवं शुक्ल जी एवं हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन्हे हिन्दी साहित्य का सर्वश्रेष्ठ कवि माना क्योंकि उनकी समन्वयवादी दृष्टि केवल चिंतन तक ही सीमित न रहकर धार्मिक सामाजिक पारिवारिक, चारित्रिक क्षेत्रों तक अपना प्रभाव छोडती है।

राम चरित को लेकर आधुनिक काल में जो रचनाऐं हुई, उनमें भक्ति भावना के प्राधान्य के स्थान पर मानवतावादी दृष्टिकोण ही प्रमुख था। इसलि, इसमे राष्ट्रीयता समाज सुधार और जन कल्याण की भावना ही प्रधान है। इन रचनाओ में रामचरित को आधुनिक विचारो और भावनाओं के साँचे में ढालने का प्रयास किया गया। इन कवियों में मैथिलीशरण गुप्त तथा निराला जी का नाम प्रमुखता से लिया जाता है। इन कवियों की इस आधुनिक दृष्टि का आधार भी यद्यपि तुलसीदास का प्रभाव ही माना जा सकता है। डॉ. देवराज अपनी पुस्तक भारतीय संस्कृति में लिखते है ''राम के रुप में तुलसी ने एक ऐसे व्यक्तित्व की कल्पना की है जिसमें सहृदयता करुणा, मैत्री उदारता आदि विशेष नैतिक गुण पूरी मात्रा में विद्यमान है। विशुद्ध नैतिकता की दृष्टि से मानव जाति का कोई कवि राम से उच्चतर व्यतित्व की कल्पना कर सका है या कर सकेगा इसमें सन्देह है। इसका कारण सम्भवत यह है कि राम का व्यक्तित्व मूलत एक सन्त का व्यतित्व है, जिसमे स्वार्थ, घृणा हिंसा आदि की वृत्तियों के लिए कोई स्थान हो ही नही सकता। यही कारणा है कि तुलसी का 'मानस' अथवा उनके राम महात्मा गांधी जैसे नीति शिक्षाक नेताओ को प्रेरणा एवं बल दे सके।

कबीर और तुलसी के पश्चात रीतिकाल यद्यपि नैतिकता की दृष्टि से हमेशा दूसरे दर्जे पर ही आंका जाता है परंतु बिहारी और घनानंद ऐसे रचनाकार है जिनकी कविता में हमें क्रमश समाज की नैतिकता अथवा संस्कार और प्रेम संबंधी आदर्शो की छटा स्पष्ट दिखाई देती है। इनके अतिरिक्त भूषण जैसे कवि जब अपने नायको की वीरता का गान करते है उसके साथ साथ वह मातृ भूमि के प्रति कर्त्तव्यों की कसौटियां भी बनाते चलते है, जो पाठक के समक्ष नैतिक मूल्यों की कसौटी की तरह काम करती है। बिहारी जब कहते है–

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात,

भरैं भौंण में करत है नैनन हीं सों बात।

तब वह केवल नायक नायिका के संकेतात्मक प्रेम लीला का ही चित्रण नही करते बल्कि उस संस्कार की ओर इशारा करते है, जिसके प्रभावस्वरुप भारत के स्त्री पुरुष उस समय समाज के सामने मर्यादा का निर्वाह करते हुए ही प्रेम निभाया करते थे। इसी प्रकार जब वह लिखते है

नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहि विकास इहि काल

अलि कलि ही सो बंध्यों आगे कौन हवाल।

तो वह एक कवि की नैतिकता का निर्वाह करते हुए शासक को उसका कर्तव्य और धर्म याद कराते है। धनानंद का तो पूरा का पूरा सुजान चरित ही प्रेम धर्म की प्रतिष्ठा का गान है।

मध्ययुग के पश्चात् हिन्दी साहित्य में आमूल चूल परिवर्तन हुए। भारतेंदु हरिशचंद्र से हिंदी जगत में आधुनिक काल का पदार्पण माना जाता है, यह केवल कुछ लोगो की श्रद्धा के कारण नही है बल्कि इस काल मे जिस चेतना का प्रसार हुआ और अपनी परिस्थितियों के यथार्थ को समझकर साहित्य में जो विषय परिवर्तन हुआ (प्रत्येक स्तर पर) उसके परिणमस्वरुप ही हम यहाँ आधुनिकता की आहट सुन पाते है। यह वह युग था जब पश्चिम से ज्ञान और सभ्यता की नयी आलोक किरणे हमारे मन पर पड़ने लगी थी और साथ ही हमारे अतीत की उज्वला भी हमें आकर्षित कर रही थी। भारतेन्दु दूरदर्शी रचनाकार थे। उन्होनें जिस प्रकार गद्य की भाषा का रुप स्थिर करके गद्य साहित्य को देशकाल के अनुसार नये नये विषयों की ओर लगाया, उसी प्रकार कविता की धारा को भी नए क्षेत्रों की ओर मोड़ा। कविता मे देशोद्धार, देशप्रेम, जागृति और जीवन को व्यक्त करने वाले विचारों को प्रमुखता मिलने लगी। उस समय ऐसे धार्मिक आंदोलनों की आवश्यकता अनुभव की गयी, जो हिन्दु धर्म की रुढ़ियों, अंधविश्वाासों, कूपमंडूकता तथा अन्य त्रुटियों में संशोधन करके अपने पुरातन नैतिक आदर्शो की सार्थकता में आधुनिक परिवेश रच सके। अर्थात् धर्म के नाम पर फैले आडंबरो का विरोध और भारतीय संस्कृति के उज्जवल पक्ष की पुनः स्थापना का लक्ष्य लेकर तत्कालीन लेखक चला। डॉ. गणपत चंद्र गुप्त के अनुसार, ऐसे युग मे दो ऐसी महान आत्माओं का अवतरण हुआ, जिन्होंने सोती हुई भारतीय जनता के चारों ओर थमकर पहरा दिया। एक ने उसकी नैतिक व सामाजिक धरोहर की रक्षा की तो दूसरे ने उसके सांस्कृतिक एवं साहित्यिक गौरव को बचाया। एक ने उसे तर्क के ऐसे तीखे शस्त्र दिए जिनकी सहायता से वह अपने धर्म के विरोधियों से युद्ध कर सकी, तो दूसरे ने उसे वह शक्ति और उत्साह प्रदान किया जिसके बल पर वह आगे बढ़ सकी। एक ने आत्म गौरव को जागृत किया दूसरे ने उसका ध्यान अपनी हीन अवस्था की ओर आकर्षित किया। एक ने समाज को नया जीवन प्रदान किया तो दूसरे ने राष्ट्रीय भावों को आंदोलित किया। कहने की आवश्यकता नही इनमें एक स्वामी दयानन्द सरस्वती थे तो दूसरे भारत के इन्दू हरिश्चन्द्र।

स्वदेश गौरव और स्वदेश प्रेम की जो भावना प्रथम उत्थान मे जगाई गई थी उसका अधिक प्रसार द्वितीय उत्थान में हुआ। इस समय प्रत्येक साहित्यकार की व्यापक दृष्टि भारतीय सांस्कृतिक आदर्शो से अनुप्राणित होकर विश्व मंगल का संदेश लेकर आई। नैतिक निष्ठाओ से सम्पृक्त इन साहित्यकारो की संवेदना बर्गीय चिन्तन के स्तर पर न होकर उदात्त भावात्मक भूमिका पर अभिव्यक्त हुई है। सात्विक आचरण और नैतिक आदर्शो की प्रतिष्ठा के पीछे भी इन साहित्य की विश्वबन्धुत्व की भावना ही लक्षित होती है। एक तरफ यह साहित्यकार परतंत्रता की बेड़ियों को तोड़ने के उद्देश्य से जनता में देश प्रेम के भाव का विस्तार कर रहे थे तो वहीं दूसरी तरफ भारतीय सांस्कृतिक आदर्शो की प्रतिष्ठा का लक्ष्य भी लेकर चल रहे थे। भाारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य अहिंसा, समता, सहिष्णुता, सत्यनिष्ठा तथा प्राणी मात्र के प्रति सहानुभूति, स्नेह और करुणा की उदात भावनाओ को लेकर है। इन सभी आदर्शो की प्रतिष्ठा हिन्दी साहित्य मे दर्शनीय है।

''ओरों को हँसते देखो मनु
हँसो और सुखपाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो
सबको सुखी बनाओ।''

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस युगको चौमुखी उन्नति का समय माना है। उनका मानना है कि प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिभाशाली लेखकों का उदय हुआ है। इस युग का भारत महावीर प्रसाद द्विवेदी, अयोध्या सिंह उपाध्याय और मैथिलीशरण गुप्त का भारत वर्ष है।

साथ जोड़े पुराने गौरव के प्रति अत्यधिक श्रद्धावान और नवीन ज्ञान के प्रति भी आस्था से युक्ता इस युग के साहित्य का सबसे बड़ा गुण यह है कि अपने आपको पहचानने में पूर्णत प्रयत्नशील है। यह वह समय था जब भारत वर्ष ने अपनी आंखो से दुनिया को देखने का संकल्प लिया। इन लेखको मे युग धर्म को पहचानने की अपूर्व क्षमता थी।

केवल पद्य ही नहीं गद्य में भी भारतीय मानव मूल्यो की प्रतिष्ठा का कार्य तीव्र गति से हो रहा था। यद्यपि हिन्दी भाषा अथवा खड़ी बोली के रुझान को बढ़ाने के लिए इस समय तिलस्मी ऐयारी, जासूसी एवं रोमानी उपन्यासो की एक बड़ी फेहरित्त है। परन्तु हिन्दी का पहला उपन्यास परीक्षा गुरु भी है जो एक आदर्श मित्र की पहचान स्थापित करता है। इस समय बंगला के साथ–साथ अंग्रेजी उर्दू और मराठी के उपन्यासो का भी बडी संख्या में अनुवाद हुआ। शरतचन्द्र के उपन्यास हिन्दी जगत में बहुत लोकप्रिय हुए। इन मौलिक तथा अनुदित रचनाओं की मूल दृष्टि सुधारवादी ही थी। सामाजिक बुराईयों अथवा कुरीतियों के दुष्परिणामो से तत्कालीन भारतीय समाज को अवगत कराके लोगो को उच्च नैतिक जीवन के लिए प्रेरित करना इन रचनाकारो का लक्ष्य था। इसी दृष्टि का विस्तार हमे प्रेमचन्द में आगे चलकर दिखाई देता है।

उनके सेवासदन गबन, कर्मभूमि निर्मला तथा अनेक कहानियां इस बात का उदाहरण है। हिन्दी उपन्यास और कहानी के क्षेत्र में जो स्थान प्रेमचन्द का है, नाटक के क्षेत्र में लगभग वही स्थान जय शंकर प्रसाद को प्राप्त है। स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त तथा ध्रुवस्वाभिनी जैसे ऐतिहासिक विषयों पर आधारित नाटको की रचना के पीछे नाटककार का लक्ष्य भारत के नैतिक मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा ही था।

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

यह प्रसाद के गीत की पंक्तियां मात्र नहीं हैं बल्कि भारत की परंपरा का दर्शन है, जिसमें बेगानों को भी अपना बना लेने का भाव है, यही हमारी नैतिकता है। आकाशदीप की चंपा, देवरथ की सुभाता तथा पुरस्कार की मधुलिका जैसी नायिका इन्हीं आदर्शो की प्रतिछाया है।

पुनः कविता की ओर लौटै तो हम स्वयं को छायावाद में खड़ा पायेंगे। प्रसाद, निराला पंत, सियारामशरण गुप्त, महादेवी वर्मा जैसे कवियों ने इस काल मे अपनी कलम की नोक से मानवतावाद को पूर्णतः प्रतिष्ठित करने का प्रबल प्रयास किया। भजन पूजन के स्थान पर पीड़ित मानवता के प्रति सहानुभूमि का भाव प्रतिष्ठित हुआ। वसुधैव कुटम्बकम व विश्वबन्धुत्व की भावना से कवि एक नयी मानवता की रचना करना चाहता है।

सर्व मुक्ति हो मुक्ति तत्व अब,
सामूहिकता ही निजत्व अब
बने विश्व जीवन की स्वर लिपि
जन–जन मर्म कहानी।

निराला यद्यपि पौरुष और ओज के कवि हैं, किन्तु मानवता के जितने सबल स्वर उनकी रचनाओं मे मिलते है, अन्यत्र दुर्लभ है। डॉ. भागीरथ मिश्र के अनुसार, ''मानव–मूल्यों को प्रतिष्ठित करना ही उनका ध्येय था। मानवता की रक्षा और सत्य पालन के लिए उन्होंने बिना हिचक उन सभी लोगो को गले से लगाया, जो समाज की नजर में पतित, अधूत नगण्य थे। उन सभी लोगों से झगड़ पड़े, जो समाज की नजर में महान, पूज्य और आदरणी थे। वे स्वस्थ मूल्यों के लिए न्याय की स्थापना के लिए समतापूर्ण व्यवस्था के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। वे सत्य के शोध में सदा प्रवृत्त रहे। ''करना होगा तिमिर पार, देखना सत्य का मिहिर द्वार।''

राम की शक्ति पूजा अन्याय पर न्याय का विजय घोष है। उनका कोई भी पात्र भाग्य के समक्ष परास्त नहीं होता। वह संघर्ष करता है और सामाजिक विसंगति की चुनौती का डटकर सामना करता है। भिक्षुक विधवा आदि के साथ सरोज स्मृति जैसी रचनाएं मानवीय मूल्यों से संपन्न है। लोभ एवं स्वार्थी मनोवृत्ति को मानवता का शत्रु माना जाता है तभी तो निराला चेताते है:–

गहन है यह अंधकारा
स्वार्थ अवगुंठनों से
हुआ है लुंठन हमारा।

मानव कल्याण के भविष्य की चिन्ता नागार्जुन के यहाँ भी दिखाई पड़ती है। उनकी कविता में जहाँ एक ओर राजनीतिक धरातल है, वहीं दूसरी तरफ मनुष्य के शोषण से मुक्ति के लिए प्रेम और बन्धुत्व की भावना है।

विषमता के प्रति धृणा का अनोखा उपहार लो
विश्व मानव के लिये मनुहार लो।

कवि उनको प्रणाम करता है जिन्होने मौन साधना के रुप में निरंतर लोकहित के प्रयास में अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया और प्रतिउत्तर में कुछ नहीं चाहा

जिनकी सेवाँ, अतुलनीय
पर विज्ञापन से रहें दूर
प्रतिकूल परिस्थितियों ने जिनके
कर दि, मनोरथ चूर चूर
उनको प्रणाम

समय के साथ साथ मानव का नैतिक पतन अथवा हास तीव्र गति से होने लगा। सत्य, अहिंसा, प्रेम, करुणा केवल मुहावरे के रुप में प्रयोग होने लगे। स्वार्थ, भौतिकता की अतिशयता हिंसा जब जिससे काम निकला उसे सहज रुप से अपना लिया गया। राजनीति ने अपनी प्रकृति बदल ली और केवल सत्ता की प्राप्ति का लक्ष्य लेकर चलने वाले लोग इस क्षेत्र में स्थापित होने लगे। परिणामतः न तो शासक ही समाज हितैषी रहा और न ही समाज स्वार्थ हीन। जिसका सिक्का जहाँ चला उसने खूब चलाया और जो इस षडयन्त्र में शामिल नहीं हुए वह सभी शोषण के शिकार हए। इन्ही शोषको को अज्ञेय संबोधित करते हैं।

साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूंछूं (उत्तर दोगे)
तब कैसे सीखा डँसना
विष कहाँ पाया?

''वसुधैव कुटुम्बकम'' की प्राचीन भावना समकालीन साहित्य में भी लक्षित होती है। देश और काल की सीमा के परे विश्व की एकता और मानवतावादी चेतना हिन्दी साहित्य की धरोहर है। शमशेर बहादुर अन्तर्राष्ट्रीय धरातल पर जिस भंगिनी मे दिखाई देते हैं ध्यातव्य है:—

ये पूरब पश्चिम मेरी आत्मा के ताने बाने हैं,
मैंने ,शिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द
लपेट लिया। योरोप और अमरीका की गर्म आंच की धूप छांह पर।
सब संस्कृतियां मेरे सरगम में विभोर हैं
क्योंकि मैं हृदय की सुख शान्ति का राग हूँ
बहुत आदम, बहुत अभिनव।

आधुनिक कवियों ने जातिवाद की मानसिकता की स्पष्ट आलोचना अपनी रचनाओं में की है एवं ''वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे'' के आदर्श को लेकर आए हैं। धूमिल की कविता का मोचीराम यह कहते हए भयभीत नहीं होता कि

बाबू जी सच कहूँ मेरी निगाह में
न कोई छोटा है
न कोई बड़ा है
मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है
जो मेरे सामने मरम्मत के लिए खड़ा है।

वर्तमान समय मे जिस गति से हमारे जीवन मे यान्त्रिकता का विकास हुआ, उसी गति से नैतिक गुणों का ह्रास भी हुआ। परंतु संवेदनशील रचनाकारों ने अपने अपने महत्त प्रयासों से इस ह्रास के भयंकर परिणामो से समाज को हर बार चेताने का प्रयास किया। प्रत्येक राष्ट्र और समाज के लिये मानवीय आदर्श की अपेक्षा हमेशा बनी रहती है। भारतीय संस्कृति में समन्वय सामंजस्य और सहिष्णुता की अद्‌भूत शक्ति है और यही शक्ति साहित्य की भी प्राण शक्ति है। समकालीन साहित्य यद्यपि यथार्थ के अधिक निकट है, परंतु उसका लक्ष्य आदर्श की स्थापना का प्रयास है। कविता के इतर गद्य रचना, भी इस ओर पर्याप्त संघर्ष करती है। दरअसल ऊपरी तौर पर हम आज जितने ही निराश क्यों न हो पर यह भी सत्य है कि हमारे पास नैतिकता की, मानवीय मूल्यों की एक समद्ध परंपरा विद्यमान है। क्षणिक रुप से हो सकता है कि हमें निराशा के बादल घेर लें, और ऐसा प्रतीत होने लगे कि जो आदर्श था वह भूत था और जो वर्तमान है वह केवल और केवल अंधकार पक्ष है। परंतु जब जब हम अपने साहित्य की गलियों मे धूमने निकलेंगे हमे हर मोंड़ पर आशा रश्मियो से युक्त एक नया सूर्य उदित होता दिखाई देगा, जो हमारा मार्ग प्रशस्त तो करेगा और साथ ही हमारे मानवीय मूल्यो को जीवनदान भी प्रदान करेगा। इतिहास

साक्षी है ऐसा कितनी ही बार घट चुका है। तभी तो कहा गया है।

यूनान मिस्र रोम, सब मिट गए जहाँ से
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।

हस्ती नहीं मिटती न मिटेगी क्योंकि हम समय समय पर रुककर ठहरकर विचार करते है, प्रश्न करते है?

''हम कौन थे? क्या हो गए? और क्या होंगे अभी?

न केवल प्रश्न करते है बल्कि पड़ताल भी करते हैं कि कहाँ चूक हुई। यह शक्ति हमें साहित्य से ही प्राप्त होती है। इसलिए हम जो हैं जैसे हैं उसमें हमारा साहित्य ही उत्तरदायी है। अंततः कहा जा सकता है कि आज के घोर यांत्रिक समय में मानवीय मूल्यों की रक्षा का दायित्व साहित्य बखूबी निभा रहा है।

संदर्भ

1. *मानववाद और साहित, नवल किशोर।*
2. *आधुनिक हिन्दी काव्य और नैतिक चेतना, डॉ0 राज बाघक।*
3. *आधुनिकता और राष्ट्रीयता डॉ0 राजमल बोर।*
4. *साहित्य और संस्कृति, डॉ0 देवराज।*
5. *हिन्दी साहितयकारों के सामाजिक सरोकार, डॉ0 सुमन सिंह*
6. *हिंदी साहित्य के अस्सी वष, शिवदान सिंह चौहान*
7. *भरतीय संस्कृति, डॉ0 देवराज*
8. *हिंदी साहित्य का वृद्धत इतिहास, डॉ0 नगेंद्र*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

अध्यापक शिक्षा में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता

डॉ. अनीता चौहान
जे.सी.एम. एस. टी., बरेली

भारत की सांस्कृतिक परम्परा बहुत श्रेष्ठ है। भारत की सांस्कृतिक एवं मूल्यपरक परम्परा उसके धर्म व दर्शन में निहित है। मूल्य और आदर्शहमारे व्यवहार को निर्देशित तथा नियन्त्रित करते है। मूल्य एक सामान्य और अमूर्त गुण है जो किसी चीज में निहि त होता है और उसके महत्व और गुरुत्व की ओर संकेत करता है। प्रारम्भ से ही शिक्षा के लक्ष्य निर्धारण हेतु शैक्षिक मूल्यों का उद्भव हुआ है। छात्रों में सामाजिक व नैतिक मूल्यों का विकास करना शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों में एक है।भारत को अपनी शिक्षा, संस्कृति, नैतिकता, दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर हमेशा अभिमान रहा है। सामाजिक परिवर्तन के दौर में प्राचीन मूल्य धूमिल हो रहे है। भारतीय संस्कृति के मूल्यों में चरित्र, त्याग तथा ईमानदारी को विशेष महत्व दिया गया है।

कार्टर वी. गुड के अनुसार—शिक्षा उन सभी क्रियाओं की समष्टि है जिससे व्यक्ति अपनी योग्यताओं, अभिवृत्तियों तथा समाज के सकारात्मक मूल्यों के व्यवहार प्रतिमान विकसित करता है।

समाज के प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व सत्य अहिंसा आदि शाश्वत मूल्यों का पालन करना है। समाज में सामंजस्य की स्थिति बनाए रखने के उद्देश्य से मूल्यों का विकास होता है लेकिन वर्तमान में उन्हीं मूल्यों का संरक्षण होता है जो सम्पूर्ण समाज के आधार स्तम्भ हैं। आज समाज में समानता, अस्पृश्यता निवारण, धर्म निरपेक्षता आदि सर्व मान्य मूल्य हैं। भौतिक युग में मनुष्य स्वार्थी हो गया है परिणामतः मूल्यों का ह्रास हो रहा है। मूल्यों को संरक्षित रखने के लिए शिक्षा नीति में सुधार अपेक्षित है। मूल्यों के संरक्षण में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। शिक्षक भावी राष्ट्र के निर्माता हैं।

मूल्यों में समयानुसार परिवर्तन हो रहे हैं। जो मूल्य सत युग में थे वे त्रेता युग में नहीं रहे जो त्रेता युग में थे वे द्वापर में नहीं रहे ओर जो द्वापर में थे वे कलियुग में पूर्णतः समाप्त हो गए। मानव जाति का स्वर्णिम युग समाप्त हो गया। सामाजिक व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गई। सामाजिक संस्थाएं विघटित होने लगीं।मूल्य परिवर्तनशील समाज की वह धुरी हैं जिस पर समाज का अस्तित्व निर्भर है। मूल्यों के विकास में व्यक्ति, समाज और शिक्षा आदि का योगदान होता है।छात्र वह बीज है जो अपने अन्दर समस्त मूल्यों के विकास को समेटे हुए है, शिक्षा वह परिवेश है जो इस बीज को खाद पानी देकर विकसित होने का अवसर प्रदान करती है।

आज अध्यापक शिक्षा को मूल्य परक बनाने की बहुत आवश्यकता है। शिक्षा का स्तर दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा है।अध्यापक शिक्षा, भावी शिक्षकों में शैक्षिक व मानवीय मूल्य विकसित करने में असमर्थ है। भावी शिक्षकों को प्रशिक्षण की अवधि में भारतीय संस्कृति तथा मूल्यों से परिचित कराना आवश्यक है ।सुयोग्य शिक्षक तैयार करने का दायित्व प्रशिक्षकों एवं प्रशिक्षण संस्थानों का है। प्रशिक्षणार्थियों में मानवीय एवं शैक्षिक मूल्यों का विकास प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए।

मानव शात्री मूल्यों को संस्कृति के संदर्भ में देखते हैं। कोई भी संस्कृति अपने मूल्यों से ही पहचानी जाती है। हिन्दू समाज की संस्कृति में चार पुरुषार्थ धर्म अर्थ काम मोक्ष तथा पंच महाब्रतों सत्य अहिंसा अस्तेय अपरिग्रह ब्रह्मचर्य के आधर पर समाज के व्यक्तियों का व्यवहार निर्देशित होता है। मूल्य के प्रमुख तत्व निम्नलिखित हैं–

- मूल्य अमूर्त सम्प्रत्यय है,ये मनुष्य के अन्तर्मन से सम्बन्धित होते हैं।
- मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त आदर्श व सिद्धान्त हैं।
- व्यक्ति में मूल्यों का विकास सामाजिक आर्थिक सांस्कृतिक धार्मिक व राजनैतिक क्रियाओं में भाग लेने से होता है।
- मूल्यों के पालन से व्यक्ति को आत्मसंतोष प्राप्त होता है।
- मूल्य उचित अनुचित का निर्णय कराने में सहायक होते हैं।
- समाज की पहचान उसके मूल्यों से होती है।
- व्यक्ति समाज तथा राष्ट्र सभी पर मूल्य संरक्षण का दायित्व होता है।

भारतीय दार्शनिकों के अनुसार मूल्यों के दो प्रकार होते हैं–आध्यात्मिक मूल्य व भौतिक मूल्य

आध्यात्मिक मूल्यों का सम्बन्ध आध्यात्मिक चिन्तन से है ,भौतिक मूल्यों का सम्बन्ध ऐहिक जीवन से है। अध्यापक शिक्षा में मूल्य शिक्षा की आवश्यकता निम्न कारणों से आवश्यक है–

- भावी शिक्षकों के आचरण को सही दिशा प्रदान करने के लिए मूल्य शिक्षा की आवश्यकता है।
- मूल्यों में निरन्तर ह्रास होने से शिक्षकों में व्यावसायिक नैतिकता कम होती जा रही है ।मूल्य शिक्षा द्वारा मूल्यों को पुर्नस्थापित किया जा सकता है।
- मूल्य शिक्षा के तीन रुप हैं–संज्ञानात्मक ,भावात्मक और क्रियात्मक ।आज हमें मूल्शें का ज्ञान तो है किन्तु भावात्मक तथा क्रियात्मक रुप से मूल्यों का पालन नहीं होता है।

- मूल्यों के अभाव में भाषा अर्थ हीन हो गयी है,व्यवहार अनिश्चित हो गाया है। समाज में भ्रष्टाचार व अराजकता व्याप्त है। समाज बर्बर युग की ओर अग्रसर है। मानव सभ्यता और संस्कृति को सुरक्षित रखने के लिए मूल्य शिक्षा को पाठ्यक्रम स्थान देना आवश्यक है।
- भारत के साथ–साथ विश्व के अन्य देशों ने भी शिक्षा आयोग और शिक्षा समितियों के द्वारा मूल्य शिक्षा पर बल दिया है।स्वतन्त्रता के पश्चात् कोठारी आयोग 1964–66 तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस बात पा चिन्ता व्यक्त की गयी कि विद्यालयी शिक्षा छात्रों में उचित मूल्यों के विकास में असमर्थ है।

मूल्य शिक्षा से सम्बन्धित प्रश्न यह उठता कि किन मूल्यों की शिक्षा दी जाए? भारतीय मूल्यों को पुर्नस्थापित करने के लिए शिक्षा के भारतीयकरण की अनुशंसा कोठारी आयोग में की गयी। भारत सांस्कृतिक विविधताओं वाला देश है।पृथक पृथक संस्कृति के विभिन्न मूल्य एवं आदर्श हैं। इनमें से किसे महत्व दिया जाए यह निश्चित करना कठिन कार्य है। महात्मा गॉधी द्वारा प्रतिपादित–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अभय, अस्पृश्यता निवारण, श्रम, सर्व धर्म समभाव, विनम्रता की ही मूल्यों के रुप में शिक्षा देनी चाहिए इसी के साथ–साथ स्वतन्त्रता, समानता, भ्रातृत्व, समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, न्याय को जोड़ दें तो समस्त भारतीय मूल्यों का प्रतिनिधित्व हो जाएगा। इन मूल्यों में सभी मानवीय मूल्य समाहित हैं।

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

शिक्षा एवं मानवीय मूल्य

मो. शमीम
प्रवक्ता (हिन्दी विभाग)
अ.इ. डिग्री कालेज, लालबाग, लखनऊ।

भौतिक सम्पन्नता प्राप्त करना शिक्षा का उद्देश्य नहीं होता है। शिक्षा के द्वारा हमें एक अच्छा इन्सान और बेहतर नागरिक बनाना चाहिए इसके लिए हमें अपनी परम्पराओं, आदर्शों आदि से जीवन मूल्यों से जोड़ना आवश्यक हो जाता है। मूल्य हमारे जीवन में सही दिशा दिने में सहायता करते हैं और सही मूल्यों से ही व्यक्ति की पहचान बनती है। मूल्य हमारे जीवन में सही और गलत का अहसास कराते हैं जिसके बिना निर्णय लेना बेहद कठिन है। व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं समाज के निर्माण में परम्पराओं विश्वासों मूल्यों और आदर्शों का महत्वपूर्ण स्थान मात्र है।

शिक्षा व्यक्ति की मानसिकता व बौद्धिकता का महत्वपूर्ण साधन होती है। शिक्षा के माध यम से व्यक्ति को कुसंस्कारों व मानसिक गुलामी से बचाया जा सकता है। इसके द्वारा विद्यार्थियों में आत्म विश्वास, नई चेतना और जोश पैदा करके उनके अंधविश्वास व सामाजिक विकृतियों के विरूद्ध खड़ा किया जा सकता है। आज की नई पीढ़ी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में नई–नई उपलब्धियाँ प्राप्त कर रही हैं। जिसके अर्न्तगत अंतरिक्ष में मनुष्य को भेजने की तैयारियाँ चल रही हैं। आज मनुष्य ने जीवन व समाज में असीमित संभावनाओं के द्वार खोल दिए हैं। इसके विपरीत आज हम शिक्षा में ऐसी कुछ कमियों का अनुभव करते हैं कि जिसका निदान अति आवश्यक है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि वर्तमान शिक्षा में जिन कमियों को देखा व समझा जा सकता है वे कुछ और नहीं वरन् हमारे जीवन मूल्यों की कमी है। आज शिक्षा मानवीय मूल्यों परम्पराओं व आदर्शों की उपेक्षा करके एकांगी व संवेदनहीन होती जा रही है। उपरोक्त स्थितियाँ पूरे परिवेश में देखी जा सकती हैं मानवीय मूल्यों व आदर्शों के अभाव में दिशाहीन विद्यार्थी हिंसक क्रूर व अमानवीय वृत्तियों की ओर अग्रसर हो रहे हैं अपने महापुरूषों के संदेशों और आदर्शों से अंजान नई पीढ़ी बेलगाम होती जा रही हैं। आधुनिकता की चकाचौंध व प्रदर्शन ने उन्हें घोर अवसरवादी व अनैतिक बना दिया है। इन समस्त बुराइयों की और व्यक्ति तभी बढ़ता है जब उसे सही मार्ग, उचित शिक्षा और स्वास्थ्य वातावरण नहीं मिल पाता है।

ऐसे में विद्यार्थियों को नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों से परिचित करवाना आवश्यक हो जाता है। शिक्षा यदि विद्यार्थियों में प्रेम, दया, विश्वास, करूणा व त्याग की भावनाएं नहीं पैदा

करती हैं तो ऐसी शिक्षा भविष्य में निरर्थक व अनुपयोगी सिद्ध होती हैं। शिक्षा के माध्यम से हम एक अच्छे नागरिक का निर्माण करते हैं। एक सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति को अपने समाज के आदर्शों, परम्पराओं तथा मानवीय मूल्यों से जुड़ना आवश्यक हो जाता है।

वर्तमान समय में शिक्षण संस्थाओं, लिंग व जाति–भेदभाव की समस्या अक्सर देखी जा सकती है पूंजीवादी व्यवस्था के प्रभाव के कारण समाज में ग़ैर बराबरी की घटनाएं अधिकांश रूप में देखी जा रही हैं सम्पन्न व अमीर वर्ग के विद्यार्थी अच्छे शिक्षण संस्थाओं से शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं इन भेदभाव की स्थितियों के कारण वंचित वर्ग के विद्यार्थियों में अलगाव संत्रास व आक्रोश की भावनाएं पनपती हैं जो स्वस्थ समाज के निर्माण में बाधक होती हैं व्यवस्था को इस प्रकार होना चाहिए कि शोषित व उत्पीड़ित को समान अवसर मिले जिससे गरीब एवं पिछड़े विद्यार्थी शिक्षित से होकर समाज / देश की मुख्यधारा में शामिल हो सके।

इसके लिए आवश्यक है हम मानवीय मूल्यों का पालन करें! ये मूल्य हैं–इमानदारी, प्रतिबद्धता, शिष्ठाचार, धैर्य, सहयोग, एकता, सम्मान और प्रेम। यह समस्त मूल्य व्यक्ति के मजबूत चरित्र का निर्माण करते हैं। अच्छे मूल्य वाले व्यक्ति को विनम्र व भरोसेमंद बनाते हैं, चाहे व नौकरी हो व व्यक्तिगत सम्बन्ध। अच्छे मूल्य वाले व्यक्ति पर सभी लोगों की नज़र होती है। जे0जे0 काने (J.J. Kane) के अनुसार–

''मूल्य वे आदर्श, विश्वास तथा मानक होते हैं जिन्हें समाज या समाज का अधिसंख्य भाग ग्रहण किये होता हे।" - J.J. Kane.

यह कहना गलत नहीं होगा कि मूल्य मनुष्य को मनुष्य बनाते हैं। मूल्यों के बिना एक आदमी किसी जंगली जानवर से कम नहीं होगा जो इस कारण भटक रहा है कि किस रास्ते पर चलना है और कैसे अपने जीवन को सम्भालना है। आवश्यकता की दृष्टि से मानव एवं पशु दोनों एक समान हैं। ये आवश्यकताएं हैं–आहार, निद्रा, भय, मैथुन आदि। मानव की ये आवश्यकताएं जीवन में अर्थ और काम के द्वारा निर्धारित होती हैं जिन्हें निचली श्रेणी में रखा जाता है। इसके विपरीत मानव का दूसरा पक्ष जो उसे श्रेष्ट प्राणियों में खड़ा करता है ज्ञान और विवेक हैं।

हमें मानवीय मूल्यों का अनुकरण करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जो हमारे जीवन को सही दिशा में ले जाने में अत्यधिक सहायता करते हैं। अच्छे मूल्य एक मजबूत चरित्र का निर्माण करने के साथ–साथ हमारे व्यवहार को सुन्दर बनाते हैं। इस प्रकार हमारे मूल्य हमें समाज में अपने लिए न केवल सही निर्णय लेने में सहायता करते है वरन् अच्छे कार्य को करने के लिए भी प्रेरित करते हैं। इसके फलस्वरूप हम एक अच्छे मानव के रूप में उभरते हैं।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह अलगाव में नहीं रह सकता एक स्वस्थ वातावरण एक व्यक्ति के उचित विकास के लिए आवश्यक है और अच्छे मूल्यों के साथ एक व्यक्ति एक स्वस्थ वातावरण बनाने में भी मदद करता है। हमें इससे यह ज्ञात होता है कि अच्छे मूल्य

मानवता के लिए अतिआवश्यक है मनुष्य इसे भली–भांति कर सकता है और अपने को अच्छे ढंग से विकसित कर सकता है। इस प्रकार कोई भी व्यक्ति व समाज और वातावरण में अच्छा योगदान दे सकेगा। अच्छे मूल्यों का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

अच्छे संस्कारों वाला व्यक्ति सकारात्मक सोच का निर्वाह करता है और प्रेम व स्नेह फैलाता है व दूसरे की जरूरतों के बारे में विचार और सहायता भी करता है ऐसा व्यक्ति अपने जीवन में अच्छा करने के अलावा जब भी अवसर प्राप्त करता है दूसरों के उत्थान और सहायता करने के लिए खड़ा देखा जाता है। ऐसा व्यक्ति खुद पर विश्वास करता है और साथ ही टीम वर्क के महत्व को भी समझता है।

इस प्रकार मूल्यों का अत्यधिक महत्व होता है अच्छे मूल्यों को अपने जीवन में उतारने वाले व्यक्तित्व बड़ी संख्या में निश्चित रूप से प्रगति करते हैं इसके विपरीत जिन लोगों के मूल्यों की समझने व पकड़ने में कमी होती है वे जीवन में स्वस्थ एवं सुखी होकर अपने उद्देश्यों तक नहीं पहुँच पाते हैं।

संदर्भ

1. *पाठ्क्रम विकास एवं आकलन – पूनम मदान, पी.सी. यादव, पंकज कुमार यादव*
2. *भारतीय शिक्षा के मूल सिद्धान्त – डा0 आर.वी.गुप्त*
3. *हिन्दी नवनीत – आर.एस.त्रिपाठी, सी.एस.शास्त्री*

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य; ISBN: 978-93-93248-09-1

आध्यात्मिक शिक्षा में मानवीय मुल्य

अली असग़र खाँ
बी0एड0–द्वितीय वर्ष

आध्यात्मिक शिक्षा और मानवीय मुल्यों में घनिष्ट सम्बन्ध है। इस घनिष्टता को समझने से पूर्व शिक्षा और मूल्यों के अर्थ का बोध होना आवश्यक है। शिक्षा के सामान्य अर्थ से सभी परिचित हैं, संक्षेप में शिक्षा जीवन पर्यन्त चलने वाली वह प्रक्रिया है जिसमें किसी व्यक्ति का सर्वागीण विकास होता है। जबकि मूल्य किसी व्यक्ति के वह आदर्श, आचरण एंव मान्यताएं होती हैं जो उसको बेहतर जीवन व्यती करने के लिये मार्गदर्शित एंव प्रेरित करती हैं। हम सब यह जानते हैं कि शिक्षा एक व्यापक शब्द है जिसमें मनुष्य एंव उसके जीवन के सभी आयामों के विकास को समाहित किया जाता है इसके अर्न्तगत शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एंव आध्यात्मिक पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य और उसके जीवन का क्या औचित्य (मक़सद) है ? और क्यों इसके विकास पर बल दिया जा रहा है ? यह प्रश्न इसलिये भी आवश्यक है क्योंकि मनुष्य या उसके जीवन का लक्ष्य (अन्तिम) ही मूल्यों को जन्म देता है। दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों एंव वैज्ञानिकों ने यहां तक तो स्पष्ट कर दिया है कि कोई मनुष्य ना तो इस धरती पर अपनी सहमति से आता है और ना ही अपनी सहमति से जाता है। इस सम्बन्ध में शेख मोहम्मद इब्राहिम जौक़ शायर ने कहा हैः–

''लायी हयात आये क़ज़ा ले चली, चले
अपनी खुशी ना आये न अपनी खुशी चले''

यहां यह कहा जा सकता है कि कोई ऐसी शक्ति या उर्जा हमें इस संसार में किसी विशेष कारण से निश्चित अवधि के लिए भेजती है और अवधि समाप्त होने पर हमें वापस बुला लेती है। इस शक्ति या उर्जा को अलग अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है। हिन्दु धर्म में इसे भगवान व ईश्वर, इस्लाम धर्म में इसे अल्लाह या खुदा, सिख धर्म में इसे वाहे गुरू एंव ईसाई धर्म में गॉड कहा जाता है।

इस्लाम धर्म में अल्लाहताला ने कुरान के माध्यम से मनुष्य के इस संसार पर आने के कारण की व्याख्या करते हुए कहा है कि

''अफा हसीबतुम अन्नमा खलक़नाकुम अबसवं वो अन्नाकुम इलेना ला तुरजाउन''

अर्थात हमने तुम्हें यूंही बिना मक़सद (कारण) के पैदा नहीं किया है और क्या फिर तुमको हमारे पास वापस लौटकर आना नहीं है? और मनुष्य के जन्म से ईश्वर का औचित्य इस संदर्भ में अल्लाह ने इरशाद फरमाया है।

''वोमा खलक़तुम जिन्ना वल इन्सा ले या बोदून''

मैंने (ईश्वर) ने इंसान और जिन्नात को सिर्फ अपनी इबादत के लिये और परस्तिश के लिये पैदा किया है अर्थात मनुष्य जीवन का मकसद उसकी पूजा करना है एंव उसकी प्रशंसा , पूजा और मोहब्बत करना, उसकी खुशी एंव रज़ा पर चलना तथा हर संभव उसकी इज़्ज़तो अहतेराम करना है। और जाहिर है किसी अनदेखी वस्तु या हस्ती की इज़्ज़त वो अहतेराम नहीं किया जा सकता है और न हीं इससे प्यारो मोहब्बत की जा सकती है। इसके लिये किसी ऐसी हस्ती का होना जरूरी है जो देखी भाली हो और इसी कारण से हज़रत रसूले अकरम ने इरशाद फरमाया है कि –''ऐ लोगों तुम खुदा से मोहब्बत का दावा करते हो, उसको तुमने देखा नहीं है तो खुदा की मोहब्बत मुझसे करो और जो मोहब्बत मुझसे करते हो वो मेरी आल (और व्यक्तियों) से करो।''

जब मनुष्य किसी के मोहब्बत में अन्तिम स्थिती तक पंहुच जाता है तो उसे हर चीज़ में अपना मेहबूब नज़र आता है जिससे स्पष्ट होता है कि जब कोई व्यक्ति किसी दुसरे व्यक्ति में अपना महबूब (इश्क) देखता है तो वह वही आचार व्यवहार और क्रिया करता है जो उसको (ईश्वर) को पसंद होती है अर्थात वे ऐसे मूल्यों को अपनाता है जो मोहब्बत, प्रेम, शान्ति और सच्चाई पर आधारित होते हैं क्योंकि अब उसके सम्मुख उसका अन्तिम लक्ष्य निर्धारित होता है और वह उसको प्राप्त करने के लिये सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् मुल्यों का स्वतः ही अनुसरण करता है और वह व्यक्ति जो इन मूल्यों, अन्तिम लक्ष्यों को बताता है वही वास्तविक शिक्षक, गुरू या महात्मा होता है।

इसी कारण धर्मशास्त्रों व पुराणों के निचोड़ में यही पारिभाषित होता है कि व्यक्ति के अंतर्मन में व्याप्त अंधकार (अज्ञान) और विकारों को दूर कर प्रकाश का मार्ग प्रशस्त कर परमशांति का ज्ञान प्रदान करने वाला ही वास्तविक गुरू है। इसीलिये शास्त्रों में गुरू को ब्रह्मा, विष्णू और महेश के समकक्ष स्थापित करते हुए 'गुरूर्ब्रह्म', 'गुरूर्विष्णु', गुरूर्देव महेश्वर कहा गया है।

संदर्भ सूची

1. *कुरान मजीद*
2. *हिन्दी दैनिक जागरण, (https://www.jagran.com/uttarakhand/dehradun-city-9638257.html).*

मानवीय मूल्यों की शिक्षा

डॉ. रेखा राणा[1], डॉ. गिरीश कुमार वत्स[2],
[1]एसो. प्रोफेसर
शिक्षा विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ
[2]प्राचार्य
ऐ. टी. एम. एस. कॉलेज ऑफ एजुकेशन, अछेजा, हापुड़।

मानव मूल्य एक ऐसी आचार–संहिता या सद्‌गुणों का समूह है जिसे मानव अपने संस्कारों तथा पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर अपने निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवन–शैली का निर्माण करता है तथा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। मानव के मूल्यों में मनुष्य की अवधारणा, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था या निष्ठा आदि मानवीय गुणों का समावेश होता है। ये मानव मूल्य एक ओर व्यक्ति के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते हैं तो दूसरी ओर इनके द्वारा उसकी संस्कृति एवं परम्परा क्रमशः निस्तृत एवं परिपोषित होती हैं । वसुधैव कुटुम्बकम सर्व भवन्तु सुखिन एवं बहुजनहिताय' मानवीय मूल्यों की कसौटी मानी जाती है। मानवीय मूल्य व्यापक अवधारणा है। इसमें सामान्य रूप से उन सभी मूल्यों को समाहित किया जाना चाहिये जो कि मानव के सर्वांगीण विकास से सम्बन्धित हैं। मानव मूल्यों में व्यक्ति कल्याण को सर्वोपरि माना है तथा यह भी स्पष्ट किया गया है कि मानवीय मूल्यों में सम्पूर्ण मानव जाति का कल्याण निहित होता है। अर्थात् मानवीय मूल्य व्यापकता एवं सार्वजनिक हित की ओर अग्रसर होते हैं। इसमें प्रत्येक व्यक्ति में यह भावना निहित होती है कि वह सार्वजनिक हित एवं मानव उत्थान के लिये स्वयं को बलिदान करते हैं।

मानवीय मूल्यों का अर्थ

Value शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Vallere' शब्द से मानी जाती है, जो किसी वस्तु की कीमत, विशेषता, गुण या उपयोगिता को व्यक्त करता है । मूल्य एक ऐसी आचरण–संहिता या सद्‌गुणों का समावेश है, जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली तथा विश्वसनीय बनकर उभरता है। मानवीय मूल्यों में मानव की धारणाएँ, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि अन्तःनिहित होते हैं। भारतीय धर्म–ग्रन्थों में मूल्यों के लिये 'शील' शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त किया गया है। यह शब्द मूल्य का पर्याय नहीं वरन् । 'समीचीन' शब्द है । 'शील' सर्वत्र भूषण का कार्य करता है। कहीं–कहीं 'शील' शब्द चरित्र के लिये प्रयुक्त हुआ है। ओमप्रकाश पाराशर के मत से "मानवीय मूल्य एक प्रकार की मानव की अन्तःनियन्त्रित व्यवस्थित आत्मिक ऊर्जा है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया या किसी विचार को अपनाने के पूर्व यह विवेकपूर्ण निर्णय करता है कि वह उसे अपनाये या त्याग दे। जब ऐसा विचार व्यक्ति के मन में 'निर्णायक' ढंग से आता है तो वह उसका मूल्य कहलाता है।"

शिक्षा का अर्थ

शिक्षा शब्द संस्कृत के शिक्ष धातु से बना है, जिसका अर्थ 'सीखना' अथवा 'सिखाना' होता है। शिक्षा का अर्थ आन्तरिक शक्तियों अथवा गुणों का विकास करना है। प्राचीन भारत में शिक्षा को विद्या के नाम से जाना जाता था। विद्या शब्द की व्यत्पत्ति 'विद्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'जानना'। इस तरह विद्या शब्द का अर्थ ज्ञान से है। हमारे प्राचीन ग्रंथों मे ज्ञान को मानव का तृतीय नेत्र कहा गया है जो अज्ञान दूर कर सत्य के दर्शन कराने में मददगार होता है। विद्या हमें विनम्र बनना सिखाती है 'विद्या ददाति विनयम्'। विद्या हमें जीवन से मुक्त कराती है। 'सा विद्या या विमुक्तये'।

शिक्षा का अंग्रजी पर्यायवाची शब्द 'Education' है। 'Education' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Educatum' शब्द से मानी जाती है। 'Educatum' शब्द दो शब्दों–– 'e' तथा 'duco' से मिलकर बना है। 'e' का अर्थ–– 'out of' और 'duco' का अर्थ है–– 'to lead forth' or 'to extract out'। अतः इस प्रकार से Education का शाब्दिक अर्थ है–– आन्तरिक को बाहर लाना। शिक्षा का तात्पर्य जीवन में चलने वाली ऐसी प्रक्रिया–प्रयोग से है जो मनुष्य को अनुभव द्वारा प्राप्त होते है एवं उसके पथ–प्रदर्शक बनते है। यह प्रक्रिया सीखने के रूप मे बचपन से चलती है एवं जीवनपर्यन्त चलती रहती है। जिसके कारण मनुष्य के अनुभव भण्डार में लगातार वृद्धि होती रहती है।

मानवीय मूल्यों की शिक्षा की अवधारणा एवं अर्थ

मानवीय मूल्यों की शिक्षा की अवधारणा अपेक्षाकृत आधुनिक एवं व्यापक है। परम्परागत रूप में प्रचलित धार्मिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा आदि से यह भिन्न भी है। यह 'अमुक कार्य करें' (Do) तथा 'अमुक कार्य मत करो' (Don't) की व्याख्या नहीं है। यह वह आस्था या विश्वास है कि कुछ कार्य निश्चित रूप से निरपेक्षतः अच्छे हैं और कुछ कार्य पूर्णतः या निरपेक्षतः बुरे हैं। इसमें कार्यों के पीछे निहित सदगुणों पर बल दिया जाता है। यह औचित्य के लिये शिक्षा' (Education for importance) है। सामान्यतः मानवीय मूल्यों की शिक्षा से अभिप्रायः उस शिक्षा से है जिसमें हमारे नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्य समाहित हैं। इसमें विभिन्न विषयों का मूल्यपरक बनाकर उनके माध्यम से विभिन्न मूल्यों को छात्रों के व्यक्तित्व में समाहित करने पर बल दिया जाता है, जिससे उनका सन्तुलित एवं सर्वतोन्मुखी विकास हो सके । मानवीय मूल्यों की शिक्षा को निम्नलिखित दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है–

1. मूल्यों की शिक्षा– मूल्यों की शिक्षा के अन्तर्गत हम नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों आदि की शिक्षा इतिहास, भूगोल,गणित, रसायनशास्त्र तथा भौतिकशास्त्र आदि की शिक्षा की भाँति एक स्वतन्त्र विषय के रूप में देना चाहते हैं।

2. मूल्यपरक शिक्षा– मूल्यपरक शिक्षा में सभी विषयों में मनोवैज्ञानिक ढंग से मूल्य समाहित करके निर्धारित मूल्यों के विकास पर बल दिया जाता है। इस शिक्षा में एकीकृत उपागम (Integrated approach) पर बल दिया जाता है।

मानवीय मूल्यों की शिक्षा की विषयवस्तु

मूल्यपरक शिक्षा मे सहाहित मूल्यों अथवा विषय–वस्तु को निम्न वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है––

1. शास्त्रीय मूल्य

शिक्षण में नियमितता तथा निष्ठा, मूल्यांकन में निष्पक्षता, अनुसंधान तथा प्रकाशन में ईमानदारी और सत्यनिष्ठा, स्वस्थ प्रतियोगिता तथा वस्तुनिष्ठता एवं सृजनशीलता आदि आते हैं।

2. नैतिक मूल्य

सच्चाई, सत्यनिष्ठा, उत्तरदायित्व की भावना एवं दूसरों के प्रति दया भाव आदि नैतिक मूल्य की विशेषता हैं।

3. सामाजिक–राजनैतिक मूल्य

राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना, सामाजिक दायित्व तथा नागरिकता, लोकतंत्र तथा मानवतावाद आदि सामाजिक–राजनैतिक मूल्य हैं।

4. वैज्ञानिक स्वभाव मूल्य

वस्तुनिष्ठता, विवेक, तथ्याधारित खोज–उपागम, सृजनात्मक चिन्तन, जिज्ञासा एवं समस्या–समाधान–उपागण आदि वैज्ञानिक मूल्य हैं।

5. संवैधानिक मूल्य

आर्थिक तथा सामाजिक न्याय और राजनैतिक समानता, भ्रातृत्व, एकता एवं धर्मनिरपेक्षता आदि संवैधानिक मूल्य हैं।

6. वैश्विक मूल्य

वैश्विक शान्ति, सभी के लिए स्वतंत्रता तथा न्याय, पूर्ण निःशस्त्रीकरण एवं सभी तरह की दासता की समाप्ति ही वैश्विक मूल्य हैं।

7. पर्यावरणीय मूल्य

प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण एवं पर्यावरण सजगता आदि पर्यावरणीय मूल्य कहलाते हैं।

8. सांस्कृतिक मूल्य

सांस्कृतिक एकता दूसरी संस्कृतियों को सम्मान एवं संस्कृति की सुरक्षा आदि सांस्कृतिक मूल्यों की श्रेणी में आते हैं।

मानवीय मूल्यों की शिक्षा के सिद्धान्त

मानवीय मूल्यों की शिक्षा के सन्दर्भ में अग्रलिखित मार्गदर्शक सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिये–

(1) मानवीय मूल्यों की शिक्षा धार्मिक शिक्षा से भिन्न है। अतः इसमें धर्म विशेष पर बल नहीं दिया जाना चाहिये।

(2) इसको स्वतन्त्र विषय के रूप में पाठ्यक्रम में स्थान प्रदान नहीं किया जाना चाहिये। विभिन्न विषयों में इसके लिये मूल्यों को समाहित किया जाय।

(3) संविधान में निर्देशित मूल्य एवं सामाजिक उत्तरदायित्व मूल्यपरक शिक्षा के केन्द्र बिन्दु होने चाहिये।

(4) मूल्यपरक शिक्षा को समाज की आर्थिक सामाजिक व्यवस्था के सन्दर्भ में क्रियान्वित किया जाना चाहिये।

(5) मूल्यपरक शिक्षा के कार्यक्रमों की सफलता घर, विद्यालय के आदर्श वातावरण तथा शिक्षक के आधार पर होनी चाहिये।

मानवीय मूल्यों की शिक्षा के उद्देश्य

शिक्षा के मूल्यों का उद्देश्य छात्रों को एक कुशल एवं उत्तरदायी नागरिक बनाना है जो बदलती प्रतिभाओं के सन्दर्भ में अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र के प्रति अपने विविध दायित्वों का निर्वाह गौरवपूर्ण ढंग से कर सकें। विद्यालय स्तर पर मानवीय मूल्यों की शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं–

(1) छात्रों में सत्य, सहयोग, प्रेम, करुणा, शान्ति, अहिंसा, साहस, समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व, श्रम–गरिमा एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण जैसे मौलिक गुणों का विकास करना।

(2) अपने व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में एक उत्तरदायी नागरिक बनने के लिए उन्हें प्रशिक्षित करना।

(3) समाजवाद, धर्म निरपेक्षता, प्रजातन्त्र जैसे राष्ट्रीय लक्ष्यों का सही तरीकों से बोध कराना जिससे वे इनकी प्राप्ति में पूर्णरूपेण समुचित सहयोग दे सकें।

(4) देश की सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों के सम्बन्ध में उनमें जागरूकता उत्पन्न करना एवं वांछित सुधार लाने के लिए उन्हें प्रोत्साहित करना।

(5) छात्रों को इसके लिए प्रेरित करना कि वे अपने विचार एवं व्यवहार में उदार बनें और धर्म, भाषा, जाति, क्षेत्र, लिंग आदि पर आधारित भ्रमों से ऊपर उठे।

(6) वे स्वयं को सही रूप से समझें एवं हीनता की ग्रन्थि से ग्रस्त न हों इसमें उनकी सहायता करें। उन्हें इस बात के लिए प्रेरित करना कि वे सतत् आत्मोत्थान की ओर अग्रसर हों।

(7) स्वयं अपने साथियों के प्रति समुचित दृष्टिकोण का विकास करना।

(8) स्वदेश के साथ–साथ अन्य देशवासियों के प्रति समुचित दृष्टिकोण का विकास करना ताकि उनमें अन्तर्राष्ट्रीयता की समझ आ सके।

निष्कर्ष

भारत अपनी कला, संस्कृति एवं दर्शन आदि की गौरवशाली परम्पराओं पर हमेशा गर्व करता रहा हैं, लेकिन आज अनास्था एवं पारम्परिक अविश्वास के वातावरण में हमारी प्राचीन परम्परा तथा मूल्य धूमिल से हो गये हैं। आधुनिकता की भ्रामक अवधारण, अस्तित्वादी जीवन, अनात्मपरक नास्तिकता, पाश्चात्य सभ्यता का अन्धानुकरण एवं कुतर्क प्रधान चिन्तन आदि के कारण अतीत मंत अविश्वास तथा 'स्व' में अनास्था आदि कारणों से हमारे पुराने मूल्य प्रदूषित हो गये हैं। स्वयं पर अनास्था का परिणाम है–– आत्मनाश अर्थात् अपने आदर्शों तथा मूल्यों, अपनी सांस्कृतिक विरासत, अपनी चिन्तन प्रणाली का परित्याग कर उसके स्थान पर बाहरी अथवा विदेशी चिन्तन प्रणाली को शामिल करना। इसके कारण हमारे मूल्य दब से गये हैं। उक्त वातावरण ने मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता की तरफ सभी का ध्यान आकृष्ट कर लिया है। हमने संक्रमण काल में कर्तव्य अथवा कार्य संस्कृति के स्थान पर उपभोक्ता संस्कृति को अपना लिया है। इस उपभोक्ता संस्कृति ने मूल्यपरक शिक्षा की आवश्यकता को और भी प्रबल बना दिया है।

संदर्भ

1. *1951 अमेरिकी शैक्षिक नीति आयोग पेज संख्या–68*
2. *रामकृष्ण मिशन साहित्य दस्तावेज पेज –108*
3. *चिन्मयानन्द मिशन साहित्य*
4. *प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा निदेशालय विकानेर, राजस्थान नैतिक शिक्षा उपागम प्रकाशन पेज संख्या 206*
5. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986*
6. *वी. एन. रेड्डी की पुस्तक एजुकेशान एंड वैल्यूज पेज संख्या–74*
7. *भारतीय शिक्षा आयोग तथा विश्वविद्यालय आयोग रिपोर्ट*

ISBN: 978-93-93248-09-1 : वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में मानवीय मूल्य

मानवीय मूल्यों का विकास

डॉ. सुधीर कुमार पुण्डीर[1], दीपक कुमार शर्मा[2],
[1]एसो. प्रोफेसर
शिक्षा विभाग, मेरठ कॉलिज, मेरठ
[2]असि. प्रोफेसर
अध्यापक–शिक्षा विभाग, राज. रज़ा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर।

मानवीय मूल्य समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इच्छाएं एवं लक्ष्य हैं जिन्हें मानव समाजीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से सीखता है और जो व्यक्तिनिष्ठ अभिलाषाएं बन जाती है। निर्णय मानवीय मूल्यों के अनुरूप भी हो सकते हैं या फिर निर्णय की प्रक्रिया में इनकी अनदेखी भी की जाती है। परन्तु मानव के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत किए गए सारे महत्वपूर्ण निर्णयों में इन मूल्यों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दूसरे शब्दों में, मानवीय मूल्य ही निर्णयों के आवश्यक एवं अपरिहार्य तत्व है। मानवीय मूल्य ही वह कड़ी है जो व्यक्तिगत अनुभवों और निर्णयों, उद्देश्यों तथा कार्यों को जोड़ता है। सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन को समझने में भी मानवीय मूल्य इसी प्रकार की भूमिका का निर्वाह करते हैं। मूल्य व्यक्ति व समाज के व्यवहारों को नियंत्रित व सही मार्ग की ओर निर्देशित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह एक और मनुष्य के मानसिक तनावों व संघों को सुलझाते हुए आंतरिक संगति व सम्बद्धता को उत्पन करता है एवं दूसरी और आदर्श आयाम की ओर वैयक्तिक व सामाजिक जीवन की उन्नति को निर्देशित करता है।

मानवीय मूल्यों का अर्थ

Value शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'Vallere' शब्द से मानी जाती है, जो किसी वस्तु की कीमत, विशेषता, गुण या उपयोगिता को व्यक्त करता है । मूल्य एक ऐसी आचरण–संहिता या सद्‌गुणों का समावेश है, जिसे अपनाकर व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास कर समाज में प्रभावशाली तथा विश्वसनीय बनकर उभरता है। मानवीय मूल्यों में मानव की धारणाएँ, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि अन्तःनिहित होते हैं। भारतीय धर्म–ग्रन्थों में मूल्यों के लिये 'शील' शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त किया गया है। यह शब्द मूल्य का पर्याय नहीं वरन् 'समीचीन' शब्द है । 'शील' सर्वत्र भूषण का कार्य करता है। कहीं–कहीं 'शील' शब्द चरित्र के लिये प्रयुक्त हुआ है। ओमप्रकाश पाराशर के मत से "मानवीय मूल्य एक प्रकार की मानव की अन्तःनियन्त्रित व्यवस्थित आत्मिक ऊर्जा है । मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया या किसी विचार को अपनाने के पूर्व यह विवेकपूर्ण निर्णय करता है कि वह उसे अपनाये या त्याग दे । जब ऐसा विचार व्यक्ति के मन में 'निर्णायक' ढंग से आता है तो वह उसका मूल्य कहलाता है।"

मानवीय मूल्यों की अन्तर्वस्तु

मानवीय मूल्यों को कई तरीके से प्रतिपादित अथवा अभिव्यक्त किया जा सकता है– अथात् इन्हें व्यावहारिक उदाहरणों से लेकर उच्च नैतिक सिद्धान्तों के रूप में भी समझा जा सकता है। मानवीय मूल्य शिक्षाविदों अथवा उपदेशकों द्वारा विकसित किया गया कोई अमूर्त सिद्धान्त नहीं है अपितु जीवन से जुड़े विचार एवं नियम है जिनका औचित्य कई तरह से सिद्ध किया जा सकता है। चूंकि मूल्यों का संबंध मानव से है अतः यह स्पष्ट है कि ये किसी आध्यात्मिक अथवा अतिप्राकृतिक सत्ता दवारा निर्देशित आचरण के नियम भी नहीं हैं और न ही कोई ईश्वरीय आदेश। इनका संबंध विभिन्न संस्कृतियों, विशिष्ट व्यक्तियों तथा परिस्थितियों से है। इनका विकास ही मानव के लिए और मानवीय अर्थो में हुआ है जो मानवमात्र की आत्मसिद्धि में सहायक बने। समाज या संस्कृति मनुष्य को मूल्यों के आधारभूत प्रतिमान प्रदान करती है। समस्त माननीय इच्छाएं सामाजिक आवेगों के साथ घुली–मिली रहती है। मानवीय मूल्य मनुष्य के सामाजिक संबंधों का घोतक है। यह सांस्कृतिक परंपरा व प्रशिक्षण ही है जो कि आधारभूत मूल्य व्यवस्थाओं का सृजन करते हैं। मानवीय मूल्यों में वैयक्तिकता, विभिन्नता तथा अनोखापन देखने को मिलता है।

आधारभूत मानवीय मूल्य

यहाँ मानवीय मूल्यों की एक सूची प्रस्तुत की जा रही है, जिसके प्रति आग लोग समान रूप से आस्था प्रकट करते हैं, अर्थात् इन मूल्यों को सार्वभौम व सर्वगत मूल्यों की कोटि में रखा जा सकता है। ये है–

1. सत्य
2. प्रेम और सेवा आवना
3. शांति
4. अहिंसा
5. न्याय

सत्य

किसी तथ्य की सत्यता किसी व्यक्ति विशेष की इच्छा या आकाक्षा पर निर्भर नहीं करती। सत्यता का अस्तित्व इच्छाओं, हितों एवं विचारों में स्वतंत्र होता है। यह सत्य है कि कोई भी झूठा व्यक्ति बल्कि अधिकांश झूठे लोग स्वयं को झूठा कहलवाना पसंद नहीं करते। इस बात को प्रमाणित करता है कि सत्य एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है, तथा यह मानव मन में अन्तर्निहित होता है। सत्य से बौद्धिक सतुष्टि मिलती है। केवल सत्य के अस्तित्व का ही नहीं, बल्कि सत्य के ज्ञान का भी साध्य मूल्य होता है।

प्रेम और सेवा भावना

यहां प्रेम से अभिप्राय है– स्नेह रखना, ध्यान रखना तथा किसी की सुध लेना। मानव मूल्यों में यह बेहद मौलिक है, जो दूसरों के प्रति आदर तथा सेवा भावना को व्यक्त करता है। प्रेम को व्यक्ति सामान्य तौर पर व्यक्तिगत अर्थों में लेता है, जिसमे काम–विषयक भावना निहित होती है। परन्तु मानवीय मूल्य के अर्थ में प्रेम का सार एक पवित्र भावना को परिलक्षित करता है। यहा प्रेम का अर्थ निःस्वार्थ प्रेम है जो दूसरों के प्रति तथा पूरे विश्व के प्रति भी समर्पित किया जा सकता है। प्रेम में स्वार्थ की भावना जितनी ही कम होगी जीवन की गुणवत्ता में उतनी ही अधिक वृद्धि होगी।

शांति

शांति एक भावात्मक मूल्य है जो सार्वदेशिक और सार्वकालिक है। शांति का अर्थ है समरसता अर्थात् संघर्ष का अभाव। यह एक संतुलित परन्तु गत्यात्मक मानसिक स्थिति है। मानवीय मूल्यों में एक प्रकार्यात्मक संबंध होता है। अतः व्यक्ति अथवा समाज के नियंत्रण या अनुमोदन से समस्त मानवीय अभिप्रेरणाएँ मूल्यों में रूपान्तरित हो जाती है। इनमें से सभी भावात्मक मानवीय मूल्यों के सम्मिलन से ही शांति की स्थापना सम्भव हो पाती है चाहे वह व्यक्तिगत जीवन में हो या फिर समाज या विश्व के स्तर पर सत्य, न्याय और प्रेम तथा भाईचारा विश्व–शांति की स्थापना के लिए आवश्यक शर्त है, जिनके अभाव में हितों का संघर्ष शुरू होता है तथा शांति खतरे में पड़ जाती है। हालांकि शांति को हिंसा, युद्ध तथा दुराचार के अभाव के रूप में भी समझा जा सकता है परन्तु इसके मूर्त रूप को भी समझना मुश्किल नहीं क्योंकि व्यक्ति इसे एक दूसरे के प्रति आदर, मित्रभाव, सहिष्णुता और मानसिक शांति के रूप में स्पष्ट रूप से महसूस करता है। मन की शांति अले ही एक व्यक्तिगत अनुभव है परन्तु समाज के संदर्भ में शांति की स्थापना सकारात्मक कार्यों से ही सभव है। ये कार्य हिंसक या विध्वसात्मक नहीं बल्कि रचनात्मक एवं सहिष्णुतापूर्ण होते हैं।

अहिंसा

मानवीय मूल्यों में अहिंसा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अहिंसा के बिना सर्वोच्च सत्य की सिद्धि असम्भव है। अहिंसा का अर्थ है हिंसा न करना अर्थात् यह एक मानवीय प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्ति परिवेश को हर प्रकार की हानि से सुरक्षित रखने की चेष्टा करता है। स्वार्थ और द्वेष को त्यागकर क्रोध पर विजय प्राप्त करना तथा किसी को भी किसी प्रकार का दुःख या कष्ट न पहुँचाना अहिंसा है। मूल्यात्मक अवधारणा होने के साथ–साथ अहिंसा एक व्यापक अवधारणा भी है। इस अर्थ में पर्यावरण तथा पारिस्थितिक तंत्र का शोषण तथा प्रदूषण आदि से रक्षा करना भी अहिंसा के अंतर्गत आता है। वस्तुतः इस कार्य से अहिंसा की भावना को बल मिलता है। यह एक ऐसी प्रवृत्ति है जो हमें अनैतिक कार्य करने तथा प्रकृति में असंतुलन पैदा करने जैसे कार्यों

से रोकता है। हिन्दू धर्म तथा गाँधी दर्शन में भी अहिंसा की व्याख्या इसी रूप में की गई है। वस्तुतः अहिंसा करना आदर्शवाद नहीं है। यह एक ऐसा मूल्य है जिसे सभी धारण कर सकते हैं। लूटपाट से व्यवस्थित जीवन की ओर बढ़ना, व्यक्ति से परिवार की और, राष्ट्रीयता से अन्तरराष्ट्रीयता का विचार अहिंसा की व्यापकता के ही चिन्ह है। अतः अहिंसा के आधार पर ही आदर्श समाज का संगठन किया जा सकता है।

न्याय

यूरोपीय परम्परा के अन्तर्गत न्याय को उच्चतम मानवीय मूल्यों को कोटि में रखा गया है बल्कि सुकरात एवं प्लेटो ने तो इसे उच्चतम मानवीय मूल्य के रूप में स्वीकार किया है। 'न्याय' की संतोषजनक परिभाषा देना यद्यपि मुश्किल है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि न्याय का आधार निष्पक्षता है जिसका मौलिक अर्थ यह है कि कानून के समक्ष सभी व्यक्ति समान है। न्याय एक सामाजिक मूल्य है जो अहिंसा व स्नेह के नियमों से संचालित होता है। न्याय का मूल उद्देश्य है संघर्षो को कम अथवा समाप्त करना। सार्वजनिक कल्याण हेतु सामाजिक न्याय की परम्परा अत्यंत प्राचीन है जिसका उदाहरण हमें इतिहास पूर्व काल में भी देखने को मिलता है। सभी समाजों में इसे एक केन्द्रीय विचार के रूप में अपनाया जाता रहा है। न्याय की संकल्पना प्राचीन यूनान में चिंतन का मुख्य विषय रही है। और इसी से बाद में मानवाधिकारों की संकल्पना का प्रादुर्भाव हुआ। तत्पश्चात दिसम्बर, 1948 में जेनेवा कंवेंशन के द्वारा मानवाधिकारों की विश्वजनीन घोषणा जारी की गई।

मानवीय मूल्यों के आत्मसातीकरण में परिवार की भूमिका

परिवार ही वह प्राथमिक इकाई है जहां व्यक्ति का समाजीकरण होता है। बच्चे के व्यक्तित्व के विकास में परिवार की अहम भूमिका होती है। परिवार ही बालक को समाज का एक योग्य सदस्य बनाता है। परिवार उसे आचरण संबंधी नियमों से परिचित कराता है। परिवार मैं बालक के अनेक मानवीय मूल्यों का विकास होता है। वह प्रेम, आत्म–त्याग, परोपकार और आज्ञापालन तथा सहयोग का पाठ सीखता है। यह बालकों में सद्भावनाओं का संचार करता है। कई अध्ययनों से यह प्रमाणित हो चुका है कि जिन परिवारों में सदस्यों के बीच स्वस्थ संबंध रहते हैं, ज्यादातर उसी परिवारों के बच्चे सफलता और बड़ी बड़ी उपलब्धियां कायम करते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि एक संगठित परिवार ही अपने सदस्यों को मानसिक सुरक्षा प्रदान करता है तथा जीवन में महान कार्य करने की असीम प्रेरणा भी देता है। परिवार के द्वारा दी गई मनोवैज्ञानिक सुरक्षा में ही बालक का मानसिक और बौद्धिक विकास हो जाता है जिससे बालक यह समझने लगता है कि व्यक्ति और समाज के प्रति उसका व्यवहार कैसा होना चाहिए।

मानवीय मूल्यों के आत्मसातीकरण में समाज की भूमिका

प्रशासन से संबंधित नैतिक मूल्य व मानक उस समाज में प्रचलित सामान्य नैतिक मूल्यों व मानकों का ही एक रूप है, अर्थात किसी समाज अथवा समुदाय एवं वहां के अभिशासकों के नैतिक मूल्यों व आदर्शों में फर्क नहीं किया जा सकता। समाज शब्द का प्रयोग बहुधा व्यक्तियों के एक ऐसे समूहों या सामाजिक साहचर्य के एक ऐसे रूप के लिए किया जाता है जिसके सदस्य एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र मैं रहते हैं और जिनमें एकत्व की भावना, साझा संस्कृति तथा संगठित क्रियाकलापों जैसी विशेषताएँ होती है। फाइनर के शब्दों में, सूक्ष्म विश्लेषण करने पर यह पाया जा सकता है कि किसी संस्था, संगठन या व्यवसाय से जुड़े नैतिक मापदंड उस देश में प्रचलित नैतिक मानकों व मूल्यों से कम या ज्यादा नहीं होता बल्कि उसी के अनुरूप होता है जिस देश में ये संस्था संगठन या व्यवसाय संचालित रहते हैं, अर्थात् किसी संगठन या व्यवसाय के लिए तय किए नैतिक मूल्यों पर वहां की सभ्यता व बाह्य परिवेश की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

मानवीय मूल्यों के आत्मसातीकरण में शिक्षण संस्थानों की भूमिका

नैतिक मूल्यों के आदान–प्रदान में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षा व्यक्ति को इस बात के लिए तैयार करती है कि वह सामाजिक परिवर्तन को नेतृत्व प्रदान करे। शिक्षा व्यक्ति में अनुकूलनकारी व्यक्तित्व का विकास करके परिवर्तन की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करती है। यह नवीन मूल्यों एवं विचारों के आत्मसातीकरण में सहायक होती है और व्यक्ति को किसी विशिष्ट दिशा में परिवर्तन हेतु बौद्धिक एवं भावनात्मक रूप से तैयार करती है। शिक्षा समाज एवं संस्कृति की निरन्तरता के साथ–साथ उसमें वांछित सुधार एवं परिवर्तन में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। परन्तु इसके लिए शिक्षा–व्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिससे प्रशिक्षु की स्वायत्तता व स्वतंत्रता बाधित न हो। किसी व्यक्ति के शैक्षणिक विकास के कई उद्देश्य हो सकते हैं जिनमें प्रमुख हि– ज्ञानार्जन, संस्कृति संरक्षण, व्यक्तित्व का विकास, सामाजिक न्याय की प्रगति, वैज्ञानिक मनोदशा का विकास, लोकतंत्र की सफलता तथा धर्मनिरपेक्ष मनोवृत्ति का विकास आदि। ये गुणात्मक रूप से उच्चतर एवं बेहतर जीवन की प्राप्ति में सहायक होते हैं। यह शिक्षा हो है जिसके माध्यम से समाज उच्च मानवीय मूल्यों का संरक्षण करती है और साथ में इन्हें प्रोत्साहन भी देती है।

निष्कर्ष

जीवन मे सफल होने के लिए जहां शिक्षा का अत्यधिक महत्व है, साथ ही शिक्षा प्रणाली मे अधिक से अधिक मानवीय मूल्यों का समावेश करके समाज मे वढ़ रही कुरीतियों, दिखावा करने की प्रवृति, धार्मिक उन्माद, हिंसा, अन्धविश्वास, रुढिघ्वादिता आदि को समाप्त करने मे सहायता मिलेगी सभी स्टेटस सिम्बल के चक्रव्यूह में फंस रहे है तथा भारतीय अनैतिकता के

महौल मे दम तोड़ रही है इस भारतीय संस्कृति की समृद्ध विरासत को वचाए रखने के लिए मानवीय मूल्य आधारित शिक्षा की अति आवश्यकता है हमें शिक्षा को इस प्रकार मूल्य युक्त वनाना होगा ताकि विद्यार्थी भविष्य के लिए सुरक्षित तैयारी कर सके जनकल्याण व राष्ट्र की प्रगति के लिए यह जरुरी है कि हम सभी इस दिशा मे अपने कर्तव्य का भली–भांति निर्वहन करे।

सन्दर्भ

1. *रस्तोगी एवं अग्रवाल (2001), निबन्ध मंजूषा।*
2. *पायल, भोल एवं जैन (2005), मूल्य, प्यावरण तथा मानवाधिकरों की शिक्षा।*
3. *पचौरी, गिरीश (2009), िक्षा के सामाजिक आधार।*
4. *पाण्डेय रामशकल (2010), माानवाधिकार और शिक्षा*
5. *'आर्य' डॉ0 मोहन लाल (2017); 'शिक्षा के ऐतिहासिक एवं राजैतिक परिप्रेक्ष्य', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।*
6. *'आर्य' डॉ0 मोहन लाल, 'पाण्डेय', डॉ0 महेन्द्र प्रसाद, कौर, भूपेन्द्र एवंगोला, राजकुमारी (2017); 'सामाजिक विज्ञान का शिक्षणशास्त्र', मेरठः आर0 लाल बुक डिपो।*

वर्तमान परिपेक्ष में मानवीय मूल्यों का बदलता स्वरूप

डॉ. प्रवेश कुमार[1], डॉ. सुनीति लता[2]

[1]सहायक प्रोफेसर, शिक्षक– शिक्षा विभाग (बी.एड.),
राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर

[2]प्रवक्ता शिक्षा शास्त्र,
बलदेव आर्य कन्या इंटर कॉलेज मुरादाबाद।

वर्तमान युग समस्याओं का युग है। सम्पूर्ण विश्व आजकल कई प्रकार की सामाजिक समस्याओं से जूझ रहा है। हमारा देश भी इससे अछूता नहीं है। हमारे देश में इन दिनों कई ज्वलंत समस्याओं से त्रस्त है। इनमें आतंकवाद, उग्रवाद, निर्धनता, बेरोजगारी, क्षेत्रवाद, भ्रष्टाचार एवं बाल अपराध जैसी मुख्य समस्याएँ हैं, इन समस्याओं के मकड़जाल में समाज एवं देश को निकालने के लिए इनका निदान ढूढ़ना अतिआवश्यक है।

समाज विज्ञान यह दर्शनशास्त्र में मूल्य पद का अर्थ स्पष्ट नहीं है, विद्वान किसी एक परिभाषा पर एकमत नहीं हो सके हैं। मत एक के रूप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि मूल्य मानव अस्तित्व में किसी महत्वपूर्ण वस्तु का प्रतिनिधित्व करते हैं। मनुष्य जीवन पर्यत चलता रहता है तथा उसके अनुभव में निरंतर अभिवृद्धि होती है जैसे–जैसे अनुभव मे अधिकाधिक सीखता जाता है तब परिपक्व होता है वह ऐसे अनुभव प्राप्त करता है जो उसके व्यवहार को निर्देशित करते हैं यह निर्देशक जीवन को दिशा प्रदान करते हैं इन्हें मूल्य कहा जा सकता है, वैसे मूल्य एक सामान्य और उचित व्यवहार का हिस्सा है व्यवहार में कहा जा सकता है कि किसी भी मानव ने संसार की समस्त अथवा आंशिक रूप से यदि उसने भ्रमण किया हो या वस्तुओं को जानने की इच्छा जाहिर की हो और उनका सदुपयोग व्यवहार के रूप में किया हो उन अनुभवों के माध्यम से समाज में यदि वह उनका अनुसरण करता है वह भी एक मूल्य की श्रेणी में आता है यदि हम वर्तमान परिपेक्ष की बात करें तब मानवीय मूल्यों का एक बहुत बड़ा बदलता स्वरूप देखने को मिलता है वर्तमान समय की वंशज अर्थात उत्पत्ति इन मानवीय मूल्यों से कोसों दूर होता चला जा रहा है, वैसे यह कहा जाता है कि यदि बालक उसकी आदत अच्छी हो उसका दूसरों के प्रति सम्मान अच्छा हो, वह किसी भी दृष्टि से किसी विषय वस्तु के बारे में अच्छी प्रकार से गहनता करता हो और अभिमुखीकरण के रूप में हो तो हम कह सकते हैं कि वह मानवीय मूल्यों का एक स्वरूप है यदि इन सब में ठीक उसके विपरीत स्थिति है तब कहा जा सकता है कि वर्तमान परिपेक्ष में मानवीय मूल्यों का एक बदलता स्वरूप सामने आ रहा है जो शिक्षा के लिए, समाज के लिए, राजनीति के लिए अत्यधिक घातक है इसके साथ यह भी कह सकते हैं कि केवल इन सब के लिए घातक नहीं है परंतु देश की एक रूपता वृद्धि, अभिवृद्धि

विकास उन सब में भी एक बाधक तत्व है कुछ परिभाषाओं के माध्यम से हम समझ सकते हैं कि मानवीय मूल्य समाज के लिए शिक्षा मे उत्तरोत्तर वृद्धि के लिए देश के विकास के लिए क्यों आवश्यक है जैसे सीवी गुड ने कहा है– मूल्य वह चारित्रिक विशेषता है जो मनोवैज्ञानिक सामाजिक और सौंदर्य बोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जाती है लगभग सभी विचार मूल्यों के आभूषण चरित्र को स्वीकार करते हैं इसी के रूप में आर के मुखर्जी ने कहा है कि– मूल्यों को सामाजिक दृष्टि से सुविकार्य उन इच्छाओं तथा लक्ष्यों के रूप में परिभाषित किया जाता है जिन्हें अनुबंधन अधिगम यह सामाजिकरण की प्रक्रिया द्वारा आमंत्रित किया जाता है, अभियंत्रिरी तथा जो आत्मा प्राथमिकताओं तथा कायों का रूप धारण कर लेती है इसीलिए आज के वर्तमान परिपेक्ष में मानवीय मूल्यों में परिवर्तन होता चला जा रहा है जिसके कारण शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है वैसे तो यह कहा जाता है कि मूल्य की परिभाषा नहीं हो सकती दार्शनिक जी ई मूर कहते हैं कि मूल्य वस्तु का एक सरलतम गुण है जिसको पहचाना तो जा सकता है और यह हमारे निर्णय का युद्ध बनता है परंतु इस ग्रुप की परिभाषा नहीं हो सकती क्योंकि परिभाषा में वस्तु का विश्लेषण किया जाता है परंतु मूल्य का गुण सरल है जिसका विश्लेषण करना संभव असंभव है इसके भाग नहीं हो सकते इसीलिए मूल्य की परिभाषा है नहीं हो सकती यदि कोई व्यक्ति मूल्य की परिभाषा दूसरी वस्तुओं में करता है तो वह गलत है क्योंकि वह वस्तु मिलेगा तथा मूल्यवान दोनों हो सकते हैं इसलिए मूल्य की परिभाषा करना एक तर्क दोष है मूल्य एक अद्भुत गुण है ।

आज किसी युवा से पूछा जाये कि आपका लक्ष्य क्या है तो वह यही जबाब देता है कि खूब सारा पैसा कमाना। पैसा पाने के लिए वह कुछ भी कर सकता है। समाज में ऐसे कई उदाहरण देखने को मिल जायेंगे जो यह दर्शाते है कि युवा वर्ग नैतिक व सामाजिक मूल्यों को कितना गिरा चुके हैं। उन्हें शिष्टाचार, संस्कार व नैतिकता की पहचान ही नहीं है। यह वही धरा है, जिस पर मर्यादा पुरूषोत्तम राम और स्वामी विवेकानन्द जैसी महान विभूतियों का जन्म हुआ, जो समाज और देश को ऊचाइयों पर ले गये है।

संरचनात्मक परिवर्तनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन सामाजिक मूल्यों में होने वाला परिवर्तन है। सामाजिक मूल्य व्यक्ति के सामाजिक कार्यो को प्रभावित करते हैं। सामाजिक मूल्यों में होने वाला परिवर्तन सामाजिक संरचना तथा सामाजिक व्यवस्था को प्रभावित करता है। ये परिवर्तन धीमी गति से होते हैं तथा बहुत अधिक समय बाद होते हैं। हमारे देश में सामाजिक मूल्य जाति के आधार पर व्यक्ति की प्रतिष्ठा से सम्बन्धित थे। ब्राहमण को अनेक ऐसे अधिकार प्राप्त थे, जो अन्य जाति के व्यक्ति को नहीं प्राप्त थे। सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन होने के कारण धन, शिक्षा तथा सरकारी पदों का महत्व अधिक बढ़ गया। इस प्रकार के परिवर्तन प्रत्येक समाज में अत्यन्त धीमी गति से होते है।

सामाजिक प्रकिया अनवरत चलने वाली जटिल सामाजिक प्रकिया है। सामाजिक विघटन परिवर्तन की ही देन है। इसकी अवधारणा को विभिन्न समाजशास्त्रियों ने स्पष्ट करने का प्रयास

किया है। इन सभी के विचारों पर यदि ध्यान दिया जाये तो दो प्रकार के मत स्पष्ट होते हैं। एक ओर तो मैकाइबर और पेज, किंग्सले डेविस एवं उनके अनेकों समर्थकों का मत है कि सामाजिक परिवर्तन एवं साँस्कृति परिवर्तन दो अलग–अलग अवधारणायें हैं तथा इन्हें समझने के लिए इन दोनों ही पकियाओं को अलग–अलग समझना आवश्यक है। दूसरी ओर गिलि एवं गिलिन एवं उनके समर्थकों का मत है कि सामाजिक परिवर्तन और संस्कृतिक परिवर्तन दोनों ही एक दूसरे में इतना घुले मिले हैं कि इन्हें अलग नहीं किया जा सकता है। सामाजिक जीव होने के नाते हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध सामाजिक मूल्यों से है।

वर्तमान समाज का रिश्ता एक विशेष प्रकार के अनुभव, एक विशेष प्रकार की संस- ति से है। इसमें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक गठबन्धन होता है जो एक पृथक पहचान देता है। वर्तमान समाज में साँस्कृतिक एकाधिकता है। अनेक भाषाएँ, संस्कृतियाँ एवं जातियाँ हैं। वर्तमान समाज का सौदर्य बोध परिष्कृत है, नित नये आविष्कार हो रहे हैं, इस वर्तमान समाज में पाप कल्चर जादुई है, इसे रहन–सहन, खान–पान आदि सभी में देखा जा सकता है। वर्तमान समाज औद्योगिक अर्थव्यवस्था का आइना है। इसमें कम्प्यूटर, इण्टरनेट, केडिट कार्ड, फास्ट फूड, मोबाइल फोन, रेस्टोरेन्ट, आदि दिखाई दे रहा है। हम दिशा विहीन हो चुके हैं फिर भी बेलगाम घोड़े की भॉति सरपट दौडते जा रहे है। तकनीकी और आर्थिक विकास किसी समाज में आधुनिकीकरण के स्तर को मापने का एक सामान्य मापदण्ड नहीं है। वैज्ञानिक विश्व दृष्टि और मानवतावादी विचार के प्रति प्रतिबद्धता भी उतनी ही जरूरी है।

भारतीय ग्रामीण समुदायों में सामाजिक मूल्यों की प्रक्रिया भी कियाशील है। गांव का किसान अब आधुनिक ढंग से खेती करना सीख रहा है और इस काम में ट्रैक्टर व अन्य मशीनों का प्रयोग हो रहा है। सिंचाई के नये साधनों का उपयोग किया जाने लगा है, अच्छे बीजों की किस्मों को वैज्ञानिक तरीके से, वैज्ञानिक खाद आदि का उपयोग करके उत्पादन किया जा रहा है व किसानों को वर्ष में कई बार फसल उत्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। गांवों में सामाजिक गतिशीलता की गति भी अब पहले से बढ़ गयी है। उसके रहन–सहन का स्तर पहले से ऊँचा उठा है और वे जाति व्यवस्था व धर्म सम्बन्धी अनेक अन्धविश्वासों के प्रति सचेत होते जा रहे हैं। वर्तमान में केवल आधुनिक विचारों को ही नहीं बल्कि आधुनिक व्यवहार प्रतिमानों, फैशन, खाने–पीने के तरीके आदि का भी विस्तार ग्रामीण समुदायों में हो रहा है। ऐसे में मानवीय मूल्यों में भी तकनीकी शिक्षा का आदान प्रदान किया जाए तब मूल्यों में भी परिवर्तन किया जा सकता है जो पूर्व में मूल्य थे आज उनका हिरास हो रहा है उसमें सुधार की दिशा संभव हो सकती है।

विवाह और सम्पत्ति के हस्तान्तरण के मामलों में न्यायिक सुधार से परिवार का पारम्परिक ढाचें का आधार प्रभावित हुआ है। उसने परिवार में समानता के सिद्धान्त को जारी किया है जिससे स्त्रियों की स्थिति में सुधार हुआ है, इसी तरह जातियों की भी परम्परात्मक भूमिका में

काफी बदलाव आया है। राजनीति में जातियों की बढ़ती भागीदारी वर्तमान के सामाजिक मूल्यों का ही परिणाम है। वर्तमान समाज में सभी को समानता का अधिकार प्राप्त है। मानवीय मूल्यों के अंतर्द्वंद के कारण परिवार विघटित होते चले जा रहे हैं समाज में विघटन हो रहा है इसलिए शैक्षिक दृष्टिकोण से इसमें सुधार की आवश्यकता है। एक ओर जहाँ देश में कई पारम्परिक संस्थाएँ और गतिविधियाँ फिर से शुरू हो गयीं है। जैसे–वर्तमान में टीवी चौनलों में आस्था, साधना, संस्कार आदि पूरी तरह धार्मिक विचार के लिए समर्पित हैं। जातिगत संगठन अपनी स्थिति को सुदृण करने हेतु संचार के नये साधनों का प्रयोग कर रहे है। दूसरी ओर वर्तमान में ही विसंगतियाँ भी दृष्टिगत हो रहीं हैं, जैसे– वृद्धों के प्रति अनादर की भावना का बढ़ना व संयुक्त परिवारों का टूटना, नैतिकता का पतन ज्यादातर देखने में आ रहा है। समाज में भौतिकवाद तथा विलासिता बढ़ रही है। व्यक्तिवाद पनप रहा है, रेस्टोरेन्ट, फास्टफूड, इन्टरनेट चौटिंग, मोबाइल फोन, केडिट कार्ड, टीवी चौनलों पर अश्लीलता परोसने जैसी नवीन संस्कृति विकासित हो रही है जो हमारी विश्वप्रसिद्ध पुरानी तथा अध्यात्मिक संस्कृति को प्रभावित कर रही है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री फेरिस ने सामाजिक मूल्यों के विघटन के बारे में कहा है कि ''सामाजिक विघटन का अर्थ है समूह के सदस्यों के व्यवहार पर वर्तमान सामाजिक नियमों के प्रभाव का कम होना। एक समाज उस समय विघटन महसूस करता है जब उसके विभिन्न भाग अपनी पूर्णता खो देते हैं और निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार कार्य नहीं कर पाते हैं।"

विश्व के अधिकाँश समाजशास्त्रियों का मत है कि सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन एक जटिल प्रकिया है। जनसंख्यात्मक कारकों, प्राकृतिक कारकों, मनोवैज्ञानिक कारकों, प्राणिशास्त्रीय कारकों, प्रौद्योगिकी कारकों, साँस्कृतिक कारकों आदि का परिणाम है कि वर्तमान में सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन हो रहे हैं।

डा. राधाकमल मुखर्जी का मत है कि ''भारतवर्ष में सामाजिक जीवन के विभिन्न पहलुओं में मूल्यों और मनोवृत्तियों का संघर्ष देखने को मिलता है, जिसके कारण व्यक्तिगत और संस्थागत दोनों ही प्रकार का समायोजन कर पाना मुश्किल हो गया है। जीवन निर्वाह के क्षेत्र में औद्योगिकवाद जो सम्बन्धों के सम्पूर्ण प्रतिमान को बदल रहा है। किन्तु जाति और संयुक्त परिवारों के सम्बन्ध औद्योगिक जीवन के अनुकूल नहीं हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि हम असमायोजन और सम्पीड़ित समाज विरोधी मनोवृत्तियों और व्यवहारों का वाहक बन रहे हैं।''

प्राचीन काल में परिवार एक पूर्ण संस्था थी उसके सभी सदस्य एक सूत्र में बँधे हुए रहते थे, लेकिन वर्तमान में परिवार परिवर्तनशील है। वर्तमान में संयुक्त परिवारों का शीघ्रता से विनाश होता जा रहा है। तलाक और नये कानूनों की वजह से परिवार अस्थिर हो गये हैं। परिवार के पवित्र आधार खत्म हो गये हैं। पारिवारिक नैतिकता में भी आज भीषण बदलाव दिखाई दे रहा है। प्राचीन समय में विवाह को धार्मिक कार्य समझा जाता था लेकिन आज वह मात्र दो लोगों के

बीच एक समझौता बनकर रह गया है। विवाह का उद्देश्य धर्म पहले था, प्रजापुत्र और रति इसके बाद। आज विवाह का प्रमुख उद्देश्य रति मात्र रह गया है। प्रेम विवाह ने धर्म को खत्म कर दिया और परिवार नियोजन की विधियों ने प्रजापुत्र को निरर्थक साबित कर दिया है। पतिव्रता और पत्नीव्रत के आदर्श आज केवल मजाक बन कर रह गये हैं। तलाक जो स्त्री के लिए कलंक था, कानूनी मान्यता प्राप्त कर चुका है। आज बलात्कार केवल सामाजिक गलती मात्र बनकर रह गया है।

किसी लेखक ने सच ही कहा है कि ''आज के परिवार में प्रजातन्त्र हो गया है, जिसमें हर सदस्य का अपना मत होता है, लेकिन वहाँ कभी कोई बहुमत नहीं होता। प्राचीन समय में परिवार में मुखिया घर का वरिष्ठ पुरूष होता था जो अपने परिवार पर पूर्ण अधिकार रखता था, लेकिन वर्तमान युग में महिलाएँ भी पुरूषों के बराबर पद पर पहुंच गई हैं। हर क्षेत्र में परिवर्तन ने वर्तमान के सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन की लहर दौड़ायी है।''

वर्तमान में परिवार में ऐसी कोई सत्ता नजर नहीं आती। इसका मूल कारण परिवार में आर्थिक व्यवस्था का होना। यानि जो व्यक्ति धन कमाकर परिवार में देता है परिवार के समस्त सदस्य उस व्यक्ति के ही अधीन हो जाते है, फिर वह चाहे परिवार का सबसे छोटा सदस्य ही क्यों न हो। अब परिवार एक संगठित इकाई नहीं रह गई हैं। परिवार अपने एक कुनबे के रूप में पूर्ण समूह के रूप में होते थे, इसके बाद संयुक्त परिवार का रूप आया। वर्तमान में इस रूप में भी शीघ्रता से परिवर्तन हो रहा है। आर्थिक अस्थिरता, व्यक्तिवादी विचारधारा, जनसंख्या में वृद्धि, औद्योगिक विकास, नये कानून व अधिनियम का उद्भव, पश्चिमी सभ्यता और संस्‍ ति के फलस्वरूप व्यक्तिगत व एकल परिवारों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। इस समय परिवार का आकार दिन–प्रतिदिन छोटा होता जा रहा है।''

पूर्व में परिवार स्वतन्त्र इकाई के रूप में जाना जाता था, परन्तु वर्तमान में इस पर राज्य का अधिकार हो गया है। परिवार अपने मौलिक कार्यों के लिए स्वतन्त्र था, लेकिन राज्य द्वारा इस स्वतन्त्रता का अपहरण किया जा चुका है। तलाक, विवाह, सन्तानोत्पत्ति, शिक्षा–दीक्षा, बच्चों की देख–भाल आदि राज्य की आज्ञा के अनुसार होते हैं। परिवार के मौलिक कार्यों का हस्तान्तरण भी हो रहा है। पहले के समाज में यौन सम्बन्धों, इच्छाओं की पूर्ति, बच्चों को पैदा करना, उनका पालन–पोषण और अर्थव्यवस्था आदि मौलिक कार्य रहे है। लेकिन वर्तमान में यह सभी कार्य अन्य संस्थाओं द्वारा किये जाते हैं। आधुनिक युग में बच्चों की उत्पत्ति का कार्य मातृत्व अस्पतालों और इनके पालन–पोषण का कार्य स्कूलों और नर्सरी, डे–केयर सेंटरों द्वारा किया जाता है। इन बदलावों के कारण परिवार के स्वरूपों और कार्यों में परिर्वतन हो गया है। आज सामाजिक मूल्य बदलने के और भी कारण है, जैसे विद्यालयों, महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों में अशांन्ति की भावना, उचित रोजगारपरक पाठ्यक्रमों का आभाव व नैतिकता व संस्‍ तिक शिक्षा का विलोपन होना एवं विज्ञान और प्रोद्योगिकी का ज्यादा प्रचार–प्रसार के साथ ही सबसे

बड़ा कारण जो समाज के आदर्श के रूप में नेता होते है, उनके द्वारा राजनैतिक भ्रष्टाचार किया जाना। व्यापारीकृत मनोरंजन भी वर्तमान में सामाजिक मूल्यों में बदलाव की भूमिका निभा रहा है, जिसमें क्षेत्रीय मनोरंजन के साधन जैसे नौटंकी, नाटक, लोकगीतों आदि का अभाव हो गया और सिनेमा पर आधारित मनोरंजन परोसा जा रहा है। प्राइवेट टीवी चौनलों पर अभद्र कार्यक्रमों को दिखाने के कारण देश व समाज में पश्चिमी संभ्यता की संस्कृति पैदा हो रही है।

आज कल के बच्चे व युवा स्मार्टफोन की तरह ही स्मार्ट है। अगर उनके स्मार्टफोन को नियंत्रण में रखना है तो आपको भी उनके जैसा ही स्मार्ट बनना होगा। स्मार्टमोबाइल फोन के कारण बच्चों व युवाओं में उनके शारीरिक विकास की गति पर असर पड़ रहा है। युवा खेल के मैदानों की ओर से मुंह मोड़ रहे है, दिन भर टीवी के सामने बैठ कर क्रिकेट मैच देख सकते हैं परन्तु, स्वयं खेल नहीं सकते। बच्चे दिन भर मोबाइल व इण्टरनेट पर कुछ न कुछ करते रहते है, जब उनसे मोबाइल मांगने पर वे चिडचिडा जाते है।

वैसे तो फैशन समाज में निरन्तर बना ही रहता है, परन्तु इनको व्यवसाय के साथ जोड़ कर देखा जा रहा है। मनुष्य नवीनता व भिन्नता के लिए परिवर्तन चाहता है। इस लिए वह प्राचीन आदर्शों का न मानकर नवीनता व परिवर्तन का प्रेमी हो गया है। जब भी समाज में प्रथाओं का पतन होता है तब फैशन का प्रचलन बहुत जोरों से होता है। आज समाज में औद्योगिकीकरण की वृद्धि के कारण ही फैशन का प्रचलन भी बढ़ा है। फैशन के साथ चलने में आदमी अपने आपको जागरुक व आधुनिक महसूस करता है।

हम आज के समय को देखते हैं तो मालूम पड़ता है कि बाल्यकाल से ही नैतिक मूल्यों की गिरावट आ रही है। बच्चों व युवाओं में आदर व सम्मान का भाव कम होता जा रहा है। बच्चे स्वभाव से उदंड होते जा रहे है। उनमें नैतिक मूल्य व शिष्टाचार कहीं खोने लगे हैं। वे बड़ों की बात को नजरंदाज कर अपनी मनमर्जी करते हैं। सभ्य संस्कारों को बाल्यकाल में ही विकसित किया जा सकता है। बालक मन बड़ा ही कोमल व स्वच्छ होता है। इसी अवस्था में जीवन के मूल्यों को अपनाया व सिखाया जाता है। वही व्यक्तित्व के अंग बन जाते है। इस हेतु परिवार के बड़ों को व अध्यापकों को बच्चों व युवाओं का आदर्श बन कर भावी मानव समाज के निर्माण में संरचनात्मक योगदान देना होगा।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जी ने कहा है कि '' नयेइंसान की खेती करनी होगी। अंधापन, कट्टरता की जंजीर से लोगों के चिंतन, विचार को मुक्त कर विज्ञान के प्रकाश से उसे प्रकाशमान करो,...,सत्य की खोज मिल सकती है सिर्फ विज्ञान में, तर्क में। आधुनिक शिक्षा से ही नये इंसान की खेती करना अर्थात नया इंसान बनाना संभव है।''

युवाओं में नैतिक मूल्य जगाने के लिए अविभावकों और शिक्षकों तथा नेताओं को उनका रोल मॉडल बनना होगा। अगर कोई स्वयं ईमानदार है तो वह बड़ों का सम्मान करता है और

दूसरे को माफ करता है। बच्चे उसका अनुसरण जरुर करेगे। किसी ने कहा है कि ''बच्चे वह नहीं करते जो आप उन्हें करने को कहते हैं, बच्चे वह करते है जो आप स्वयं करते है।''

आपको इसके लिए पारिवारिक और सामाजिक स्तर पर कुछ मूल्य बनाने होंगे और आगे आकर अपने बच्चों को समाज और संगठनों के लिए आगे बढ़कर कुछ करने हेतु प्रेरित करें। बच्चों को लेकर सामाजिक मुद्दे उठायें, अन्य लोगों को भी ऐसे सामाजिक सरोकारों से जोडे। यदि आप बच्चों व युवाओं के लिए कुछ मूल्य निर्धारित कर रहे हैं, तो उन्हें भी इसमें शामिल करें। उनके व्यवहार की हर समय नहीं तो समय समय पर समीक्षा भी करते रहे। इस प्रकार की जागरुकता का असर आपके निजी जीवन पर तो पडेगा ही समाज व देश को भी इसका लाभ होगा।

यह सच है कि वर्तमान परिदृश्य में बदलते सामाजिक मूल्यों के आधार पर पारिवारिक कार्य संस्थाओं द्वारा ले लिए गए है, परन्तु परिवार का पूर्ण लोप होना असम्भव ही है। परिवार का स्नेह, सन्तानोत्पत्ति और देख–भाल का कार्य किसी अन्य संस्था द्वारा कराना संभव नहीं है। विभिन्न कालों में परिवारों का स्वरूप परिवर्तित जरूर होता रहा है, परन्तु खत्म कभी नहीं हुआ। उसमें सिर्फ बदलाव जरूर होते रहे हैं। जैसे – आखेट अवस्था में जो परिवार व समाज था, वह चरवाहा और कृषि अवस्था में नहीं रह गया हैं, इसी प्रकार कृषि अवस्था में जो परिवार था, वह वर्तमान में परिवर्तित मात्र हुआ है फिर भी आज भी परिवार अपनी जगह दृढ़ खड़ा हुआ है। बर्जेस और लांक ने कहा है कि ''परिवर्तित होती दशाओं का अनुकूलन करने के इस लम्बे इतिहास और इसके स्नेह के कार्य को देखते हुए भविष्यवाणी करना सुनिश्चित है कि परिवार जीवित रहेगा – व्यक्तिगत सामाजिक मूल्य व्यक्ति को उसके सन्तोष और व्यक्तित्व के विकास में देता और लेता रहेगा।''

हमारा विचार है कि यदि इसी तरह से समाज व परिवार तथा देश में सामाजिक मूल्यों का महत्व खत्म होता रहा तो हम अपनी प्राचीन सभ्यता को न केवल बदलते देखेंगे वरन् मिटा भी देगें। इसमें पुनः बदलाव की आवश्यकता है।

अमर शहीद भगत सिंह ने कहा है कि ''आमतौर पर लोग चीजों के आदी हो जाते है और बदलाव के विचार से ही कांपने लगते हैं। हमें इसी निष्क्रियता की भावना को क्रांतिकारी भावना से बदलने की जरूरत है।''

अतः अभी से समय रहते हमें इस ओर चेतना चाहिए तभी पुनः हम अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति को जीवित रख पायेंगें तथा निरंतर मानवीय मूल्यों से दूर होते जा रहे समाज को हम शिक्षा के माध्यम से फिर से उस तरफ ला पाएंगे जिनकी आज अति आवश्यकता है।

आज के समय में परिवार का महत्व और उसका बदलता स्वरूप परिवार एक ऐसी सामाजिक संस्था है जो आपसी सहयोग व समन्वय से क्रियान्वित होती है और जिसके समस्त

सदस्य आपस में मिलकर अपना जीवन प्रेम, स्नेह एवं भाईचारा पूर्वक निर्वाह करते हैं। संस्कार, मर्यादा, सम्मान, समर्पण, आदर, अनुशासन आदि किसी भी सुखी–संपन्न एवं खुशहाल परिवार के गुण होते हैं। कोई भी व्यक्ति परिवार में ही जन्म लेता है, उसी से उसकी पहचान होती है और परिवार से ही अच्छे–बुरे लक्षण सिखता है। परिवार सभी लोगों को जोड़े रखता है और दुःख–सुख में सभी एक–दूसरे का साथ देते हैं। कहते हैं कि परिवार से बड़ा कोई धन नहीं होता हैं, पिता से बड़ा कोई सलाहकार नहीं होता हैं, मां के आंचल से बड़ी कोई दुनिया नहीं, भाई से अच्छा कोई भागीदार नहीं, बहन से बड़ा कोई शुभ चिंतक नहीं इसलिए परिवार के बिना जीवन की कल्पना करना कठिन है। एक अच्छा परिवार बच्चे के चरित्र निर्माण से लेकर व्यक्ति की सफलता में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। वास्तव में मानव सभ्यता की अनूठी पहचान है परिवार

किसी भी सशक्त देश के निर्माण में परिवार एक आधारभूत संस्था की भांति होता है, जो अपने विकास कार्यक्रमों से दिनोंदिन प्रगति के नए सोपान तय करता है। कहने को तो प्राणी जगत में परिवार एक छोटी इकाई है लेकिन इसकी मजबूती हमें हर बड़ी से बड़ी मुसीबत से बचाने में कारगर है। परिवार से इतर व्यक्ति का अस्तित्व नहीं है इसलिए परिवार को बिना अस्तित्व के कभी सोचा नहीं जा सकता। लोगों से परिवार बनता हैं और परिवार से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व बनता हैं। इसलिए कहा भी जाता है 'वसुधैव कुटुंबकम्' अर्थात पूरी पृथ्वी हमारा परिवार है। ऐसी भावना के पीछे परस्पर वैमनस्य, कटुता, शत्रुता व घृणा को कम करना है। परिवार के महत्व और उसकी उपयोगिता को प्रकट करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष 15 मई को संपूर्ण विश्व में 'अंतर्राष्ट्रीय परिवार दिवस' मनाया जाता है। इस दिन की शुरुआत संयुक्त राष्ट्र अमेरिका ने 1994 को अंतर्राष्ट्रीय परिवार वर्ष घोषित कर की थी। तब से इस दिवस को मनाने का सिलसिला जारी है ।परिवार दो प्रकार के होते हैं। एक एकाकी परिवार और दूसरा संयुक्त परिवार। भारत में प्राचीन काल से ही संयुक्त परिवार की धारणा रही है। संयुक्त परिवार में वृद्धों को संबल प्रदान होता रहा है और उनके अनुभव व ज्ञान से युवा व बाल पीढ़ी लाभान्वित होती रही है। संयुक्त पूंजी, संयुक्त निवास व संयुक्त उत्तरदायित्व के कारण वृद्धों का प्रभुत्व रहने के कारण परिवार में अनुशासन व आदर का माहौल हमेशा बना रहता है। लेकिन बदलते समय में तीव्र औद्योगीकरण, शहरीकरण, आधुनिकीकरण व उदारीकरण के कारण संयुक्त परिवार की परंपरा चरमराने लग गई है। वस्तुतः संयुक्त परिवारों का बिखराव होने लगा है। एकाकी परिवारों की जीवनशैली ने दादा–दादी और नाना–नानी की गोद में खेलने व लोरी सुनने वाले बच्चों का बचपन छीनकर उन्हें मोबाइल का आदी बना दिया है। उपभोक्तावादी संस्कृति, अपरिपक्वता, व्यक्तिगत आकांक्षा, स्वकेंद्रित विचार, व्यक्तिगत स्वार्थ सिद्धि, लोभी मानसिकता, आपसी मनमुटाव और सामंजस्य की कमी के कारण संयुक्त परिवार की संस्कृति छिन्न–भिन्न हुई है। गांवों में रोजगार का अभाव होने के कारण अक्सर एक बड़ी आबादी का विस्थापन शहरों की ओर गमन करता है। शहरों में भीड़भाड़ रहने के कारण बच्चे अपने माता–पिता को चाहकर भी पास नहीं

रख पाते हैं। यदि रख भी ले तो वे शहरी जीवन के अनुसार खुद को ढाल नहीं पाते हैं। गांवों की खुली हवा में सांस लेने वाले लोगों का शहरी की संकरी गलियों में दम घुटने लगता है।

मातृ दिवस विशेषः मां ही मन्दिर है, मां ही तीर्थ है। इसके अलावा पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव बढ़ने के कारण आधुनिक पीढ़ी का अपने बुजुर्गों व अभिभावकों के प्रति आदर कम होने लगा है। वृद्धावस्था में अधिकतर बीमार रहने वाले माता–पिता अब उन्हें बोझ लगने लगे हैं। वे अपने संस्कारों और मूल्यों से कटकर एकाकी जीवन को ही अपनी असली खुशी व आदर्श मान बैठे हैं। देश में 'ओल्ड एज होम' की बढ़ती संख्या इशारा कर रही है कि भारत में संयुक्त परिवारों को बचाने के लिए एक स्वस्थ सामाजिक परिप्रेक्ष्य की नितांत आवश्यकता है। वहीं महंगाई बढ़ने के कारण परिवार के एक–दो सदस्यों पर पूरे घर को चलाने की जिम्मेदारी आने के कारण आपस में हीन भावना पनपने लगी है। कमाने वाले सदस्य की पत्नी की व्यक्तिगत इच्छाएं व सपने पूरे नहीं होने के कारण वह अलग होना ही हितकर समझ बैठी है। इसके अलावा बुजुर्ग वर्ग और आधुनिक पीढ़ी के विचार मेल नहीं खा पाते हैं। बुजुर्ग पुराने जमाने के अनुसार जीना पसंद करते हैं तो युवा वर्ग आज की स्टाइलिश लाइफ जीना चाहते हैं। इसी वजह से दोनों के बीच संतुलन की कमी दिखती है, जो परिवार के टूटने का कारण बनती है। यदि संयुक्त परिवारों को समय रहते नहीं बचाया गया तो हमारी आने वाली पीढ़ी ज्ञान संपन्न होने के बाद भी दिशाहीन होकर विकृतियों में फंसकर अपना जीवन बर्बाद कर देगी। अनुभव का खजाना कहे जाने वाले बुजुर्गों की असली जगह वृद्धाश्राम नहीं बल्कि घर है। छत नहीं रहती, दहलीज नहीं रहती, दर–ओ–दीवार नहीं रहती, वो घर घर नहीं होता, जिसमें कोई बुजुर्ग नहीं होता। ऐसा कौन–सा घर परिवार है जिसमें झगड़े नहीं होते? लेकिन यह मनमुटाव तक सीमित रहे तो बेहतर है। मनभेद कभी नहीं बनने दिया जाए। बुजुर्ग वर्ग को भी चाहिए कि वह नए जमाने के साथ अपनी पुरानी धारणाओं को परिवर्तित कर आधुनिक परिवेश के मुताबिक जीने का प्रयास करता है।

मानवीय मूल्यों की आवश्यकता तथा महत्त्व

मानवीय मूल्य सम्पूर्ण सृष्टि के लिये आवश्यक तथ्य हैं। मानवीय मूल्यों की आवश्यकता को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. उपयोगिता के ज्ञान के लिये

प्रत्येक वस्तु एवं विचार की उपयोगिता उसमें निहित मूल्य के कारण होती है। यह वस्तु हमारे लिये कितनी उपयोगी है? उसके लिये उसमें निहित मूल्य को ज्ञात करना परम आवश्यक है जैसे ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है। यह एक विचार है। इसके पालन करने से हमको जो शक्ति मिलती है तथा मन में वैचारिक शुद्धता एवं जीवनदायिनी तरंगें उत्पन्न होती हैं, यह इस विचार के मूल्य होते हैं। इन मूल्यों के कारण ही यह विचार उपयोगी एवं सार्वभौमिक माना जाता है।

2. सांस्कृतिक व्यवस्था के ज्ञान के लिये

भारतीय संस्कृति में अनेक प्रकार के मानवीय मूल्य निहित हैं। इन मूल्यों का ज्ञान प्रत्येक भारतीय नागरिक के लिये आवश्यक होता है। सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर ही विभिन्न सांस्कृतिक व्यवस्थाओं को समझा जा सकता है। इसलिये यह आवश्यक है सांस्कृतिक व्यवस्था की उपयोगिता एवं अनुपयोगिता का निर्णय मूल्यों के आधार पर ही किया जाना चाहिये।

3. सामाजिक व्यवस्था के ज्ञान के लिये

मूल्यों की आवश्यकता सामाजिक व्यवस्था के ज्ञान के लियेभी होती है क्योंकि प्रत्येक समाज जिन विचारों एवं परम्पराओं पर आधारित होता है, उनमें मूल्य निहित होते हैं, जैसे–भारतीय समाज आदर्शवादी विचारों पर आधारित है। इन आदर्शवादी विचारों में आध्यात्मिक एवं मानवीय मूल्यों का समावेश होता है।

4. नैतिकता के स्वरूप का ज्ञान

नैतिकता की स्थिति एवं स्वरूप को ज्ञात करने के लिये भी उस व्यवस्था के मूल्यों का ज्ञान आवश्यक है। नैतिकता परिस्थिति एवं समय के अनुसार पृथक् रूप में परिभाषित होती है। देश का एक सिपाही आतंकवादी को मारता है तो पुरस्कार दिया जाता हैइतथा वह सम्मान का पात्र होता है, जबकि वही सिपाही देश के निरीह नागरिक को मार देता है तो उस पर अभियोग चलता है तथा उसे सजा दी जाती है।

5. मानवता के ज्ञान के लिये

मानवता के स्वरूप एवं प्रकृति के ज्ञान के लिये आवश्यक है कि उसमें निहित मूल्यों का ज्ञान प्राप्त किया जाय क्योंकि मानवीय मूल्य सार्वभौमिक तथ्यों के अन्तर्गत आते हैं इसलिये इनके लिये किसी प्रकार का समझौता नहीं किया जा सकता। मानवता के दृष्टिकोण को सम्पूर्ण विश्व में प्राथमिकता प्रदान की जाती है क्योंकि इसके द्वारा ही सम्पूर्ण सृष्टि का कल्याण सम्भव है।

6. अधिकार के ज्ञान के लिये

अधिकार की व्यवस्था भी मूल्य परम्परा के अनुसार होती है। उदाहरण के लिये, भारतीय स्त्रियों एवं अरब देशों की स्त्रियों के अधिकारों में अन्तर पाया जाता है। इस अन्तर के लिये दोनों देशों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को उत्तरदायी माना जाता है। इसलिये अधिकारों की स्थिति एवं स्वरूप का ज्ञान भी मानवीय मूल्यों के ज्ञान पर निर्भर करता है।

7. कर्त्तव्य के ज्ञान के लिये

व्यक्ति के कर्त्तव्यों को निश्चय उसके सांस्कृतिक, राजनैतिक एवं सामाजिक मूल्यों पर निर्भर करता है। भारतीय संस्कृति में मानव के लिये कर्तव्यों की व्यवस्था अधिक की गयी है,

जबकि पाश्चात्य संस्कृति में कर्तव्यों की व्यवस्था कम हैय जैसे–पति–पत्नी के मध्य कर्तव्यों की व्यवस्था सारगर्भित एवं विस्तृत है। परन्तु पाश्चात्य संस्कृति पति–पत्नी के मध्य कर्तव्यों की व्यवस्था कम की गयी है।

8. आध्यात्मिक ज्ञान के लिये

आध्यात्मिक ज्ञान के दृष्टिकोण का विकास भारतीय समाज में अधिक होता है, जबकि अन्य देशों में कम होता है। इसमें अन्तर के लिये वहाँ की मूल्य परम्परा को ही उत्तरदायी माना जाता है क्योंकि भारत में आदर्शवादी मूल्यों को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है, जबकि अन्य देशों में भौतिकवादी मूल्यों का प्रभुत्व होता है। इसलिये आध्यात्मिक व्यवस्था के स्वरूप के ज्ञान के लिये उस समाज के मूल्यों के महत्त्व को स्वीकार किया जाता है अर्थात् मूल्यों के ज्ञान के अभाव में आध्यात्मिक स्थिति का ज्ञान सम्भव नहीं होता है।

9. राजनैतिक स्थिति के ज्ञान के लिये

राजनैतिक व्यवस्था में विभिन्नता का पाया जाना मूल्यों के कारण ही होता है। राम राज्य की कल्पना के पीछे आदर्शवादी एवं आध्यात्मिक मूल्य ही प्रभावी थे। वर्तमान राजनीति के पतन का कारण भी मूल्य ही हैं। वर्तमान समय में वैचारिक एवं सैद्धान्तिक मूल्यों का पतन होने के कारण राजनेता अपने आपको सेवक नमानकर शासक मानता है। उसके हदय में समाज के प्रति सेवा की भावना नहीं होती क्योंकि उसके मूल्यों का स्तर गिर चुका है उसकी आत्मा, विचार एवं चिन्ता स्तर पूर्णतः निरंकुश एवं आचरणहीन हो गया है। अतः वर्तमान एवं प्राचीन राजनैतिक व्यवस्था के ज्ञान के लिये मूल्यों के ज्ञान की आवश्यकता है

10. शिक्षा व्यवस्था के ज्ञान के लिये

प्राचीन कालीन शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप एवं वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के स्वरूप पर दृष्टिपात किया जाय तो इसमें पर्याप्त अन्तर पाया जाता है क्योंकि इसका प्रमुख मूल्यों में परिवर्तन है। प्राचीनकाल के मूल्यों में होने वाले परिवर्तन के परिणामस्वरूप शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन होने लगा तथा शिक्षा ने वर्तमान स्वरूप धारण कर लिया। पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षा में भी पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। इसका भी कारण मूल्य ही होते हैं। इसलिये किसी देश की शिक्षा व्यवस्था के ज्ञान के लिये मूल्यों का ज्ञान प्रथमतः आवश्यक होता है।

11. पर्यावरणीय व्यवस्था के ज्ञान के लिये

पर्यावरण प्रदूषण की जो समस्या वर्तमान समय में उत्पन्न हुई है, उसके पीछे भी मूल्य परिवर्तन को ही कारण माना जाता है। प्राचीनकाल में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न नहीं होती थी क्योंकि व्यक्ति अपने जीवन दर्शन एवं जीवन मूल्यों में सन्तुलन स्थापित करता था। ध ीरे–धीरे मानव ने विकास की दौड़ में भौतिक मूल्यों को अधिक महत्त्व प्रदान किया, जिससे प्राकृतिक संसाधनों का विदोहन एवं विनाश होने लगा और पर्यावरण प्रदूषण की समस्या उत्पन्न

होने लगी। अतः पर्यावरणीय व्यवस्था का स्वरूप एवं प्रकृति के ज्ञान के लिये मूल्यों का ज्ञान आवश्यक है।

12. जीवन दर्शन के ज्ञान के लिये

मानव जीवन में अनेक प्रकार के दर्शनों का प्रचलन देखा जाता है। व्यक्तियों को एक समूह आदर्शवादिता को स्वीकार करता है दूसरा समूह प्रकृतिवादी दर्शन को स्वीकार करता है। वर्तमान समय में प्रयोजनवादी दर्शन को स्वीकार किया जा रहा है। इसका प्रमुख कारण भी मूल्य परिवर्तन का ही माना जाता है। वर्तमान वैज्ञानिक एवं तकनीकी के युग में व्यक्ति द्वारा प्रयोजनवादी दर्शन में ही स्वीकार किया जाता है क्योंकि आदर्शवादिता से व्यक्ति का पेट नहीं भरता अर्थात् व्यक्ति आदर्शवादी मूल्यों को अनुपयोगी समझने लगा है। विभिन्न प्रकार के जीवन दर्शनों के अध्ययन एवं प्रकृति के ज्ञान के लिये मूल्यों की आवश्यकता होती है।

मानवीय मूल्यों का महत्त्व

मूल्य शब्द ही अपने आप में महत्त्वपूर्ण शब्द है। मूल्यवान एवं मूल्यहीन होना ही प्रत्येक वस्तु की उपयोगिता एवं उपयोगहीनता को सिद्ध करता है। मानवीय मूल्यों के महत्त्व को प्रत्येक अवस्था में स्वीकार किया जाता है। मूल्य हीनता की स्थिति सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक असन्तुलन की सूचना देती है तथा मूल्य विकास की स्थिति सामाजिक आर्थिक एवं राजनैतिक विकास को सूचित करती है। अतः मूल्य का महत्त्व प्रत्येक क्षेत्र में स्वीकार किया जाता है। मूल्यों के महत्त्व को किसी भी स्तर पर अस्वीकार नहीं किया जा सकता। मूल्य ही वह महत्त्वपूर्ण तथ्य है, जोकि समाज, संस्कृति एवं राष्ट्र के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। मूल्य के अभाव में कोई भी विचार एवं वस्तु समाजोपयोगी एवं राष्ट्रोपयोगी नहीं हो सकती ।

संदर्भ

1. *क्रो एंड क्रो– सेकेंडरी एजुकेशन अमेरिकन बुक कंपनी नियर 1961 ।*
2. *फ्री ट्रायल अल्बर्ट के –एक्स्ट्रा करिकुलर एक्टिविटीज इन सेकेंडरी स्कूल्स हिंदुस्तान नफीस कंपनी 1931।*
3. *स्मिथ डब्ल्यू. आर.– कंस्ट्रक्टिव स्कूल डिसिप्लिन।*
4. *सक्सेना, एन.आर. स्वरूप –शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत आर लाल बुक डिपो मेरठ 2004।*
5. *सारस्वत एम. एवं गौतम एस. एल.– 'भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामाजिक समस्याएं' आलोक प्रकाशन लखनऊ इलाहाबाद।*
6. *गुप्ता, वाई. के. एंड अनय– वैल्यू ऐडेड एजुकेशन नीड ऑफ द हावर, शिक्षा प्रकाशन जयपुर।*
7. *नेशनल पॉलिसी आफ एजुकेशन 1986– मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट गवर्नमेंट ऑफ इंडिया डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन, न्यू दिल्ली।*

8. *प्लान ऑफ एक्शन एन.पी 1986 –मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट गवर्नमेंट ऑफ इंडिया डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन ।*
9. *कार्य योजना 1992– मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट गवर्नमेंट ऑफ इंडिया डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन।*
10. *नेशनल एजुकेशन पॉलिसी 20–20– मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट गवर्नमेंट ऑफ इंडिया डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशन न्यू दिल्ली।*
11. *शर्मा, श्री राम –भारतीय संस्कृति के आधारभूत तत्व, मथुरा अखंड ज्योति संस्थान ।*
12. *लाल , आर.बिहारी 2002– शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांत रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ ।*
13. *पासी, बी.के एवं पी. सिंह 2000 – वैल्यू एजुकेशन, आगरा। साइकोलॉजिकल कारपोरेशन*
14. *मूल्य विमर्श – मानवीय मूल्य अनुशीलन केंद्र काशी हिंदू विश्वविद्यालय अंक 5 जनवरी जून 2008।*